HOW GOD INSPIRED BIBLE

बाइबल का इल्हाम

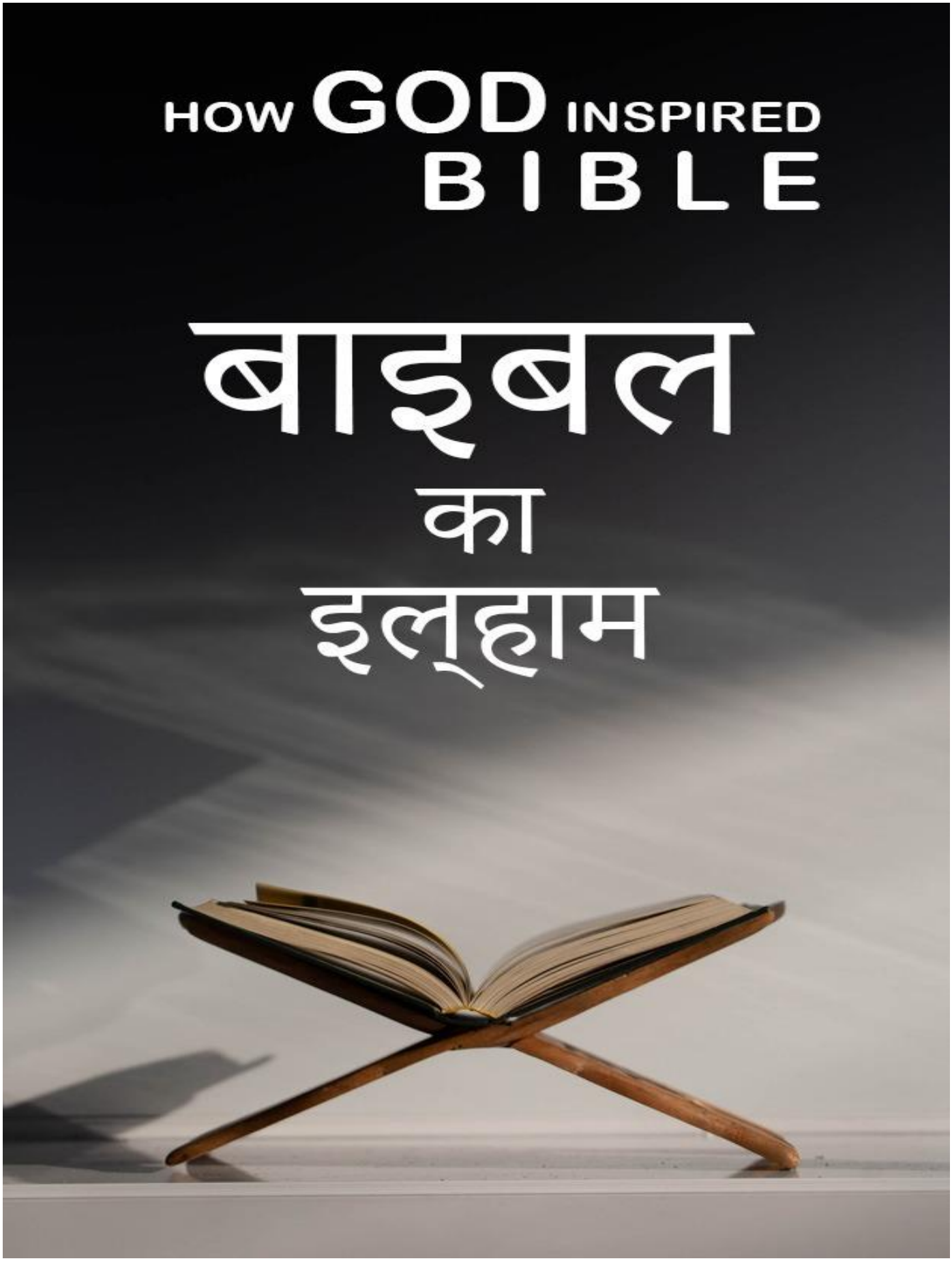

HOW GOD INSPIRED THE BIBLE

BY

Rev. Dr. Patterson Smyth, D.D.

बाइबल का इल्हाम

जिसमें बाइबल के इल्हाम की हक़ीक़त, माहियत और हैसियत पर मुफस्सिल, मुदल्लिल और निहायत दिलचस्प बहस की गई है।

मुसन्निफ़

डाक्टर जे॰ पीटरसन समीथ साहब, डी॰ डी॰

पंजाब रिलीजियस बुक सोसाइटी

अनारकली, लाहौर

Committee On World Literacy
And Christian Literature

Rev. Dr. Patterson Smyth, D.D.

1852-1932

फ़ेहरिस्त मज़ामीन

फ़ेहरिस्त मज़ामीन 4

पहला हिस्सा 9

मौजूदा बेचैनी और इस का ईलाज 9

बाब अव्वल 9

बेचैनी 9

आजकल का हल तलब अक़्दह 9

(1) बेचैन, समझदार, दीनदार आदमी 11

(2) बेदीन 12

(3) बाइबल का आलिम 13

(4) कट्टर दीनदार 14

(5) इस बेचैनी के हमारे ज़माने में फैलने की क्या वजह है? 16

बाब दोम 18

यक़ीन की बहाली 18

(1) क्या बाइबल इन ख़तरात से महफ़ूज़ है? 18

(2) गवाहों की एक बड़ी जमाअत 19

(3) ख़ुद किताब की शहादत 27

1. हम इस में यहूदीयों की क़ौमी तारीख़ पाते हैं। 28

2. हम बराबर गोया एक क़िस्म की ख़ुफ़ीया आवाज़ 29

3. फिर इस क़ौम की क़ौमी नज़मों और गीतों पर नज़र करो 30

4. और अब मैं एक और अजीब अम्र का बयान करूँगा 32

5. अब इस किताब की और ख़ुसूसीयत भी देखो 33

6. और आख़िर में हम इस अजीब व ग़रीब यगानगत का ज़िक्र करते हैं..... 35

4. मसीह की गवाही 37

5. उस की क़ुद्रत की गवाही 39

बाब सोम 41

इल्हाम के बारे में मशहूर आम ख़यालात..... 41

क्या ये बेचैनी गुनाह है?..... 42

2. सोते कुत्तों को सोने दो..... 43

3. उलमा का एतिमाद 44

4. रंगदार ऐनक के ज़रीये बाइबल पर नज़र करना..... 45

5. इल्हाम के मुताल्लिक़ मशहूर आम ख़यालात की ख़तरनाक हालत 46

6. एक तहद्दी..... 51

7. क्या इल्हाम की किसी ख़ास तारीफ़ का मानना हम पर लाज़िम है? 52

बाब चहारुम 56

इल्हाम के मुताल्लिक़ सच्चा ख़याल किस तरह बांध सकते हैं..... 56

1. ग़लत तरीक़..... 56

2. सही तरीक़ 60

बाब पंजुम..... 65

इल्हाम के तसव्वुरात की तारीख़..... 65

1. यहूदी..... 65

2. इब्तिदाई कलीसिया..... 68

3. क़ुरून-ए-वुस्ता यानी दर्मियानी ज़माना..... 72

4. ज़माना इस्लाह..... 74

5. ज़माना-ए-हाल..... 78

दूसरा हिस्सा 81

ख़ुदा ने बाइबल को किस तरह इल्हाम किया 81

मुकदमा 81

बाब अव्वल 84

इल्हाम 84

1. इल्हाम क्या है? 84

2. मुकाशफ़ा और इल्हाम 86

बाब दोम 88

दो हदें 89

तम्हीद 89

1. तबई इल्हाम 89

1. (अलिफ़) ये मसअला कहाँ तक सच्च है? 91

2. (ब) लिखने वालों का अपने इल्हाम की निस्बत क्या ख़याल था? 92

3. (ज) दीगर उमूर क़ाबिल लिहाज़ 94

2. लफ़्ज़ी इल्हाम 95

बाब सोम 99

इन्सानी और इलाही 99

1. इल्हाम में इन्सानी अंसर 99

2. इन्सानी अंसर की क़द्रो-क़ीमत 102

3. इन्सानी अंसर को फ़रामोश करने की ख़राबी 105

4. इलाही अंसर की इन्सानी अंसर के साथ आमिज़श 107

5. लिखा हुआ कलाम और कलाम जो ख़ुद मसीह है 109

बाब चहारुम 111

बाइबल सहू ख़ता से मुबर्रा है 111

इन्सान के बनाए हुए मसअले क्या दाअवे करते हैं? 111

पहला ख़याल 111

2. नविश्तों का दाअवा क्या है? 113

3. आम अक़्ल व तमीज़ क्या चाहती है? 116

4. पाक नविश्तों का मक़्सद 118

5. इस का तरीक़ ताअलीम 120

6. ख़ता और ग़लती से किस क़िस्म की बर्रियत की ज़रूरत है। 122

7. क्या बाइबल सहू व ख़ता (गलती) से मुबर्रा है? 123

8. बाइबल के सहू ख़ता से पाक होने के मुताल्लिक़ आम तसव्वुरात की ख़तरनाक हालत . 124

9. एक एहतियात 126

बाब पंजुम 128

ख़ुदा की ताअलीम की बतद्रीज तरक़्क़ी 128

1. अहद-ए-अतीक़ की अख़्लाक़ी मुश्किलात 128

दूसरा ख़याल 128

2. ताअलीम एक माक़ूल तरीक़ा 129

3. पहली मिसाल 132

4. दूसरी मिसाल 133

5. ब्रहमन का नथ्थो नुमा, एक मिसाल 135

6. क़ौम की ताअलीम 136

7. ख़ुदा का मदरिसा 137

8. अख़्लाक़ी मुश्किलात पर बह्स 140

9. ताअलीम में बतद्रीज तरक़्क़ी के उसूल से क़त-ए-नज़र करने के नुक़्सान 146

10. एतराज़ और उन के जवाब 149

पहला एतराज़ 149

दूसरा एतराज़ 150

तीसरा एतराज़ 152

11. ख़ातिमा 154

बाब शश्म 157

इल्हाम और तन्क़ीद आला 157

1. तन्क़ीद आला 157
2. तन्क़ीद आला की चंद मिसालें 160
3. एक नामाक़ूल तशवीश 162
4. आला तन्क़ीद के ख़तरात 166
5. तन्क़ीद की मुनासिब हैसियत 168
6. क्या इस के नताइज से डरना चाहिए? 170
7. एक माक़ूल ज़हनी हालत 176

बाब हफ़्तुम 179

ख़ातिमा 179

पहला हिस्सा

मौजूदा बेचैनी और इस का ईलाज

बाब अव्वल

बेचैनी

आजकल का हल तलब अक़्दह

जिस मसले पर हम बहस करने बैठे हैं उसे अगर अक़्दह (मुश्किल बात) कहें तो बजा है। ना सिर्फ और मज़्हबी अख़बारों और रिसालों में बल्कि उनमें भी जिनका मज़्हब के साथ कोई ताल्लुक़ नहीं। ना सिर्फ दीनदार और मज़्हबी लोगों बल्कि ला मज़्हब और ग़ैर मज़्हब और हर क़िस्म के अश्ख़ास के दर्मियान इस मसले पर बहस छड़ी हुई है। और हर एक अपनी अपनी समझ के मुताबिक़ इस अक़दे (मुश्किल) को हल करने की कोशिश कर रहा है। हर मुल्क में बेशुमार लोग ये सवाल कर रहे हैं। गो इनमें से अक्सर ज़बान से कुछ नहीं कह सकते, कि बाइबल के दाअवे क्या हैं? इस का इल्हाम क्या है? इस का मंबा (बुनियाद) कहाँ तक इन्सान में है? कहाँ तक ख़ुदा में? वो किस हद तक सहु व ख़ता (ग़लती व ख़ता) से मुबर्रा (पाक) है। क्या वो फ़क़त "ज़माना-ए-क़दीम के पाक लोगों" का कलाम है? या क्या वो "लफ़्ज़ बलफ़्ज़ ख़ुदा का कलाम" है?

इस से पहले शायद ही कभी इन सवालात के मुताल्लिक़ सोचने वाले और अहले अल-राए (अक़्लमंद अश्ख़ास) के दर्मियान इस क़द्र तहक़ीक़ात, बल्कि एक सूरत से कर सकते हैं। इस क़द्र बेचैनी पैदा हुई होगी, जो जवाब गुज़श्ता ज़माने में दिए जाते थे। उन से लोगों की तश्फ़ी (तसल्ली) नहीं होती। और इस वक़्त अगर कोई ये भी कह बैठे, कि इस क़िस्म के सवालात पर आम तौर पर बहस करना ख़िलाफ़े अक़्ल और पुर-ख़तर बात है। तो वो अहमक़ (बेवक़ूफ) समझा जाएगा। अगर इस क़िस्म के सवालों से बे-एतिनाई (लापरवाई) करना दुरुस्त भी होता तो भी अब इन्हें नज़र-अंदाज करना मुम्किन नहीं। ये

सवाल अब फ़क़त नुक़्ता चीनियों आलमान इल्म-ए-इलाही का हिस्सा नहीं रहे। और ना ऐसी किताबों में पाए जाते हैं। इस का समझना या दस्तयाब होना (मिलना) मुश्किल हो हमारे कसीर-उल-इशाअत (ज़्यादा छपने वाले) रिसालों और मज़्हबी अख़बारों में बराबर उनका ज़िक्र पाया जाता है। और अहले इल्म अवामे नास को ना सिर्फ ये बातें बताते हैं। बल्कि उमूमन जो कुछ ख़ुद उलमा को इन उमूर में वाक़फ़ीयत होती है। अवाम को सब का सब बता देने से दरेग़ (अफ़्सोस) नहीं करते।

जब कभी लोगों ने इन अक़दों (मुश्किल बातों) जो बाइबल के मुतालआ से पैदा होते हैं। हल करने की कोशिश की गई है। जो उमूमन हर ज़माने में इस क़िस्म के सवालात लोगों के सामने पेश होते रहे हैं। मगर अक्सर इनके हल करने से पहलू-तही (किनारा-कशी) की जाती थी। और इनको या तो अक़्दह ला युख़ल (मुश्किल जो हल ना हो सके) समझ कर या ये कह कर कि उनको हल करने की कोशिश करना बे-अदबी है टाल दिया जाता था। लेकिन अब इस क़िस्म के बहानों का मौक़ा नहीं रहा। आजकल ये सवालात इस क़िस्म की आज़ादी और बेबाकी (दिलेरी) से किए जाते हैं कि ये ज़रूरी मालूम होता है, कि उनका कोई ना कोई माक़ूल (मुनासिब) जवाब देना चाहिए। बाइबल की तारीख़ में एक ऐसा अहम ज़माना पहुंचा है, जिसमें से हमारी मौजूदा नस्ल को गुज़रना ज़रूर है। और अगरचे गुज़र झगड़े और दिल सोज़ी (दिल जलना) से पुर होगा। और मज़्हब की आइन्दा हालत की निस्बत (मुक़ाबला) तरह तरह के शक व शुब्हा और ख़ौफ़ व अंदेशे पैदा होंगे। अगर हमें यक़ीन है कि आख़िरी नतीजा यही होगा कि बाइबल को मसीहियों के दिल में पहले की निस्बत ज़्यादा मज़्बूत और देरपा जगह हासिल हो जाएगी ऐसे नाज़ुक वक़्त ख़ुदा की तरफ़ से समझने चाहें। ये इस तरीक़ व इंतज़ाम का हिस्सा हैं। जो उसने दुनिया की तरक़्क़ी व बहबूदी के लिए ठहरा रखा है। जब कोई कभी सच्चाई इन्क़ज़ा-ए-ज़माना (ज़माने का ख़ातिमा) से ग़लती मख़लूत (मिला-जुला) हो जाती है। तो इसी तौर से लोगों के एतिक़ादात (अक़ीदा, यक़ीन) के हिलाने और मुज़्तरिब (बेक़रार) करने से इस बदी का तस्फ़ीया (सफ़ाया) किया जाता है। और "अब फिर एक बार" ख़ुदा उन आम तसव्वुरात को जो लोगों में बाइबल की निस्बत मुरव्वज (राइज) हैं हिला रहा है। "और ये इबारत कि फिर एक बार इस बात को ज़ाहिर करती है कि जो चीज़ें हिला दी जाती हैं मख़्लूक़ होने के बाइस टल जाएँगी। ताकि बे मिली चीज़ें क़ायम रह सकें।" (इब्रानियों 12:27)

हमें चाहिए कि इस सिलसिले को जो हमारे इर्दगिर्द जारी है। ग़ौर से निगाह रखें। और उन तमाम बातों को जिनमें से अक्सर ख़ुदा की इस मंशा (मर्ज़ी) को जो बाइबल की निस्बत रखता है बिला जाने पूरा कर रही हैं जांचते (परखते) रहें।

(1) बेचैन, समझदार, दीनदार आदमी

हमें यहां इस अम्र को बता देना चाहते हैं कि इस किताब के लिखने में हमारा रोए (गुफ़्तगु) कलाम किन अस्हाब (दोस्तों) की तरफ़ है। हम उन सोच बिचार करने वाले दीनदार आदमी को मुख़ातिब करते हैं जिनके दिल बाइबल की तरफ़ से इस वजह से बेचैन हो रहे हैं, कि उन्हें रिवायती एतिक़ाद को मजबूरन छोड़ना पड़ा है। और अभी तक कोई दूसरी माक़ूल वजह दस्तयाब नहीं हुई जिसकी बिना पर उनका एतिक़ाद क़ायम हो। मगर हमें ये यक़ीन करना चाहिए कि हर एक सच्चे और नेक शख़्स के दिल में जब ख़ुदा इस क़िस्म की बेचैनी और बे इत्मीनानी पैदा करता है, तो इस से उस का मंशा (मर्ज़ी) ये होता है, कि इस शख़्स को एक आला सच्चाई की तरफ़ रहनुमाई करे। अब हम देखते हैं, कि मुख़्तलिफ़ क़िस्म के ख़यालात जिनसे उसे साबिक़ा (वास्ता) पड़ता है। ऐसे शख़्स के ज़हन और अक़्ल पर किस तरह अपना असर डालते हैं।

वो कहता है कि मैं ना तो बाइबल को रद्द करता हूँ और ना उस की तरफ़ से बे एतिक़ाद हूँ। हरगिज़ नहीं। मगर उस की तरफ़ से मेरा दिल बेचैन हो रहा है। मेरा यक़ीन हिल गया है। मुझे इस किताब में से उस के इल्हामी मुसन्निफ़ों के ऐसे अक़्वाल मिलते हैं। जो इस मिक़्यास (पैमाना) से जो मसीह ने मुक़र्रर किया है। पूरे नहीं उतरते। मैं सुनता हूँ कि इस के तारीख़ी बयानात में नुक़्स पाए जाते हैं। बहुत से उमूर उलूम के मुसद्दिक़ा (तस्दीक़ किया हुआ) नताइज से मुख़्तलिफ़ हैं। इस के इब्तिदाई ज़माने की अख़्लाक़ी ताअलीम बिल्कुल बेढंगी (ना मौज़ूं) और ना कामिल (ना-मुकम्मल) है। और इस किताब में जिसे में ये समझता था कि बराह-ए-रास्त ख़ुदा की उंगलीयों की लिखी हुई है मुख़्तलिफ़ औक़ात में तालीफ़ व तर्तीब व इस्लाह व तर्मीम (किताब मुरत्तिब करना और इस की दुरुस्ती व इस्लाह करना) वाक़ेअ होने के निशान पाए जाते हैं। मैं अब भी इस रूहानी तसल्ली व इत्मीनान के लिए जो इस से हासिल होता है। उसे छोड़ना नहीं चाहता। और मेरा दिल गवाही देता है कि अगर बिलफ़र्ज़ ये इल्ज़ामात सच्च भी हों तो भी वो किताब दुनिया में एक निहायत अजीब व ग़रीब किताब है। मगर तो भी मेरा दिल

मुज़्महिल (रंजीदा) और बेचैन है। मैं नहीं जानता कि किस-किस बात पर यक़ीन करूँ। इस की निस्बत अब मेरा दिल में वो कामिल यक़ीन बाक़ी नहीं रहा जिसकी वजह से इस के औराक़ ऐसे आला तसल्ली व इत्मीनान से पुर मालूम हुआ करते थे।

(2) बेदीन

हाल ही में मेरी मुश्किलात और भी सख़्त और वाज़ेह हो गईं हैं। मैं बेदीनियों की कोशिशों को जिसका असर हर तरफ़ पाया जाता है। देखता हूँ मैं हर रोज़ ऐसे आदमीयों से भी मिलता हूँ जो बिल्कुल बेदीन और मुल्हिद (बेदीन, काफ़िर) हैं और हर तरह के मज़्हब को नफ़रत वो हिक़ारत से देखते हैं। मगर उनके दर्मियान भी ऐसे अश्ख़ास हैं। जो सच्चे और पुर मलाल (अफ़्सुर्दा) दिल से मगर बिला-ख़ोफ़ ख़ालिस सच्चाई की तलाश में हैं। और मैं देखता हूँ कि उन की सबसे बड़ी मज़्हबी मुश्किलात बाइबल की वजह से हैं। ख़्वाह में उनकी किताबों को पढ़ूं या उन के लेक्चरों को सुनूँ या ज़बानी गुफ़्तगु करूँ मैं देखता हूँ कि उन के हमलों का सबसे बड़ा निशाना बाइबल ही है। वो सिर्फ़ ताने और तंन्ज़ें नहीं करते बल्कि मुझे इक़रार करना पड़ता है कि अक्सर औक़ात निहायत मज़्बूत दलाईल भी उन मुश्किलात के ख़िलाफ़ पेश की जाती हैं जो बाइबल के मुतालआ से पैदा होती हैं इनमें बहुत सी मुश्किलात तो ऐसी हैं जो ख़ुद मेरे दिल में भी ख़्वाह-मख़्वाह पैदा हुआ करती थीं और मैं या तो उन पर से बे-मुतालआ किए गुज़र जाता था। या उन्हें फ़रामोश (भुलाना) करने की कोशिश करता था। मैंने उन्हें सुलाने की कोशिश की मगर अब वो सोने से इन्कार करती हैं क्यों कि इन बाइबल के हमला-आवरों ने इन्हें बिल्कुल बेदार कर दिया है अक्सर लोग हंस हंसकर कहते हैं कि देखो ये मसीही भी कैसे सरीअ-उल-एतक़ाद (जल्दी ईमान लाने वाले) हैं, कि ऐसी ऐसी बेहूदा बातों पर यक़ीन करते हैं कि ख़ुदा ने सारे आलम की गर्दिश को ठहरा दिया है। ताकि योशेअ (यसअयाह) कनआनियों पर अपनी फ़त्ह की तक्मील कर सके। वो बड़े तम्सख़र (मज़ाक़) के साथ इस मुहब्बत भरे ख़ुदा के कलाम, को नक़्ल करते हैं कि ऐ बाबिल की बेटी मुबारक वो जो तेरे लड़कों को पकड़ के पत्थरों से पटक दे।

मेरा कलेजा मुँह को आता है। जब मैं बड़ी फ़साहत (सफ़ाई) और ज़ोर के साथ इस क़िस्म के अल्फ़ाज़ आलम-ए-अहले हिर्फ़ा (कारीगर) की जमाअतों के सामने बयान होते सुनता हूँ। जिनको बचपन में मेरी ही तरह बाइबल पर यक़ीन रखने की ताअलीम दी

गई थी। नहीं बल्कि ख़ुद वो लेक्चरार भी बचपन में ऐसा ही यक़ीन रखता था। और मेरे ख़याल में नहीं आता कि कम से कम उन के पहलू से किस तरह इस क़िस्म की मुश्किलात का जवाब देना मुम्किन है।

(3) बाइबल का आलिम

लेकिन एक दूसरे पहलू से भी एक और असर मेरे एतिक़ादी उमूर पर पड़ रहा है। मैं देखता हूँ कि बहुत सी बातें जो बाइबल के मुताल्लिक़ मेरे कई एक ख़यालात के उल्टा देने वाली हैं। ऐसे अश्ख़ास की तरफ़ से पेश की जाती हैं, जो ना तो बे-एतिक़ाद हैं, ना मज़्हब के दुश्मन हैं, ना उस की तौहीन रवा रखने वाले हैं। बल्कि वो बड़े अदब व लिहाज़ से साल-हा-साल तक उस के मुताल्लिक़ा उमूर की तहक़ीक़ात में मशग़ूल रहे हैं। उनमें यूनीवर्सिटीयों के प्रोफ़ैसर, कलीसिया के बिशप और आला ओह्देदार और ऐसे ऐसे अस्हाब शामिल हैं जिनकी आला इल्मीयत और दीनदारी और ख़ुदा-परस्ती में किसी क़िस्म का शुब्हा नहीं हो सकता। और ये ना सिर्फ एक जमाअत से बल्कि मुख़्तलिफ़ कलीसिया ओं से ताल्लुक़ रखने वाले और मुख़्तलिफ़ सिलसिला ख़यालात के पाबंद हैं। उनकी बातों से मुझे ऐसा मालूम होता है कि वो अब बाइबल की निस्बत वही ख़यालात नहीं रखते जैसे कि उन्हें बचपन में ताअलीम दी गई थी। या जैसा कि अवामुन्नास में से हज़ारों दीनदार मर्द व औरत आजकल भी मानते हैं। वो ये कहते हैं कि इस में से बहुत कुछ इन्सानी अंसर पाया जाता है। अगरचे बाक़ायदा ग़ौर करने से इलाही अंसर भी कुछ कम नज़र नहीं आता। उनका ये ख़याल है, कि बाइबल बहुत सी बातों में दीगर कुतुब की मानिंद है ख़ासकर अह्द-ए-अतीक़ के नविश्तों के लिहाज़ और वो इस बात के भी क़ाइल हैं ये मुम्किन है कि क़दीम मुसन्निफ़ों ने बाअज़ इल्मी और तवारीख़ी बातों की निस्बत बयानात कर दिए हों। जो ग़ैर सही और बे ढंगे (नामोज़ूं) हैं। वो ये भी दिखलाते हैं, कि अह्द अतीक़ में अख़्लाक़ी ताअलीम, बमुक़ाबला अह्दे जदीद के बहुत ही गिरी हुई है। और वो ये भी देखते हैं, कि इन किताबों की तालीफ़ व तर्तीब (दुरुस्ती व जमा करना) में बहुत कुछ आज़ादी बरती गई है। ये बातें मेरे मुसल्लिमा (माने) तसव्वुरात को जो बाइबल की हैसियत की निस्बत रखता हूँ, बिल्कुल तबाह करती हुई मालूम होती हैं।

इन सब उमूर की मौजूदगी में मेरे लिए उन ख़यालात का पाबंद रहना जो बचपन में मुझे सिखलाए गए थे। बिल्कुल नामुम्किन है मगर साथ ही ऐसा मालूम होता

है कि गोया इन ख़यालात को तर्क करना पाक नविश्तों के इलाही इख़्तियार व मुस्नद (सबूत) को तर्क करने के लिए बराबर है।"

(4) कट्टर दीनदार

अब हम इस शख़्स के तजुर्बे का और ज़्यादा खोज लगाते हैं और देखते हैं कि इस बेचैनी की हालत में उसे मज़्हबी दोस्तों से किया इमदाद मिलती है। उमूमन इस की ये सूरत पाई जाती है कि इन लोगों में से बाअज़ तो सीधे साधे मसीही हैं। जो ज़्यादातर ख़ुदा की रिफ़ाक़त में अपनी ज़िंदगी बसर करते हैं और बाइबल को इस रुहानी तसल्ली और क़ुव्वत का मम्बा समझते हैं। और इस आज़ादाना और बे-लिहाज़ नुक्ता-चीनी को सुन कर जो आजकल इस पर की जाती है उन के दिल काँप कर हट जाते हैं। वो अपने दोस्त की इस बेचैनी को शैतान की आज़माईश ख़याल करते हैं। और अपने तजुर्बे से बयान करते हैं कि वो इसी तरह एक ज़माने में उन के दिल में घुस कर उन्हें तरह तरह के वस्वसों (वहमों) और तुहमात (शक) का शिकार बनाता रहा है। ये उस के ईमान की आज़माईश है। उसे चाहिए कि बड़ी मज़बूती से अपने ख़यालात को उन बातों की तरफ़ से हटाए रखे। और अपने घुटनों पर यानी दुआ के ज़रीये इस क़िस्म के शुब्हात (बद गुमानीयाँ) से जंग करे। और अगरचे वो किसी तरह से इस की तस्कीन नहीं कर सकते मगर उन के इस सादा ईमान से इस को किसी क़द्र तसल्ली मिलती और कुछ-कुछ उम्मीद पैदा होती है। वो देखता है, कि उनके कलाम में मन्तिक़ व दलील (इल्म-दलील) तो नहीं। मगर तो भी इस में शक नहीं कि बाइबल ने उन ज़िंदगीयों पर क़वी (भारी) असर किया है। और वो एक आला मुक़ाम में ख़ुदा के साथ सुकूनत (रहना) करते हैं। जहां उस के ऐसे शक व शुब्हात उनको बेचैन नहीं कर सकते, और इस तौर से उनके ज़रीये से इस के एतिक़ाद को एक मख़फ़ी) छिपी हुई) क़ुव्वत व इमदाद हासिल होती है।

इनमें से बहुत से अश्ख़ास जिनमें से कई एक से मैं ख़ुद भी वाक़िफ़ हूँ। ग़ौर फ़िक्र करने वाले, अहले अल-राए (अक़्लमंद) और ख़ुदा-परस्त आदमी हैं। जो इन सवालात को जो बाइबल के मुताल्लिक़ पैदा होते हैं पढ़ते और उन में दिलचस्पी लेते हैं। मगर इस से उनके दिल में किसी क़िस्म के शुब्हात या बेचैनी पैदा नहीं होती। इस की वजह कुछ तो ये है कि उनका मिज़ाज ही ऐसा मुत्मइन वाक़ेअ हुआ है। कुछ ये कि उन्हें पाक नविश्तों में ऐसी ऐसी पाक और ख़ूबसूरत बातें मिली हैं कि वो मुश्किलात की तरफ़

तवज्जोह भी नहीं करते। और कुछ ये कि वो बहुत से आदमीयों की तरह मन्तिक़ (दलील) के ऐसे पाबंद नहीं और ना अपने मुक़द्दमात के सही नताइज की पर्वा करते हैं। बल्कि सरसरी तौर पर कश्फ़ व इल्हाम (ख़ुदा की तरफ़ से ज़ाहिर हुई बात) के क़दीमी ख़याल को लिए रहते हैं। और जब कभी कोई मुश्किल दामन-गीर होती है, तो बख़नदा पेशानी (ख़ुशमिज़ाजी) से खिसक जाते हैं। मगर ऐसे अश्ख़ास शक व शुब्हात के गिरफ़्तार आदमी को कुछ मदद नहीं दे सकते।

फिर ऐसे आदमी भी हैं, जिन्हें अपनी हर एक बात की बाबत ऐसा कामिल यक़ीन और भरोसा है कि वो कभी अपने फ़ैसलों को माअरज़-उल-तवाअ (मलुतवी करना) में डालता पसंद नहीं करते। इस किताब के नाज़रीन अक्सर ऐसे अश्ख़ास से वाक़िफ़ होंगे, जिन्हों ने हक़ीक़ी ग़ौर व फ़िक्र करने की कभी तक्लीफ़ गवारा नहीं की। जिनके दिल में ना तो कभी शुब्हात को दख़ल है और ना तहक़ीक़ात के शावक (शौक़ीन) हैं। जो मज़्हब को एक तरह से अपने ही तसव्वुराते इल्हाम का पाबंद समझते हैं। और इस तरह से सही यक़ीन व एतिक़ाद को जो बाइबल के मुताल्लिक़ रखना चाहिए। उस को माअरज़े खतर में डालते हैं। इल्हाम का ऐसा ख़याल जो इलाही अज़मत व आज़ादी और जलाल के मुताबिक़ हो। उन की अक़्ल व फ़िक्र में भी समा नहीं सकता। उनका तसव्वुर इल्हाम के बारे में इस क़िस्म की सख़्त पाबंदी का ख़्वाहां है। जिससे तारीखे बाइबल के हर एक वाक़ेअ और बयान की सेहत व दुरुस्ती शर्ती हो। इस के बयानात मुताल्लिक़ा साईंस उनीसवीं (19) सदी की तहक़ीक़ातों और दर्याफ्तों (मालूमात) के साथ बिल्कुल टक्कर खाईं। और इस की अख़्लाक़ी ताअलीम हर एक ज़माने में कामिल पाई जाये। उनकी राय में इस अम्र में किसी क़िस्म का शुब्हा करना मज़्हब की बुनियादों को हिला डालना है। इसी क़िस्म के आदमी हैं जो सबसे बढ़कर इस बेचैनी के बाइस हैं। और यही लोग बाइबल को अग़यार (ग़ैरों) के एतराज़ों और हमलों का निशाना बनाते हैं। वो अपने नामाक़ूल (नामुनासिब) और मन घड़त ख़यालात की सच्चाई को साबित करने में ख़ुदा के इल्हाम बल्कि मसीही दीन को भी मुश्किलों में फंसा देते हैं। यही लोग मुल्हिदों (काफ़िरों) को मसीही मज़्हब पर बड़ीबड़ी- फ़ुतूहात हासिल करने का मौक़ा देते हैं। वही हक़ जो अश्ख़ास को ख़ुदा की मंशा (मर्ज़ी) के ख़िलाफ़ ग़मगीं और परेशान करते हैं। वो अपनी रिवायतों में ख़ुदा के कलाम को बातिल (झूटा) करते हैं और आदमीयों के अहकाम को बतौर मसाइल मज़्हबी के सिखलाते हैं।

इस क़िस्म के अश्ख़ास हैं, जिनसे एक हक़ जो आदमी को जो मज़्हबी दुनिया में साबिक़ा (वास्ता) पड़ता है। वो अपनी मुश्किलात का अपने ख़ादिम उद्दीन से बहुत कम ज़िक्र करता है। और बहुत कम उसे ऐसे अस्हाब (साहब की जमा) से मिलने का इत्तिफ़ाक़ होता है। जो इस क़िस्म की मुश्किलात का मुक़ाबला कर के आख़िरकार आराम व इत्मीनान की मज़्बूत चट्टान पर गए हैं।

इसलिए ये बे इत्मीनानी फैलती जाती है। अगरचे आम तौर पर लोग इस का ज़िक्र तज़्किरा करते नहीं सुने जाते। बाअज़ तो बहुत जल्द इस की तरफ़ से बे परवाह हो जाते हैं। मगर बाअज़ ऐसे अश्ख़ास भी हैं, जिन्हें उस के तीर हमेशा चुभते और सताते रहते हैं। जिन लोगों ने अपनी ज़ात में इस का तजुर्बा किया है, वही कुछ इस दर्द व तक्लीफ़ का अंदाज़ा कर सकते हैं। जो एक हक़ जोओ (सच्ची का पैरौ) इन्सान को पेश्तर इस के कि हक़ की रोशनी में पहुंच जाये बर्दाश्त करनी पड़ती है राक़िम (लिखने वाला) को अपनी मुश्किलात ख़ूब याद हैं। और अब और भी बहुत से अश्ख़ास की मुश्किलात से वाक़िफ़ हो गया है। यूनीवर्सिटी के एक नौजवान तालिबे इल्म के अल्फ़ाज़ जिसका ईमान बाइबल पर से उठता चला जाता है। इस वक़्त उस के कानों में गूंज रहे हैं। वो कहता है। कि "मेरे जैसे सैंकड़ों नौजवान हैं, जो बाइबल को अपने हाथ से देना नहीं चाहते। मगर हम हरगिज़ इस की निस्बत इसी क़िस्म का ख़याल नहीं रख सकते। जैसा कि हमको बचपन में सिखाया गया था। अगर कोई ऐसा तरीक़ है, जिससे हम अब भी उसे बेशक़ीमत ख़ज़ाना समझ कर अपने क़ब्ज़े में रख सकें, तो क्या हमारे मुअल्लिम (उस्ताद) इस से वाक़िफ़ हैं? और अगर वो वाक़िफ़ हैं तो हमें बताते क्यों नहीं?"

(5) इस बेचैनी के हमारे ज़माने में फैलने की क्या वजह है?

मगर ये सब शक व शुब्हा का तूमार हमारे गर्दन पर क्यों लादा गया है? कुछ तो ये वजह है कि आजकल अक़्ली बहस व मुबाहिसा की बहुत भर मार हो रही है। मगर बड़ी वजह ये है कि किसी गुज़श्ता ज़माने की निस्बत हमारे ज़माने में बहुत ही बढ़कर हक़ तआला बनी इन्सान को अपनी सच्चाई के नए नए इल्हाम और मकाशफ़े अता कर रहा है। तारीख़ और उलूम तबई, मुक़ाबला मज़ाहिब और ख़ुद बाइबल की नुक्ता-चीनी और

अमीक़ मुतालआ (गहरा मुतालआ) अजीब बातें दर्याफ़्त (ईजाद) हो रही हैं इस क़िस्म के मकाशफ़े अगरचे पाक नविश्तों के सही तसव्वुर से मुख़्तलिफ़ नहीं हैं। तो भी इस में कुछ शुब्हा नहीं कि वो बाअज़ बनावटी तसव्वुरात के जो लोग उन की निस्बत रखने के आदी हो गए हैं, ज़रूर मुख़ालिफ़ हैं। सच्च तो ये है कि गुज़श्ता चंद सदीयों में लोग बाइबल को ख़्वाह-मख़्वाह वो रुत्बा देने के आदी हो गए हैं, जो उस की सनद व इख़्तियार (सबूत व क़ुद्रत) के लिए ख़ौफ़नाक है। और जिसकी ख़ुद उस के अपने बयानात से कुछ तस्दीक़ (सच्च होना) नहीं होती। बल्कि बरख़िलाफ़ इस के उस का हक़ीक़ी ज़ोर और ख़ूबसूरती तारीकी में पड़ जाती है। ज़माना हाल की तहक़ीक़ात की तेज़ रोशनी में ये अम्र दिन-ब-दिन ज़्यादा नुमायां होता जाता है कि इस क़िस्म के ख़याल साबित नहीं रह सकते। इस से सीधे सादे आदमी बेचैन हो गए हैं। क्यों कि वो ये समझते हैं कि ख़ुद बाइबल माअरज़ ख़ौफ़ व ख़तर में है। हालाँकि जो लोग इन मुआमलात को समझते हैं, वो बड़ी उम्मीद के साथ, अगरचे इस में फ़िक्रमंदी भी मिली हुई है। ज़माना आइन्दा पर नज़र कर रहे हैं। वो जानते हैं कि जिन ग़लत ख़यालों ने लोगों के दिल में जड़ पकड़ ली है। तक्लीफ़ व नुक़्सान के सिवा उन का उखड़ना मुश्किल है। मगर वो ये भी जानते हैं कि अगर बाइबल को आज़ाद हो कर दुनिया में अपने काम को सर-अंजाम देना है। तो ये ज़रूर है कि ख़्वाह कुछ ही क्यों ना हो। उसे उन ग़लत तसव्वुरात से आज़ाद कर दिया जाये।

हो सकता है ये रिहाई किसी हद तक इस बेचैनी के ज़रीये से अंजाम को पहुंचे। हो सकता है कि हमारे बाअज़ दिल पसंद एतिक़ादात की बेख़कुनी (जड़ से उखाड़ना, तबाह करना) बेहतर ताअलीम के लिए ज़रूरी तैयारी का काम देने में मददगार हो सकता है कि उलमा और मुल्हिदीन (काफ़िर) और मोमिनीन-ए-बाइबल (बाइबल पर ईमान लाने वाले) के हक़ में ख़ुदा की असली मंशा को पूरा कर रहे हों ताकि उस की सच्चाई की निस्बत हमारे तसव्वुरात ज़्यादा वसीअ और साफ़ हो जाएं।

बाब दोम

यक़ीन की बहाली

(1) क्या बाइबल इन ख़तरात से महफ़ूज़ है?

मेरे नज़्दीक इन शकूक और बेचैनियों का उम्दा ईलाज सिवाए इस के और कोई नहीं कि आदमी दिलेरी से उन मुश्किलात का जो उसे बेचैन किए देती हैं मुक़ाबला करे। उसे अपने दिल में ये ठान लेना चाहिए कि इस की तहक़ीक़ात और तफ़तीश (छानबीन) का मुद्दआ (मक़्सद) फ़क़त सच्चाई को हासिल करना है। और वो कभी इन शराइत पर सुलह मंज़ूर नहीं करेगा। जिनका मदार ऐसी बुनियादों पर हो जिन्हें वो परखते हुए ख़ौफ़ खाए कि कहीं बोदी (कमज़ोर) ना निकलें।[1]

लेकिन हम सब ऐसे दिलेर और जरी पहलवान (शेर मर्द) नहीं हैं। और अगरचे ख़ुदा के इंतिज़ाम में बाअज़ लोगों के लिए यही बेहतर हो, कि वो एक बेचैनी और इज़तिराब (घबराहट) की हालत में और इस ख़ौफ़ के साथ मबादा (ख़ुदा-न-ख़्वास्ता) ऐसा करने से उन के ईमान का जहाज़ शिकस्ता हो जाये। पाक नविश्तों के मुताल्लिक़ तहक़ीक़ात करना शुरू करें मगर मुझे कोई वजह मालूम नहीं होती कि आदमी इस ग़ैर ज़रूरी तक्लीफ़ व बेचैनी से बचने की कोशिश ना करे। और इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस मुक़ाम पर थोड़ी देर के लिए ठहर कर अपने ऐसे दोस्त की ख़ातिर जमुई (दिल-जूई) करूँ। और उसे यक़ीन दिलाऊँ कि उस के इस ख़ौफ़ व अंदेशे के लिए कि मबादा उस का ईमान व एतिक़ाद इल्हाम पर से उठ जाये मुझे कोई माक़ूल सबब नज़र नहीं आता।

मैं यहां इल्हाम व वही की ज़रूरत के मुताल्लिक़ दलाईल पेश करना नहीं चाहता। क्यों कि ऐसा करने से किताब का हुजम (साइज़) बढ़ जाएगा। और इस के इलावा पढ़ने

---

1 मैं सारे सच्चाई के भेद बाइबल में पाता हूँ। सब जो कुछ मैं जानता हूँ मैंने उसी से हासिल किया है लेकिन तो भी मैं हर शख़्स से यही कहूँगा, कि बाइबल पर मत यक़ीन करो अगर तुम ये नहीं देख सकते कि वो सच्ची है आज़ादी और दिलेरी के साथ उस के साथ बर्ताव करो। वो तुम्हारी दोस्त है, दुश्मन नहीं है। अगर तुम सिधाई और साफ़ दिल के साथ इस से सुलूक नहीं करोगे, तो वो हरगिज़ तुमसे.....

वाले के ख़यालात अस्ल मक़्सद से जो इस वक़्त मद्द-ए-नज़र है आवारा हो जाऐंगे। **ये किताब उन मुल्हिदों (काफ़िरों) के लिए नहीं लिखी गई। जो सिरे ही से इल्हाम व मुकाशफ़ा के मुन्किर (इंकारी) हैं। बल्कि उन मसीहियों के लिए जो बाइबल को ख़ुदा की इल्हामी किताब मानते हैं। मगर बाअज़ ऐसी बातों को देखकर जो उस के ख़िलाफ़ नज़र आती हैं शक व शुब्हा में गिरफ़्तार हैं।** मैं ऐसे ही लोगों की मदद करना चाहता हूँ। इस किताब के नाम ही से ये ज़ाहिर है, कि इस किताब में बाइबल का इल्हामी होना पहले ही से तस्लीम कर लिया गया है।

मगर तजुर्बे से मालूम हुआ है, कि अक्सर ये सवाल कि "ख़ुदा ने बाइबल को किस तरह इल्हाम किया?" एक दूसरे सवाल तक कि "क्या फ़िल-हक़ीक़त ख़ुदा ने बाइबल को इल्हाम क्या?" ले जाता है? क्या ज़माना-ए-हाल की बेचैनी में ये अम्र अक्सर नहीं देखा जाता? और इसलिए ये मुनासिब मालूम होता है कि इस की तहक़ीक़ात के शुरू ही में लोगों को उन के दलाईल से मुत्लाअ (आगाह) कर दिया जाये। जो इस बेचैनी के ज़माने में दूसरों की तक़वियत का बाइस रहे हैं और उन्हें ये यक़ीन दिलाएँ कि वो तमाम बातें जिनके लिए हम फ़िल-हक़ीक़त बाइबल की क़द्र करते हैं इन हमलों से बिल्कुल महफ़ूज़ हैं बलंद व बाला हैं कि ज़माना-ए-हाल कि तमाम मुख़ालिफ़ीन वहां तक पहुंच भी नहीं सकते।

(2) गवाहों की एक बड़ी जमाअत

ऐ पढ़ने वाले, अगर कभी तुम्हारे दिल में इस क़िस्म का ख़ौफ़ व अंदेशा पैदा हो कि मुम्किन है कि बाइबल अगरचे लोग उसे तीन हज़ार साल से ख़ुदा की दी हुई किताब मानते चले आए हैं। मगर आजकल के बहस मुबाहिसा और दलील व हुज्जत (बहस व मुबाहिसा) की बिना पर इस के हक़ में ऐसे ख़याल ग़लत साबित हो जाएं। तो लम्हा भर के लिए ठहर कर इस ख़याल के पूरे ज़ोर व ताक़त को महसूस करने की कोशिश करो कि किस तरह हो सकता है कि ये क़दीम नविश्ते जो हमेशा लोगों की आँखों के सामने थे। जिससे उन की नुक्ता-चीनी और इम्तिहान होना मुम्किन था। हज़ार-हा साल तक तो इलाही-उल-असल माने जाएं। और लोग उन्हें अपनी ज़िंदगी के लिए बतौर दस्तूर-उल-अमल (क़ानून) के मान लें। बल्कि ऐसे अहकाम को भी जो बिल्कुल उन के नापसंद हों। तस्लीम करलें। और फिर ये क़ुबूल करने वाले और इताअत करने वाले वो लोग हों, जो

दुनिया की अक़ील (दाना) और आला दर्जा की शाइस्ता (तमीज़दार) क़ौमों में से हैं। और ज़माना बाद ज़माना सिर्फ ऐसा ही होता रहे। बल्कि इस में तरक़्क़ी भी होती जाये। और फिर और किसी ज़माने में ऐसी अजीब व ग़रीब तरक़्क़ी ना देखी जाये। जैसे इस उन्नीसवीं सदी में जो शाइस्तगी, इल्मी और अक़्ली तहक़ीक़ात में सब ज़मानों पर सबक़त (बरतरी) रखती है।

पाक नविश्तों को ये क़ुव्वत व इख़्तियार कहाँ से हासिल हुआ? ये याद रखो कि ये तमाम सहीफ़े अलग-अलग थे। और बाज़ औक़ात एक एक की तस्नीफ़ व तहरीर के दर्मियान सैंकड़ों बरस का अर्सा गुज़र जाता था। और उन में से हर एक मुख़्तलिफ़ मिज़ाज व ख़सलत (मिज़ाज व फ़ित्रत) के आदमी ने मुख़्तलिफ़ क़िस्म के लोगों के लिए लिखा था। और उस के ज़माने के हालात भी दूसरों से मुख़्तलिफ़ थे। ये भी याद रहे कि कई एक सहीफ़ों की बाबत हम ये भी नहीं जानते कि उन के लिखने वाले कौन थे। और उन्होंने किस तरह मौजूदा सूरत इख़्तियार करली। लेकिन साथ ही इस के हमें उन की तारीख़ में कोई ज़माना ऐसा नज़र नहीं आता। जब कि उन की ऐसी ही क़द्रो मंजिलत नहीं होती थी। और लोग इन्हें किसी ना किसी सूरत में इन्सान से बाला हस्ती की बनाई हुई किताब नहीं समझते थे। वो बतौर एक ज़ंजीर के मालूम होती हैं, जिसका एक सिरा तो निहायत ही क़दीम ज़माने में जा पहुंचता है। और दूसरा सिरा मसीह के पांव के पास आकर ठहरता है।

और फिर ख़ासकर इस अम्र को भी मद्दे नज़र रखो कि वो सहीफ़े किसी ख़ास मोअजिज़े के ज़रीये इंतिख़ाब नहीं किए गए थे। और उनका इन्हिसार किसी बैरूनी साहिब-ए-इख़्तियार जमाअत के बाक़ायदा फ़ैसले पर नहीं है। ना वो किसी कलीसिया के या काउंसल के। ना किसी पोप के या मुक़द्दस वली के। नहीं बल्कि वो ख़ुद हमारे मुबारक ख़ुदावंद के फ़ैसला पर भी मबनी (बुनियाद रखना) नहीं हैं। क्यों कि उस के आने से बहुत अर्सा पहले सदहा साल से वो बराबर उस के हक़ में शहादत (गवाही) देते। और एक आस्मानी पैग़ाम की तरह □जो मुख़्तलिफ़ ज़बानों में और मुख़्तलिफ़ तौर से□ दिया गया उस के आने की ख़बर को लोगों के दिलों में तरो ताज़ा रखते और उस का उम्मीदवार बनाते चले आते थे। उन की सारी तारीख़ को मुतालआ कर जाओ। और तुम्हें कहीं भी पता नहीं मिलेगा, कि वो किताबें किसी बैरूनी साहिब-ए-इख़्तियार शख़्स या जमाअत के हुक्म से क़ुबूल की गईं। पेश्तर इस के कि वो एक जिल्द में जमा की गईं। बहुत सदीयों

से बहुत सी नसलें इन्हें बराबर इलाही-उल-अस्ल मानती चली आई थीं। लूथर का क़ौल है, कि :-

> "कलीसिया किसी किताब को इस से ज़्यादा क़ुद्रत या इख़्तियार नहीं दे सकती। जिस क़द्र कि वो अपने में रखती है। एक कौंसल इस किताब को पाक नविश्तों की फ़हरिस्त में दाख़िल नहीं कर सकती। जो अपनी ज़ात में पाक नविश्ता नहीं है।"

लोग कहते हैं कि बड़ी मज्लिस[2] या उनके जांनशीनों ने अह्दे-अतीक़ के मुसल्लिमा सहीफ़ों (माना हुआ पाक कलाम) को जमा किया। हाँ मगर कब? ख़ुदावंद मसीह के ज़माने के क़रीब क़रीब। जब कि वो किताबें सदीयों से ख़ुदा की किताबें मानी जा चुकी थीं। लोग कहते हैं कि मसीही कलीसिया ने अह्दे-जदीद के सहीफ़े जो बाइबल में हैं जमा किए हाँ। मगर कब? इस के बाद कि वो तीन सौ साल तक कलीसिया की हिदायत के लिए ख़ुदा दाद रहनुमा तस्लीम हो चुके थे। उनका बाइबल में जमा किया जाना उन्हें बाइख़्तियार या क़ाबिले सनद नहीं बना देता, बल्कि उनका क़ाबिले सनद होना था। जिसके सबब से उन्हें बाइबल में जगह मिली।

हम फिर वही सवाल करते हैं कि उन को ये इख़्तियार कहाँ से हासिल हुआ? और इस का फ़क़त यही जवाब हो सकता है कि ये सनद व इख़्तियार उन के अंदर ज़ाती तौर पर मौजूद था। ये रुत्बा जो उन्हें हासिल हुआ। उन्होंने अपनी ही क़ुद्रत से हासिल किया था। और इन्सान की अख़्लाक़ी हिस्स और अक़्ल ने इस के क़ायम करने में इत्तिफ़ाक़ किया। वो अपनी ही बातिनी क़द्र व क़ीमत के लिहाज़ से इन्सान की ख़ुदादाद अख़्लाक़ी

---

[2] बड़ी मज्लिस एक यहूदी मज्लिस का नाम था। जिसके बानी रिवायत के बमूजब ख़ुद हज़रत एज़्रा या अज़ीज़ बयान किए जाते हैं। और जो मज़्हबी उमूर के मुताल्लिक़ 450 से 200 क़ब्ल मसीह तक यहूदी क़ौम पर हुकूमत करते रहे। इस के शुरका की तादाद 120 और बाज़ औक़ात 85 बताई जाती है। सबसे बड़ा काम जो इस मज्लिस की तरफ़ मन्सूब किया जाता है सो ये है, कि उसने पाक नविश्तों के कानून लेने अह्दे-अतीक़ के मशमूला कुतुब की तर्बीयत व तदवीन की। मगर बाअज़ उलमा इस मज्लिस के वजूद के मुन्किर हैं।

क़ुव्वत व मलिका को पसंद आते हैं। और यही पसंदीदगी और क़बूलीयत और हक़ीक़त बाइबल की मौजूदा हैसियत व मर्तबा की बुनियाद है।

अह्देअतीक़- के सहीफ़ों पर नज़र करो। अगर इस ज़माने में हमसे सवाल किया जाये कि हम इन्हें इल्हामी क्यों मानते हैं तो हम उमूमन ये जवाब दिया करते हैं कि हम इन्हें अपने ख़ुदावंद और उस के रसूलों की सनद पर इल्हामी मानते हैं। उन्होंने इसे कलाम-उल्लाह क़ुबूल किया। और गोया अपने दस्तख़त के नीचे उसे इस हैसियत से हमारे हवाले कर दिया। लेकिन उन के ज़माने से पहले बग़ैर किसी इस क़िस्म की मंज़ूरी के वो क्यों माने जाते थे? ये किस तरह हुआ कि लोग, मूसा, यसअयाह, यर्मियाह, होसेअ, योएल, आमोस, मीकाह वग़ैरह-वग़ैरह नबियों के कलाम को ख़ुदा का इल्हाम किया हुआ मानने और उस पर अमल करने लग गए। मूसा के सिवा, और किसी के हक़ में ऐसे मोअजिज़े या निशान नाज़िल नहीं हुए थे। और ना आस्मान से कोई इस क़िस्म की सदा सुनाई दी। जो लोगों को उन की इताअत (ताबादारी) का हुक्म देती थी। और ना उनका इलाही-उल-अस्ल होना किसी बैरूनी इख़्तियार के ज़रीये से क़ायम किया गया, तो फिर किस वजह से उन के अक़्वाल क़ुबूल किए गए?

ये ज़ाहिर है कि इस का फ़क़त एक ही जवाब हो सकता है, "ये बुज़ुर्गी उन्होंने अपने ही अंदरूनी दाअवों के लिहाज़ से हासिल की। इन्सानों को मजबूरन ये इक़बाल (क़ुबूल करना) करना पड़ा कि उन अम्बिया का ये दाअवा कि "ख़ुदावंद का कलाम उन पर नाज़िल हुआ है" सच्चा है इन अम्बिया के पैग़ामों में और उस शहादत में जो उनके शामिल-ए-हाल थी। एक ऐसी बात थी जो ख़्वाह-मख़्वाह यक़ीन पर मज्बूर करती थी। जब कोई नबी ज़ाहिर होता था, तो उस के दाअवे पर अक्सर झगड़ा हुआ करता था। और अक्सर ये झगड़ा बड़े जोश व ख़ुरोश के साथ होता था। लेकिन तो भी नबी की आवाज़, और जो पैग़ाम वो ख़ुदावंद की तरफ़ से लाता था। उस के अपने ही ज़माने में चंद ईमानदार लोग क़ुबूल कर लेते थे। और रफ़्ता-रफ़्ता मगर यक़ीनी तौर पर उस के दूसरे हम क़ौमों को मानना ही पड़ता था।

"इब्रानी नविश्तों की इस तारीख़ में तुम्हें साफ़ साफ़ और क़तई शहादत इस अम्र की मिलती है कि पाक नविश्तों की इस इख़्तियार व सनद की असली बुनियाद क्या है। कोई बैरूनी साहिब-ए-इख़्तियार शख़्स या जमाअत ना थी। जिनसे इस बारे में अपील की

जाती। मोअजिज़ों की शहादत भी हमेशा मौजूद नहीं होती थी। और अगर होती भी तो वो बजाए ख़ुद एक क़तई सबूत नहीं ठहर सकती थी। नबियों का पैग़ाम ख़ुदावंद का कलाम था। और वो इस से बढ़कर और कोई सनद इस के सबूत में पेश ना कर सकते थे। मगर जल्दी या देर के बाद वो कलाम ख़ुद बख़ुद लोगों को उस की मक़बूलियत पर मज्बूर करता था। और जूँ-जूँ यहूदी क़ौम की उम्र ज़्यादा होती गई। और जिस क़द्र इन पाक किताबों को लोगों के दिलों पर अपना डालने का ज़्यादा मौक़ा मिला। इसी क़द्र ज़्यादा कामिल तौर पर और बग़ैर दलील व हुज्जत (बहस व मुबाहसा) के उन लोगों ने उनका इलाही-उल-अस्ल और क़ाबिले सनद होना तस्लीम कर लिया। ख़ुदा के कलाम ने अपना रुतबा आप साबित कर दिया। सख़्त दिल और सरकश लोग उस की निस्बत झगड़ा करते रहे। लेकिन वो क़ायम रहा। और आख़िरकार उस ने अपनी राह निकाल ली। उस ने नबियों के इस यक़ीन की भी तस्दीक़ कर दी कि मेरा कलाम मेरे पास बे अंजाम ना फिरेगा। बल्कि जो कुछ मेरी ख़्वाहिश होगी वो उसे पूरा करेगा। और इस काम में जिसके लिए मैंने उसे भेजा मोअस्सर होगा। (यसअयाह 55:11)

और हक़ीक़त में भी ऐसा ही था कि आदमी एक आवाज़ सुनते थे और उन्हें इस अम्र का फ़ैसला करना होता था कि वो आवाज़ किस की तरफ़ से आई है। क्या वो हेइयत नाक और दिल में चुभने वाले यर्मियाह के अक़्वाल फ़क़त एक ऐसे आदमी ही के अक़्वाल समझने चाहियें। जो अपने हम-जिंसों से ज़रा ज़्यादा दाना और बेहतर था? या क्या वो सच-मुच जैसा कि नबी कहता था, उस ख़ुदा क़ादिर का कलाम था। जो दिलों को जाँचता है। जो हमारी राहों को देखता है। और हमारे बिस्तर के पास होता है और हमारी तमाम रविशों को मालूम कर लेता है? इस आवाज़ का कोई ना कोई मुसन्निफ़ तो ज़रूर ठहराना चाहिए। और जिस क़द्र ज़्यादा उस को सुनते थे। उसी क़द्र उन के शुब्हा कम होते जाते थे कि वो ज़रूर ख़ुदा ही की आवाज़ है। जब एक दफ़ाअ ये बात तस्लीम कर ली गई तो नबी के हर एक क़ौल को जो ये पैग़ाम लेकर आया था लोग ख़्वाह-मख़्वाह क़ीमती समझने लग जाते थे। और बड़ी इज़्ज़त व तौक़ीर की नज़र से देखते और महफ़ूज़ रखते थे। और इस तौर पर वो पाक नविश्तों का मजमूआ बनता गया। जो हमारे ख़ुदावंद के ज़माने में ख़ुदा की इल्हाम की हुई किताब माना जाता था।

मसीहियों के दर्मियान अहद-ए-जदीद के सहीफ़े इसी तरह जैसे कि अहद-ए-अतीक़ के सहीफ़े यहूदीयों के दर्मियान, उन की क़द्रो-क़ीमत के सबब तस्लीम कर लिए

गए थे। बाअज़ गवाह उठे और उन्होंने ख़ुदावंद की ताअलीम को लिख दिया। या बाअज़ पैग़ामात सुना दिए जिनके सुनाने का उन्हें इख़्तियार मिला था या उन्हें लोगों तक पहुंचाने के लिए रूह की हिदायत मिली थी। लोगों को इस अम्र का फ़ैसला करना था आया वो इन दाअवों को क़ुबूल करेंगे या नहीं अपने तौर पर करना होता था। इस में कुछ शक नहीं कि बहुत सी हालतों में गो हमेशा नहीं रसूलों के कलाम की ताईद मोअजिज़ों से भी होती थी। लेकिन गो ये मोअजज़ात कुछ देर के लिए शाहिद (गवाह) का काम देते। मगर वो बज़ाते खुद और तन-ए-तन्हा (एक) इस तमाम मुकदमा के तस्फ़ीया (वज़ाहत) के लिए क़तई शहादत (कामिल गवाही) तस्लीम किए जाने की क़ाबिलीयत नहीं रखते। ये सब महसूस करते थे, कि कोई ज़ाहिरी मोअजिज़ा बजा-ए-ख़ुद किसी इलाही पैग़ाम की तस्दीक़ नहीं कर सकता। अगर इस के साथ ही इस पैग़ाम में अंदरूनी गवाही इस क़िस्म की मौजूद ना हो कि वो दर-हक़ीक़त ख़ुदा ही की तरफ़ से आया है। क़िस्सा मुख़्तसर इब्तिदाई कलीसिया भी। जैसा कि खुद हमारे ख़ुदावंद के ज़माने में, इन्सान के दिल और ज़मीर ही को हाकिम या जज मुक़र्रर किया जाता था। मसीह ख़ुद भी लोगों के दिलों और ज़मीरों को अपना गवाह ठहराता था। और आदमी उस क़ाबिलीयत के मुताबिक़ उसे क़ुबूल करते या रद्द करते थे। जो उस की इलाही ख़सलत (ख़ुदा की तरफ़ से दी गई फ़ित्रत) के पहचानने के लिए उन की फ़ित्रत में रखी गई थी।

“इस तौर से शुरू से आख़िर तक पाक नविश्तों की सनद व इख़्तियार उस सनद व इख़्तयार के हमपल्ला (बराबर) थी, जो वो लोगों को इस अम्र का यक़ीन दिलाने के मुताल्लिक़ कि वो दर-हक़ीक़त ख़ुदा की तरफ़ से हैं। अपनी ज़ात में रखते थे।”[3]

अब क्या ये शहादत इन किताबों के इल्हामी होने के बारे में क़ाबिल लिहाज़ है कि नहीं? हम यक़ीन करते हैं कि ये सब ख़ुदा ही का काम है। बाइबल को महज़ कलीसिया ही ने चुन नहीं लिया। “बाइबल ने भी कलीसिया की तरह उसी रूह-उल-क़ुद्स के अमल से सूरत पकड़ी, जो दोनों की जान है।” ये रूह-उल-क़ुद्स ही का इलाही अमल था, जिसने ख़ास ख़ास किताबों को कलीसिया की दाइमी (हमेशा) ताअलीम व तर्बीयत के लिए चुन लिया। मगर हमें इस अम्र पर भी ज़ोर देना चाहिए, कि इस का तरीक़े अमल

---

[3] ये इबारत कैंबन वेस साहब के एक वाअज़ से ली गई है।

ये था कि इन्सानी अर्वाह को ज़िंदगी बख़्शने और उन की राहनुमाई करे कि वो इस चीज़ को जो उन की मज़्हबी ज़िंदगी के लिए ममदू मुआविन (मददगार) और तहरीक करने वाली थी इंतिख़ाब कर लें। और अदब व इज़्ज़त के साथ उसे इस्तिमाल में लाएं और उसी इलाही तमीज़ के ज़रीये से लोगों ने आख़िरकार बतद्रीज गो इस अम्र को जाने बग़ैर चंद तहरीरात के मजमुए को मुस्तनद (तस्दीक़ किया हुआ) किताबें तस्लीम कर लिया। इस तौर से गोया बाइबल ने ख़ुद अपने आपको उस इलाही ताक़त के वसीले से जो उस में फ़ित्रतन मौजूद थी बना लिया। उस ने ख़ुद अपना रास्ता तैयार किया। और ख़ुद ही अपने लिए तख़्त मुहय्या किया। और इन्सानी शऊर में जो नेकी का माद्दा व दिअत (अमानत) किया हुआ है। उस ने इस अम्र को तस्लीम कर लिया, कि बाइबल फ़िल-हक़ीक़त इस लायक़ है कि हमारा हाकिम व रहनुमा हो।

यही अम्र है जिसे मैं खासतौर पर ज़हन नशीन करना चाहता हूँ कि बाइबल ने अपनी इलाही ताक़त का सबूत इस अम्र से दिया है। और अपने मौजूदा रुतबे को इसी वजह से पहुंचा है कि उस ने इन्सान की बहुत सी नसलों पर उन की क़ुव्वत शऊर और ज़मीर पर अपना सिक्का बिठा कर उन को अपना गरवीदा (आशिक़) कर लिया है। और इसी बिना पर वो आजकल भी हुक्मरानी कर रहा है। मैं ख़ासकर तुम्हें ये दिखाना चाहता हूँ बाइबल की मौजूदा हैसियत किसी मोअजिज़ा या किसी कलीसिया या कौंसल की सनद (सबूत) पर मुन्हसिर (ठहराना) नहीं है। बल्कि उस इख़्तियार और तासीर (असर) पर जो वो लोगों की ज़मीर और ज़हन पर करता है। मुम्किन है कि तुम किसी मोअजिज़ा की निस्बत शक करो। बल्कि अपनी फ़ित्रती तमीज़ पर भी शक करने लग जाओ और शायद किसी जमाअत के इख़्तियार को मानने में भी तुम्हें ताअमुल (सोचना) हो। मगर तुम सैंकड़ों नसलों के यक़ीन व एतिमाद पर ऐसी आसानी से शुब्हा (शक) नहीं कर सकते। उन्होंने इस किताब से नूरे हिदायत उम्मीद व इत्मीनान हासिल किया।

उन्हों ने इसी किताब से नेक बनने की क़ुव्वत हासिल की और उन्हें यक़ीन हो गया कि वो दर-हक़ीक़त ख़ुदा की तरफ़ से आई है।[4]

---

[4] मैं जानता हूँ कि इस मौक़े पर लोग कहेंगे, कि इस दलील की बिना पर तो क़ुरआन और हिन्दुस्तान की दीगर मुक़द्दस किताबों का मक़्बूले आम होना भी इसी नतीजा को चाहेगा। और इस तौर से ये दलील कमज़ोर हो जाएगी। लेकिन मुझे इस अम्र की क़बूलीयत में कुछ भी ताम्मुल नहीं, कि इन किताबों में

इसलिए बाइबल का मदार (क़ियाम) किसी ऐसी बुनियाद पर नहीं है जिसे कोई आदमी उखाड़ सके। इस का इख़्तियार व सनद आज के दिन इसी अम्र पर मौक़ूफ़ (ठहराया गया) है, कि वो इस मौजूदा नस्ल के दिल और ज़मीर को अपील (दरख़्वास्त) करता है। और ये अपील उस अपील के नतीजे से और भी ज़्यादा क़वी (मज़्बूत) हो गई है, जो वो गुज़श्ता नसलों के दिल व दिमाग़ को करता रहा है। तमाम ज़मानों में सबसे बेहतर और पाक लोग और जो इस वजह से एक मज़्हबी किताब के मुताल्लिक़ राय देने की ज़्यादा क़ाबिलीयत रखते हैं इस किताब के हक़ में गवाही देते चले आए हैं और इस गवाही ने जमा होते होते एक बहुत बड़े अंबार (ढेर) की सूरत इख़्तियार करली है।

अब ज़रा थोड़ी देर के लिए ताम्मुल (सोच बिचार) कर के इन वाक़ियात की अज़मत (बढ़ाई) पर निगाह करो और इस तस्दीक़ की क़ुव्वत को भी महसूस करो जो ख़ुद तुम्हारी ज़मीर की शहादत को मज़्बूत करती है। इस बात पर ख़ूब लिहाज़ करो कि इस किताब की क़ुद्रत पहले की निस्बत अब और भी ज़्यादा हो गई है। इस बात पर भी लिहाज़ करो कि जो अक़्ली या अख़्लाक़ी मुश्किलात लोगों को आजकल इस में नज़र आती हैं। वो हमेशा से इस में मौजूद थीं और हमेशा लोगों की नज़रों के सामने रही हैं। ये भी याद रखो कि वो बावजूद उन सख़्त और शदीद हमलों के जो गुज़श्ता सदीयों में बराबर इस पर होते रहे हैं। अपने इख़्तियार व अज़मत के रुतबे पर साबित व क़ायम

किसी क़द्र उन की क़बूलीयत की वजह यही है कि वो लोगों की ज़मीर को अपील करती हैं। क्यों कि उन में भी "इस नूर की जो हर एक आदमी को दुनिया में आता है, रोशन करता है।" शिकस्ता शआएं पाई जाती हैं। मुझे ये सुन कर सख़्त अफ़्सोस होगा। अगर कोई कहे कि मसीही दीन अपने पैरओं से इस क़िस्म के यक़ीन का ख़्वाहां है कि सारे आलम के ख़ुदा और बाप ने सारी ग़ैर-मसीही दुनिया को अपनी तरफ़ से किसी क़िस्म की रोशनी दिए बग़ैर अकेला छोड़ दिया। मगर तो भी यक़ीनन बाइबल और इन किताबों की हैसियत में बड़ा फ़र्क़ है। जो अच्छी बातें क़ुरआन में पाई जाती हैं, वो पहले ही मसीही और यहूदी अदयान (दीन की जमा) में मौजूद थीं। और वो फ़क़त इन्हीं में से अख़ज़ किया गया है और इस के इलावा वो फ़क़त मुहम्मद साहब के इख़्तियार सनद पर जारी किया गया था। और ये दाव अक्सर तल्वार के ज़रीये से मनवाया जाता था। हिन्दुस्तान की कुतुब-ए-मुक़द्दसा अगरचे कूड़े क्रकेट के ढेरों के दर्मियान रुहानी सच्चाइयों के मोती भी कहीं कहीं पाए जाते हैं। यक़ीनन इस दलील के मुताबिक़ बाइबल के मुक़ाबले में पेश किए जाने के क़ाबिल नहीं हैं। उनका अदना और जाहिल अक़्वाम के दर्मियान जिनमें से बहुत कम लोग उन के मज़ामीन से पूरी वाफ़कीत रखते हैं। माना जाना एक बिल्कुल दूसरी बात है। बाइबल को दुनिया की आला अक़्वाम के दर्मियान क़बूलीयत हासिल है। जहां अक्सर लोग इस के मज़ामीन से वाक़िफ़ हैं। और इस की तहक़ीक़ात व जुस्तजू में मशग़ूल हैं। और जिनके लिए उस की क़बूलीयत या रद्द बड़ा अहम और गिरां क़दर अम्र है।

रही है। मुल्हिदीन (लादीन) बेशुमार दफ़ाअ अपनी तरफ़ उस का क़िला क़ुमा (ख़ातिमा) कर चुके हैं। मगर उस का नतीजा यही होता रहा, कि बजाए बर्बाद होने के उस की ताक़त दिन-ब-दिन बढ़ती गई है। यहां तक कि **आज के दिन इन्सानी ज़िंदगी में से बाइबल को उखाड़ फैंकना ऐसा ही मुश्किल होगा जैसा सूरज को आस्मान में से निकाल फैंकना।**

सिर्फ एक वाक़िये को बतौर मिसाल के लीजिए। सौ साल का अर्सा हुआ वालेटर फ़्रांस के एक मशहूर दहरीये (ख़ुदा को ना मानने वाले) ने अपने नज़्दीक इस की कामिल तर्दीद (मुकम्मल रद्द करना) कर दी। और लिखा कि :-

> **"एक सदी के अर्से में बाइबल और मसीही दीन गुज़िश्ता ज़माने की बातें समझी जाएँगी।"**

मगर देखो कि इस की पैशनगोई किस तरह पूरी हुई? इस के ज़माने से पेश्तर सारी दुनिया में शुरू से लेकर मुश्किल से साठ (60) लाख बाइबल के नुस्ख़े तैयार किए गए होंगे। मगर उस के ज़माने से लेकर एक ही सदी के अर्से में (2) अरब से ज़्यादा बाइबल और बाइबल के सहीफ़े छापाख़ाने से निकले। और वो भी ऐसी हैं जो इल्म व दानिश और नुक्ता-चीनी और सच्चाई की जांच पड़ताल के लिहाज़ से सब पर सबक़त (बरतरी) रखती है। और इस वक़्त अस्सी (80) मुख़्तलिफ़ बाइबल सोसाइटियां इन्सान की हर एक मालूमा ज़बान (जानी गई ज़बान) में और दुनिया के हर हिस्से में उसी किताब को तक़्सीम कर रहे हैं।

अगर ये किताब इलाही-उल-अस्ल ना हो तो वाक़ई ये एक निहायत ही अजीब व ग़रीब बात होगी। मुल्हिदों में अगर कुछ हौसला है तो इन वाक़ियात की कोई और इत्मीनान बख़्श तश्रीह कर दिखाएं। जिस मसीही के दिल में किसी क़िस्म की बेचैनी पैदा हो रही है। उसे चाहिए कि इस बात से हिम्मत पकड़े और ये कभी ना भूले कि ख़्वाह इन्सान के ख़यालात बाइबल के मुताल्लिक़ कितने ही तब्दील क्यों ना हो जाएं मगर ये वाक़ियात हरगिज़ हल जल नहीं सकते।

(3) ख़ुद किताब की शहादत

अब हम ख़ुद किताब की तरफ़ मुतवज्जोह हो कर इस का इम्तिहान करते हैं और ये मालूम करने की कोशिश करते हैं कि क्या वजह है कि ये तमाम ज़मानों में ऐसे बाइख़्तियार तौर पर लोगों को अपना गर्दीदा (आशिक़) बनाती रही है। बैरूनी शहादत जिसने इब्तिदाई कलीसिया के दिलों पर असर डाला हम इस वक़्त इस का ठीक-ठीक खोज (सुराग़) नहीं लगा सकते। इस अम्र (फ़ेअल) में हम फ़क़त इन की शहादत (सबूत) ही को क़ुबूल कर सकते हैं। अंदरूनी शहादत जिससे इस की वो तासीर मुराद है जो वो इन्सान के दिल और ज़मीर पर करता है। उस की निस्बत "हर एक आदमी जो ख़ुदा की मर्ज़ी बजा लाना चाहता है।"

अब भी इस का अंदाज़ा लगा सकता है। अब हम मुख़्तसर तौर पर किताब पर नज़र डालते हैं और दियानतदारी से इस को जांचने की कोशिश करते हैं। इसलिए हमें वो बातें जो नुक़्स या क़सूर मालूम हों नज़रअंदाज- नहीं करनी चाहियें। गोया कि वो अगले ज़मानों में ऐसी ना मालूम ही हों। अब हम उस की बड़ीबड़ी- ख़ुसूसियात को दर्याफ़्त करने की कोशिश करेंगे।

सबसे पहले हमें ये एक अजीब बात मालूम होती है कि दुनिया और इस के तमाम तफ़क्कुरात (फ़िक्रें) और कारोबार के दर्मियान ये किताब दुनिया-दारों की तरह दुनिया परस्त नहीं मालूम होती। वह रूह के आलम-ए-बाला से वास्ता रखती है। वो कम व बेश फ़साहत (ख़ुश-बयानी) के साथ लोगों को ख़ुदा और फ़र्ज़ और रास्तबाज़ ज़िंदगी की बराबर ताअलीम देती रही है। हमें इस में ऐसे ख़यालात का सामना होता है जो इस दुनिया के इल्म से बाला हैं। ये ख़ुदा की मुहब्बत, ख़ुदा की उलूहियत यानी बाप होने ख़ुदा की माफ़ी के मुताल्लिक़ ख़यालात हैं। और वो हमें ये ताअलीम देती है कि हमारा फ़र्ज़ है कि हम अपनी ज़िंदगी उसी को तस्लीम कर दें और फिर उसी की ख़िदमत में ज़िंदगी बसर करें। क्या इस क़िस्म के ख़यालात महज़ इन्सानी दिल से बिला किसी बालाई इमदाद (आस्मानी मदद) के पैदा हो सकते थे?

1. हम इस में यहूदीयों की क़ौमी तारीख़ पाते हैं।

यक़ीनन क़ौमी तारीख़ कभी ऐसे अजीब व ग़रीब तौर पर नहीं लिखी गई होगी। इस में हर एक चीज़ इलाही पहलू से देखी जाती है कि उस का उस के साथ क्या लगाओ

है। दूसरी क़ौमों के तहरीरी वाक़ियात में ये दर्ज है कि इस या उस अज़ीमुश्शान बादशाह ने क्या-क्या कारहाए (नुमायां कारनामे) किए। किस तरह उस क़ौम ने अपने दुश्मनों पर फ़त्ह पाई या उन से मफ़तूह (फ़त्ह किया गया) हो गई। मगर यहूदीयों की तारीख़ में हर एक बात ख़ुदा की तरफ़ मन्सूब है। ये ख़ुदा था जिसने फ़त्ह पाई। ये ख़ुदा ही था जिसने रिहाई दिलाई। ख़ुदा ही था जिसने सज़ा दी। ख़ुदा ही था जो ताअलीम देता है। इस में क़ौमी शान व शौकत या हश्मत व जलाल की निस्बत कोई फ़ख़्र नहीं पाया जाता। और ना ख़ुद सराय कर के क़ौम को शेख़ी बघारने का मौक़ा दिया गया है। बल्कि उन के बड़े से बड़े गुनाह और ज़िल्लतें और सज़ाएं ऐसे ही पूरे तौर पर बे कम व कासित (बग़ैर कमी-बेशी) के बयान कर दी हैं। जैसे उन की ख़ुशीयां और फ़ुतूहात।

दूसरी अक़्वाम में इनकी क़ुद्रत और मुरफ़्फ़ा अल-हाली (ख़ुशहाली) आसाइश और माल व दौलत पर बहुत ज़ोर दिया गया है। मगर इन अजीब तहरीरों में फ़क़त नेकी ही एक क़ाबिल लिहाज़ चीज़ समझी जाती है। नेकी करना और रास्ती पर कारबन्द (क़ायम) होना। सर्वत या दौलत या दुनियावी कामयाबी की निस्बत बहुत ज़्यादा क़ाबिल-ए-क़दर और क़ीमती समझा जाता है अगर हम इस क़िस्म की तारीख़ नवीसी को महज़ एक ज़मीनी बात समझें तो ये एक अजीब बात होगी। मगर अफ़्सोस है कि ना तो हमें और ना और किसी क़ौम को तारीख़ नवीसी का ढंग (तरीक़ा) आया।

2. हम बराबर गोया एक क़िस्म की ख़ुफ़ीया आवाज़

इस तारीख़ के सिलसिले में सुनते आते हैं। जो लोगों को धमकाती, हिम्मत दिलाती और जब कभी वो ना रज़ामंद होते हैं, तो उन की मिन्नत करती पाई जाती है। इस किताब में नबी या मुअर्रिख़ या मुक़न्निन (क़ानून बनाने वाला) का फ़क़त यही फ़र्ज़ मालूम होता है कि गुनाह के लिए मलामत करे। पाकीज़गी व तक़द्दुस की तर्ग़ीब व तहरीस (लालच) दे और लोगों को (जैसा कि कहीं कहीं, गो ऐसी सफ़ाई के साथ नहीं नज़र आता है) एक शरीफ़ और ख़ूबसूरत ज़िंदगी के नमूने की तरफ़ मुतवज्जोह करे यक़ीनन इस क़िस्म की बात और क़ौमों की तारीख़ में मुश्किल से मिलेगी।

क्या कोई शख़्स ये कहेगा कि ये अम्र यहूदी क़ौम के अख़्लाक़ी मीलान (अख़्लाक़ी रुझान) के तबई नश्वो नुमा का नतीजा था? लेकिन क्या ये सच है? मगर वो क़ौम तो

ख़ुद अपनी ज़बान से ये इक़रार करती है कि उनका तबई मीलान ज़्यादा बुत-परस्ती और हरामकारी की तरफ़ था। इस बात को याद करो कि कैसी ना रजामंदी के साथ वो ताअलीम को क़ुबूल करते थे। और किस क़द्र कम उस पर कारबन्द होते थे। वो किस तरह अपने अम्बिया को जो उन के पास पैग़ाम लेकर आते थे। क़त्ल कर देते थे और वो बिल्कुल इस क़ौल के मिस्दाक़ (गवाह) थे। जैसा कि स्तिफ़नुस ने उन्हें ख़िताब करके कहा था कि "ऐ सरकशो और दिल और कान के ना-मख्तुनो। तुम हर वक़्त रूह-उल-क़ुद्स की मुख़ालिफ़त करते हो" नहीं, बनी-इस्राईल के तबई मीलान और ख़ुद आगाही से इस क़िस्म की आवाज़ का निकलना हरगिज़ मुम्किन ना था।

3. फिर इस क़ौम की क़ौमी नज़्मों और गीतों पर नज़र करो

मेरे नज़्दीक तो ये सारे आलम की तारीख़ में एक अजीब व ग़रीब मोअजिज़ा मालूम होता है। ऐसा मोअजिज़ा कि जान बराईट इंग्लिस्तान का मशहूर फ़सीह व बलीग़ (ख़ुशबयान फ़ाज़िल) मुक़र्रर ये कहा करता था कि :-

> "फ़क़त यही एक बात बाइबल को इल्हामी साबित करने के लिए काफ़ी है। मैं नहीं ख़याल कर सकता कि कोई गरम-जोश और रास्ती पसंद बेदीन शख़्स भी इनको अच्छी तरह से मुतालआ करे और फिर भी ये कहे कि ये मामूली इन्सानी दिमाग़ की पैदावार है।"

जब में उस ज़माने की दुनियावी तारीख़ पर नज़र करता हूँ, जब कि ज़बूर लिखी गई और इस अम्र के लिए मैं आख़िरी से आख़िरी तारीख़ लूँगा, जो कि आजकल के उलमा ने बहुत सी नुक्ता-चीनी और छानबीन के बाद ठहराई है। और जब मैं उस ज़माने की ग़लाज़त (गंदगी) और हरामकारी, बुत-परस्ती और बातिल परस्ती और ख़ुदा और फ़र्ज़ की निस्बत उन के अदना और ज़लील ख़यालों को देखता हूँ। और जब मैं उस तारीख़ को अपनी बाइबल के मुक़ाबले में रखकर ज़बूर की किताब पर नज़र डालता हूँ। तो मुझे यक़ीन होता है कि सख़्त से सख़्त और कट्टर मुल्हिद (बेदीन) भी इन दोनों के बाहमी इख़्तिलाफ़ को देखकर इस अम्र का इक़रार करने पर मज्बूर होगा।

> ऐ ख़ुदा अपनी रहमत के मुताबिक़ मुझ पर तरस खा। और अपने रहम की कस्रत के मुवाफ़िक़ मेरे गुनाह मिटा दे। मुझे मेरी बदकारी से ख़ूब धो। और मेरी ख़ता (ग़लती) से मुझे पाक कर। क्यों कि मैं अपने गुनाह मान लेता हूँ। और मेरी ख़ता हमेशा मेरे सामने है। मैंने फ़क़त तेरी ही ख़ता की है। और जो तेरी नज़र में बुरा है। सो मैंने किया ताकि तू अपनी बातों में सादिक़ (सच्चा) ठहरे। और अपने इन्साफ़ में ठीक निकले। मेरी ख़ताओं से चश्मपोशी (नज़र-अंदाज) कर। और मेरी सब बदकारीयाँ मिटा डाल। ऐ ख़ुदा मुझमें एक पाक-दिल ख़ल्क़ (पैदा) कर और एक मुस्तक़ीम (मज़्बूत) रूह मेरे अंदर नए सर से डाल मुझे अपने हुज़ूर से मत निकाल। और अपनी पाक रूह मुझसे मत लेले। ख़ुदा की क़ुर्बानियां शिकस्ता-दिल में शिकस्ता और ख़स्तादिल को ऐ ख़ुदा तू नाचीज़ ना समझेगा।[5]

ऐ मेरी जान यहोवा को मुबारक कह। और जो कुछ मुझमें है। उस के मुक़द्दस नाम को मुबारक कह ऐ मेरी जान यहोवा को मुबारक कह। और उस के एहसान को मत भूल। जो तेरी सारी बदकारियों को माफ करता है। जो तुझे सारी बीमारीयों से शिफ़ा बख़्शता है जो तेरी ज़िंदगी को नेस्ती से छुड़ाता है। जो रहमत और करम तुझे घेरता है। यहोवा रहीम व करीम है। ग़ुस्से में धीमा और रहमत में बढ़कर। वो ता-अबद मलामत करता ना रहेगा। वो ता-अबद ग़ुस्सा ना रहेगा। उस ने हमारी ख़ताओं (ग़लतीयों) के मुवाफ़िक़ हमसे सुलूक ना किया। उस ने हमारी बदकारियों के मुताबिक़ हमें बदला ना दिया। क्यों कि देखो, आस्मान ज़मीन से किस क़द्र बुलंद है। इसी क़द्र उस की रहमत उस से डरने वालों पर बड़ी है। देखो पूरब पक्षिम से कितना दूर है। इतने इतने ही दूर हमसे उसने हमारे गुनाह डाल दिए। हाँ जैसे बाप अपने बच्चों पर तरस खाता है। ऐसे ही

---

[5] ज़बूर 5

यहोवा उन पर जो उस से डरते हैं रहम करता है। क्यों कि वो हमारी हक़ीक़त जानता है। वो याद रखता है कि हम ख़ाक ही तो हैं।[6]

यहोवा मेरा चौपान है। मुझे कुछ कमी नहीं। वो मुझे हरी चरागाहों में बिठाता है। वो मुझे राहत के पानी की तरफ़ ले चलता है। वो मेरी जान ठिकाने पर ले आता है। वो अपने नाम की ख़ातिर सदाक़त की राहों पर मेरी रहनुमाई करता है। बल्कि जो मैं मौत के साये की वादी में भी चलूं। तो भी मुझे ख़ौफ़ व ख़तर ना होगा। क्यों कि तू मेरे साथ है। तेरी छड़ी और तेरी लाठी वही मेरी तसल्ली करेंगे। तू मेरे दुश्मनों के रूबरू मेरे आगे दस्तर ख़्वान बिछाता है। तू मेरे सर पर तेल मलता है। मेरा पियाला लबरेज़ है। हक़ीक़त में भलाई और रहमत उम्र-भर मेरा पीछा करेंगे। और मैं यहोवा के घर अबद-उल-आबाद तक सुकूनत करूँगा।"[7]

मैं ऐसे ज़बूरों से जिनमें दुश्मनों को कोसा गया है। या और इसी क़िस्म के उयूब (ऐब की जमा) से बे-ख़बर नहीं हूँ मैं इस मज़्मून पर आगे चल कर बहस करूँगा। वो बातें इस अजीब व ग़रीब और शानदार मजमूए में ऐसी मालूम होती हैं जैसे मसूरी के चेहरे के दाग़। सोचो कि ये नज़्में उस ज़माने में लिखी गईं, जब कि रूम-तुल-कुबरा की बुनियाद रखी गई थी। और फिर अपने दिलों से सवाल करो कि क्या महज़ इन्सान ही इस क़िस्म का कलाम बना सकता था?

4 .और अब मैं एक और अजीब अम्र का बयान करूँगा

जब हम इस किताब का इम्तिहान करते हैं तो हम उस में मुअल्लिमों का एक सिलसिला पाते हैं। इनकी निस्बत हरगिज़ नहीं कहा जा सकता कि वो महज़ मज़्हबी जोश व ख़ुरोश के ग़ुलाम थे। क्यों कि वो बड़े ठंडे दिल से बातें करते और साहिब-ए-अक़्ल व शऊर मालूम होते हैं। और उनको दग़ाबाज़ या मक्कार भी नहीं कह सकते। क्यों कि उन की ताअलीम बहुत ही आला पाये की है और बावजूद ये कि उन की जान इस के

---

6 ज़बूर 103

7 ज़बूर 23

सबब से माअरज़ ख़तर में थी। तो भी वो दाएवे से कहते हैं कि वो यहोवा की तरफ़ से बोलते हैं। ऐसा मालूम होता है कि गोया वो महसूस करते थे कि कोई ख़ुफ़ीया रूह उन की रूह के साथ जद्दो जहद करती है। और उन्हें ताअलीम व रोशनी बख़्शती है। यहां तक कि बाज़ औक़ात उन्हें कलाम करने पर भी मज्बूर करती है। अम्बिया के सारे सहीफ़ों को पढ़ जाओ इस बात का ज़ोर महसूस करो कि किस तरह वो इन अल्फ़ाज़ को बार-बार दोहराते हैं। "ख़ुदावंद का कलाम "ख़ुदावंद यूं फ़रमाता है" वग़ैरहवग़ैरह-। बाज़ औक़ात तुम ये भी देखोगे कि नीम रज़ानबी "ख़ुदावंद के बोझ के नीचे आह व नाला करता नज़र आता है और बाज़ औक़ात ऐसा मालूम होता है कि गोया अपनी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ इस अम्र पर मज्बूर किया जाता है कि ख़ुदा की मिन्नतों या धमकीयों की बाबत लोगों से कलाम करे। और ये सब अक्सर औक़ात अपनी जान को हथेली पर रखकर करता है। और जब तुम ये सब कुछ देख चुको। तो फिर अपने दिल से सवाल करो कि क्या ऐसी बातें मामूली इन्सानी तारीख़ों में पाई जाती हैं।

5. अब इस किताब की और ख़ुसूसीयत भी देखो

वो आइन्दा ज़माने के मुताल्लिक़ पैशन गोई करती है। और इस की पेश ख़बरियाँ पूरी भी हो जाती हैं। भला कौन दाना या मुदब्बिर बिला-इमदाद आलम-ए-बाला ऐसा कर सकता था?। ख़ुदा फ़रमाता है "कौन है जो मेरी तरह आने वाली बातों की ख़बर दे।" भला जहां इस क़द्र कस्रत से ऐसे वाक़ियात हों। मैं वहां किस-किस को बतौर मिसाल के चुनूं? नबी के जो हिज़क़ियाह को कैद-ए-बाबुल से (150) साल पहले सख़्त लानत मलामत करता है। उस के अल्फ़ाज़ सुनो, "रबअफ़्वाज-उल- का कलाम सुन। देख वो दिन आते हैं। कि अब जो कुछ कि तेरे घर में है। और जो कुछ कि तेरे बाप दादों ने आज के दिन तक ज़ख़ीरा कर रखा है। उठा के बाबुल को ले जाऐंगे। ख़ुदावंद फ़रमाता है, कि कोई चीज़ बाक़ी ना छूटेगी। और वो तेरे बेटों में से जो तेरी नस्ल से होंगे। और तुझसे पैदा होंगे। ले जाऐंगे और वो शाह बाबुल के क़सर (महल) में ख़वाजासरा होंगे।" (यसअयाह 39:5-7) फिर सुनो कि मीकाह नबी भी इसी क़ैद की ख़बर देता है मगर साथ ही उस रिहाई का भी जो उस के बाद वाक़ेअ होगी ज़िक्र करता है। (मीकाह 2:10) फिर उन पेश ख़बरियों को देखो जिनमें ख़बर दी गई है कि बाबुल एक वीराना हो जाएगा और नैनवा बिल्कुल उजाड़ हो जाएगा। सूर जाल बिछाने के लिए बतौर चट्टान के होगा। और इस्राईल तमाम क़ौमों में परागंदा हो जाऐंगे। और यरूशलेम ग़ैर-अक़्वाम के पांव तले रौंदा

जाएगा। क्या ये बातें फ़क़त तेज़ फ़हम मोअर्रिखों की महज़ दूर अंदेशी की बातें थीं या कि बाइबल के ये अलफ़ात लफ़्ज़ी तौर पर सही हैं, कि "नबुव्वत की कोई बात आदमी की ख़्वाहिश से कभी नहीं हुई। बल्कि आदमी ख़ुदा की तरफ़ से रूह-उल-क़ुद्स की तहरीक के सबब बोलते थे।" (2 पतरस 1:21)

मगर ऐसी पैशन गोईयाँ जो महज़ क़ौमी हालात के मुताल्लिक़ थीं। ऐसी बहुत अहम नहीं कि हम उन पर यहां ज़्यादा अर्से तक ठहरें। अब हम उन की तरफ़ मुतवज्जोह होते हैं जिनकी बिना पर दूर दराज़ अर्से से वो मसीह के उम्मीदवार व मुंतज़िर चले आते हैं। हर एक शख़्स जो बड़ी एहतियात से इस किताब को मुतालआ करेगा देख लेगा कि सारे अहद-ए-अतीक़ (पुराना अहदनामा) की नबुव्वतों में एक तिलाई दोज़ी (सोने का काम) के तौर पर ये गहरा यक़ीन पाया जाता है, कि ख़ुदा के पास अपनी कलीसिया के वास्ते एक और बेशक़ीमत चीज़ मौजूद है जो बनी-इस्राईल की मामूली शिकस्तों और फ़तहयाबियों, क़ैदों और बहालियों से कहीं बढ़कर है। और जिसके लिए ये तमाम वाक़ियात एक तरह से रास्ता तैयार कर रहे हैं। कम व बेश सफ़ाई के ये यक़ीन हर ज़माने में पाया जाता है कि किसी ना किसी तरह और कभी ना कभी एक कामिल (मुकम्मल) रिहाई ख़लासी और ख़ुदा के साथ ज़्यादा क़रीबी और हक़ीक़ी इत्तिहाद और यगानगत हासिल होगी। और ख़ुदा की हुज़ूरी और क़ुर्बत) नज़दिकी (खासतौर पर अयाँ (ज़ाहिर) होगी। कहीं-कहीं हम इस अम्र के मुताल्लिक़ ज़्यादा साफ़ और वाज़ेह पेश ख़बरीयाँ भी पाते हैं। कभी तो एक तुख़्म या नस्ल का ज़िक्र पढ़ते हैं जो साँप के सर को कुचलेगा और जिसमें दुनिया की सारी कौमें बरकत पाएँगी। कभी एक नबी का ज़िक्र पढ़ते हैं। जो मूसा की मानिंद ख़ुदा की तरफ़ से मबऊस (नबी का भेजा जाना) होगा। कभी एक बच्चे के पैदा होने या एक फ़र्ज़न्द के अता होने का ज़िक्र पढ़ते हैं, जिसका नाम ख़ुदा-ए-क़ादिर, अबदीयत का बाप, अमन का शहज़ादा होगा या एक रास्त बाज़ ख़ादिम का बयान पाते हैं जिस पर ख़ुदावंद सबकी बदकारीयाँ लाद देगा। कहीं एक मसीह शहज़ादे का ज़िक्र है जो काटा जाएगा। मगर अपने लिए नहीं या किसी शख़्स का जो इब्ने आदम का की मानिंद है जिस को एक अबदी सल्तनत बख़्शी गई। एक ऐसी हुकूमत जो कभी टल ना जाएगी। कहीं हम दूसरी हैकल की शान व शौकत का ज़िक्र पाते हैं। जो पहली हैकल से कहीं बढ़कर होगी। अल-ग़र्ज़ इसी क़िस्म की बहुत सी पेश ख़बरीयाँ इस किताब में दर्ज हैं और यक़ीनन ये एक और भी अजीब बात मालूम होती है कि बावजूद इस के कि यहूदी अपने को दूसरी अक़्वाम से बिल्कुल अलग समझते थे और

इस अम्र के लिए बड़े ग़ैरत मंद भी थे। तो भी इस आने वाले मसीह की निस्बत ये भी इसी किताब में लिखा है कि वह ग़ैर-अक़्वाम का नजात देने वाला भी होगा। "क्या ये कम है कि तो याक़ूब के फ़िर्क़ों के बरपा करने और इस्राईल के बचे हुओं के फिरा लाने के लिए मेरा बंदा हो? मगर मैंने तुझको ग़ैर क़ौमों के लिए भी बतौर नूर के बख़्शा है। कि तेरे ज़रीये मेरी नजात ज़मीन के किनारों तक भी पहुंचे।" (यसअयाह 6:49)

लोग जिस तरह चाहें कि इन आयात की तश्रीह करें। मगर ये एक मानी हुई तारीख़ी बात है, कि इन पेश ख़बरियों के सबब से यहूदीयों के दर्मियान कम व बेश सफ़ाई के साथ एक सल्तनत और एक मसीह की जो किसी ना किसी माअनों में इलाही होगा। एक उम्मीद पैदा हो गई थी। हमें साफ़ दिल के साथ दर्याफ़्त करना चाहिए कि आया इन बातों से हम किसी क़िस्म की तश्रीह व तफ़्सीर करके पीछा छुड़ा सकते हैं। नुक्ता चीन लोग जितना चाहें किताब ज़माना तहरीर की निस्बत छानबीन करें। मगर इस अम्र में से कोई शख्स कभी भी इन्कार नहीं कर सकता कि वो बहर-सूरत मसीह से कई सौ साल पहले की लिखी हुई हैं। अगर ये पैशन गोईयाँ ऊपर से नहीं आईं, तो कहाँ से आईं? क्या कोई शख़्स इन्हें पढ़ कर ये कहने का हौसला कर सकता है, कि वो महज़ मफ़रूज़ा बातें थीं। जो इत्तिफ़ाक़न दुरुस्त निकल आईं? कोई अक़्लमंद आदमी तो ऐसा कहने का नहीं। यक़ीनन कोई मसीही तो ऐसा नहीं कहेगा। क्यों कि वो जानता है कि हमारा ख़ुदावंद अक्सर इन्ही पेश ख़बरियों का हवाला दिया करता कि ज़रूर है कि ये सब बातें "जिनका ज़िक्र मूसा और अम्बिया और ज़बूरों में इस के हक़ में लिखा है, पूरी हूँ।"

6. और आख़िर में हम इस अजीब व ग़रीब यगानगत का ज़िक्र करते हैं

जो सारी किताब के मुख़्तलिफ़ सहीफ़ों में बाहम पाई जाती है। और ये दलील भी किसी तरह ज़ोर में दूसरी दलाईल से कम नहीं। अगर हम कहें कि कोई बड़ा उस्ताद इस अम्र की हिदायत नहीं कर रहा था। तो हमें बताना पड़ेगा कि ये क्यूँ-कर हुआ कि ये मुख़्तलिफ़ सहीफ़े जिनमें एक दूसरे के दर्मियान बाअज़ सूरतों में सदीयों का वक़्फ़ा था सब मिल-जुल कर एक कामिल और मुत्तहिद किताब बन गई ये ही एक बात इन के इल्हामी होने के के लिए काफ़ी है। मर्हूम डाक्टर डिस्टकोट साहब लिखते हैं, कि :-

> अगर ये मालूम हो कि ये नविश्तों के टुकड़ों का मजमूआ जो सिवाए चंद के बग़ैर किसी बाहमी ताल्लुक़ के ख़याल के। और फिर एक दूसरे से दूर दराज़ फ़ासिले पर और निहायत ही मुख़्तलिफ़ हालात के दर्मियान लिखे गए थे। बावजूद इस के भी बाहम मिल-जुल कर एक ऐसी मुकम्मल किताब बना देता है जो किसी दूसरी किताब की सूरत में देखने में नहीं आता। और फिर इस के इलावा अगर ये मालूम हो जाये कि ये मुख़्तलिफ़ अजज़ा जब तारीख़ी तौर पर इनकी तश्रीह की जाये। तमद्दुनी और रुहानी ज़िंदगी की एक बतद्रीज तरक़्क़ी का निशान देते हैं। जो कम से कम इस लिहाज़ से बाहम मुत्तहिद है, कि इस सब का रुख एक ही जानिब को है।

और अगरचे ये सब कुछ बग़ैर किसी क़िस्म के ज़ाहिरी इरादे और बंदोबस्त के हुआ है। मगर फिर भी उस के मुबय्यना वाक़ियात के बारीक तफ़सीली उमूर में भी ना सिर्फ अजीब क़िस्म की मुताबिक़त और मुवाफ़िक़त पाई जाये। बल्कि तालीमी मसाइल के दर्मियान में भी इत्तिहाद व यगानगत साबित हो। और अगर जिस क़द्र कि वो एक दूसरे से अलेहदा-अलेहदा) अलग-अलग (मालूम होते हैं इसी क़द्र वह एक ही रूह व मिज़ाज से मामूर साबित हों। तो इस सूरत में बिला-ताम्मुल ये तस्लीम करना पड़ेगा कि ख़्वाह वो इब्तिदा में किसी तरह ही वजूद में क्यों ना आए हों। और ख़्वाह किसी सूरत एक जिल्द में जमा क्यों ना किए गए हों। तो भी उन पर इलाही मुहर साफ़-साफ़ सब्त (नक़्श) मालूम होती है। जो इस अम्र की शाहीद (गवाह) है कि ये नविश्ते उन माअनों में ख़ुदा के इल्हाम किए हुए हैं।" जो मअनी हम किसी दूसरी किताब के हक़ में नहीं लगा सकते।[8]

हम यहां इस किताब के इस मुख़्तसर इम्तिहान व तफ़्तीश को ख़त्म करते हैं। बैरूनी तस्दीक़ से बिल्कुल क़त-ए-नज़र कर के हमने पाक नविश्तों में उस अंदरूनी क़ुद्रत को दर्याफ़्त करने की कोशिश की है, जिसके ज़ोर से वो तीन हज़ार साल से लोगों की जिंदगियों पर क़ाबिज़ व हुक्मरान रहे हैं।

---

8 बाइबल कलीसिया में सफ़ा 15

इस बयान में एक अम्र के सिवा हमने दीगर उमूर में फ़क़त अहद-ए-अतीक़ के अदना मुकाशफ़ा ही को मद्दे-नज़र रखा है। क्योंकि ये अहद-ए-अतीक़ के सहीफ़े ही हैं जिन पर आजकल ज़्यादातर एतराज़ किए जाते हैं। और नीज़ इसलिए भी कि जो कुछ इस की अख़्लाक़ी और रुहानी अज़मत के बारे में दुरुस्त व सही साबित होगा। वो बिला-शुब्हा अहद-ए-जदीद के नविश्तों के हक़ में उस से भी बढ़कर सही होगा। इस अदना क़िस्म के मुकाशफे में भी बावजूद इस के ज़ाहिरी नुक़्सों और ऐबों की हमें ज़रूरत से ज़्यादा ऐसी बातें मालूम होती हैं जिनसे हम इस क़ुद्रत का जो वो लोगों के दिलों और ज़मीरों पर रखता है और अंदाज़ा लगा सकते हैं।

अगर हम इस बात को याद रखें कि अहद-ए-जदीद में ये अपील (दरख़्वास्त) ज़ोर व ताक़त में कई गुना बढ़ जाती है। और कि आज के दिन तक कोई क़ौम कोई फ़र्द-ए-वाहिद इस क़िस्म का कोई आला और बुज़ुर्ग नमूना दुनिया के सामने पेश नहीं कर सका। जैसा कि इस किताब में दो हज़ार साल हुए एक निहायत तारीक ज़माने में पेश किया गया था। तो बाइबल के और ज़्यादा इम्तिहान करने की कुछ भी ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती। हमको बिला-ताम्मुल इस किताब की ज़ाती ख़ूबी में इस अम्र की बय्यन (साफ़) दलील मिल सकती है कि उस की ज़िंदगी और क़ुद्रत का क्या भेद है और इस का क्या सबूत है कि वो ख़ुद ख़ुदा की तरफ़ से नाज़िल हुई है। हमें ये बात याद रखनी चाहिए कि ख़्वाह बाइबल की निस्बत (मुक़ाबला) लोगों के ख़यालात में कैसी ही तब्दीली क्यों ना वाक़ेअ हो जाये तो भी वाक़ियात हरगिज़ टल नहीं सकते

4. मसीह की गवाही

जिन उमूर पर ऊपर बहस हो चुकी है। वो मसीही और ग़ैरमसीही- दोनों को अपील (दरख़्वास्त) करते हैं। मगर यहां में सिर्फ मसीहियों को मुख़ातिब करता हूँ। और उस बड़ी और नाक़ाबिल जुंबिश बुनियाद का जिसकी रू से हर एक मसीही बाइबल के इलाही-उल-अस्ल होने पर ईमान रखता है। उन से ज़िक्र करता हूँ और वो ये है कि इस सब का मर्कज़ ख़ुद येसू मसीह है। वो यानी बाइबल उस से किसी तरह अलेहदा) अलग (नहीं की जा सकती। वो इस ज़िंदगी के साथ ऐसा मज़बूती से बंधा हुआ है, कि हरगिज़ जुदा नहीं हो सकता। ख़ुदा का मुजस्सम होना एक ऐसा वाक़िया नहीं है जो उस के माक़ब्ल या माबाअ्द की तारीख़ के साथ कुछ भी ताल्लुक़ या वास्ता ना रखता हो।

बल्कि वो ख़ुदा के इन तारीख़ी ज़हूरात (इज़्हार) की जो वो इन्सान पर करता है, और जिनका अहद-ए-अतीक़ में ज़िक्र दर्ज है। चोटी के तौर पर है और बाद के कामिल ज़हूर का जिसका ज़िक्र अह्देजदीद- में है। सरदार और मम्बा है। अहद-ए-अतीक़ उस तैयारी का ज़िक्र करता जो मसीह की आमद के लिए होती रही। अहद-ए-जदीद बताता है कि जब तैयारी तक्मील को पहुंची। "तो वक़्त के पूरा होने पर ख़ुदा ने अपने बेटे को भेजा। येसू गोया इन दोनों ओहदों के दर्मियान खड़ा है और अपना हाथ दोनों के सर पर रखता है उसने अहद-ए-अतीक़ के नविश्तों ही की बाबत लोगों से कहा था कि वो ख़ुदा की तरफ़ से हैं। और उस के हक़ में गवाही देते हैं। अहद-ए-जदीद उस के कलाम और अफ़आल की और रसूलों और इब्तिदाई शागिर्दों की ताअलीमात की जिन्हें उसने रूह-उल-क़ुद्स की क़ुद्रत में लोगों को ताअलीम देने के लिए भेजा कहानी बयान करता है। और यही बात कि मसीह उनका मर्कज़ है। मुख़्तलिफ़ सहीफ़ों के इन दोनों मजमूओं के बाहमी इत्तिहाद इत्तिफ़ाक़ का बाइस है। उन के तमाम अजज़ा एक दूसरे से ताल्लुक़ रखते हैं। अहद-ए-अतीक़ ना-मुकम्मल है क्यों कि वो अहद-ए-जदीद का मुंतज़िर है और अहद-ए-जदीद भी बजा-ए-ख़ुद ना-मुकम्मल है। क्योंकि कि वो पीछे फिर कर अहद-ए-अतीक़ की तरफ़ देखता है।

इसलिए उस शख़्स के लिए जो यक़ीन करता है कि येसू मसीह ख़ुदा है बाइबल का इलाही-उल-अस्ल होना हमेशा के लिए सलामत है। ख़्वाह इस के इल्हाम के हक़ में उस की राय कैसी ही कुछ तब्दील क्यों ना हो जाए।

मैं यहां फ़क़त चंद एक आयात को नक़्ल करता हूँ जिनसे ज़ाहिर होता है कि किस तरह हमारा ख़ुदावंद अहद-ए-अतीक़ की निस्बत कहा करता था कि वो मिनज़्ज़ल मिनल्लाह यानी ख़ुदा की दी हुई किताब है। और इस की आमद के लिए बराबर राह तैयार करती रही है।

क्या तुम इस सबब से भूल नहीं पड़े हो कि तुम नविश्तों को नहीं जानते हो। (मर्क़ुस 12:24) ये वही हैं जो मेरी गवाही देती हैं। (यूहन्ना 5:39)

जितनी बातें मूसा की तौरेत और नबियों की किताबों और ज़बूर में मेरी बाबत लिखी हैं पूरी हों। (लूक़ा 24:42)

“ये जो लिखा है इस का मेरे हक़ में पूरा होना ज़रूर है।” (लूक़ा 22:37)

“मूसा से और सब नबियों से शुरू कर के सब सहीफ़ों में जितनी बातें उस के हक़ में लिखी हुई हैं। वो सब उन को समझा दें।” (लूक़ा 24:27)

“क्या तुमने नविश्तों में नहीं पढ़ा कि पत्थर जिसे मेंअम्मारों ने रद्द किया।” (मत्ती 42:21)

“ये वही है जिसकी बाबत लिखा है कि देख मैं अपना पैग़म्बर तेरे आगे भेजता हूँ जो तेरे सामने तेरी राह दुरुस्त करेगा।” (मत्ती 11:10)

5. उस की क़ुद्रत की गवाही

अब मैं और क्या कहूं? क्या मैं फिर आपको याद दिलाऊँ कि हर एक शख़्स जिसने दिल लगा कर बाइबल का मुतालआ किया है। उस का यक़ीन इस के हक़ में किया है। एक आलिम इस यक़ीन का इन लफ़्ज़ों में ज़िक्र करता है, कि वो **“मुझे छोड़ता नहीं”** लोग अपने ही ज़ाती तजुर्बे से इस अम्र (फ़ेअल) को महसूस करते हैं कि ये किताब ख़ुद अपनी आप गवाह है “ख़ुद रूह भी उन की रूह के साथ गवाही देता है” कि ये किताब किताबे-अल्लाह है वो ऐसा उन्हें ढूंढ लेती है, जैसे और कोई किताब नहीं ढूंढ सकती। उस के अल्फ़ाज़ उन के दिल में गहरी तहरीक (जुंबिश) पैदा करते हैं। इस की मदद से वो नेक बन जाते हैं उस ने इनके इरादों पर क़ाबू पा लिया है। और उन के दिलों को ख़ुशी व ख़ुर्रमी से भर दिया है यहां तक कि वो इस यक़ीन से बाज़ नहीं रह सकते कि इस किताब की मानिंद किसी किताब ने कभी कलाम नहीं किया।

क्या मैं तुम्हें ये कहूं कि तुम अपने चारों तरफ़ दुनिया पर नज़र करो। और इस मोअजज़ा-नुमा ताक़त को मुलाहिज़ा करो, जो बाइबल को हासिल है। किस तरह इस की तासीर (अमल) से बुरी ज़िंदगीयां दुरुस्त हो गईं। और शरीफ और खुबसूरत जिंदगियां इससे रोज़ मर्रा की खुराक हासिल करती है? क्या तुम कभी किसी और तारीख या नज़्मी किताब या सवानेह उम्री (ज़िन्दगी की तारीख) या खुतूत का ज़िक्र सुना है। जिन में यह ताक़त है की वह लोगों को शराफत और सदाक़त की ज़िन्दगी की तरफ माइल (मुतवज्जोह) करे। क्या तुमने कभी किसी शख्श को यह कहते सुना है, कि मैं एक

आवारा मिजाज़ और बद-चलन शख्स था। और अपने खानदान का नंग (शर्मिंदगी) था। यहाँ तक कि मैं फलां शायर की नज़्में और फलां मोअर्रिख की तारीख मुतालआ की? क्या तुमने किसी शख्स को यह कहते सुना है कि मैं फलां क़दीम क़िस्से या नज़्म के मुतालए से उम्मीद और इत्मीनाने क़ल्ब) दिल (और बुरी आदतों पर ग़ालिब आने की क़ुव्वत हासिल की?

लेकिन ऐसे लोग, जो बाइबल की निस्बत ये कह सकते हैं बहुत हैं। हाँ उन की तादाद हज़ार-हा हज़ार होगी। तुम देख सकते हो कि हालाँकि उस की पूरे तौर पर पैरवी नहीं होती तो भी उस के ज़रीये किस क़द्र ख़ुशी और नेकी दुनिया को हासिल हुई है। तुम ये भी देख सकते हो कि अगर इस किताब पर पूरे तौर से अमल दर-आमद हो तो ये दुनिया बहिश्त-बरी (आला दर्जे की जन्नत) बन जाएगी। दुख और शरारत बिल्कुल मादूम (ख़त्म) हो जाऐंगे। पाक दामनी और मुहब्बत और ख़ुद इंकारी इस ज़मीन पर सल्तनत करेंगे। और सत जुग (सच्चाई का ज़माना) का ज़माना अभी शुरू हो जाएगा।

वो किताब जो इसी ज़मीन पर आस्मानी अमन व ख़ुशी का नमूना क़ायम करने की क़ाबिलीयत रखती है। ज़रूर आस्मान से उतरी होगी। वो किताब जिसके ख़ूबसूरत नमूनों को कोई आदमी कोई क़ौम कभी पूरे तौर पर नहीं पहुंच सकी। यक़ीनन मामूली तौर पर महज़ इन्सानों के हाथों की हुई नहीं हो सकती।

मैंने मुख़्तसर तौर पर चंद ख़यालात ज़ाहिर किए हैं। जिनसे बहुत लोग ज़माना-ए-हाल की बहस और झगड़ों में क़ुव्वत और इत्मीनान हासिल कर सकते हैं और अपने यक़ीन को बहाल कर सकते हैं। क्या हम ऐसी किताब की तरफ़ से बेचैन हो जाएं। जो इतने ताक़तवर तरीक़ों से अपने हक़ में शहादत (गवाही) लेकर हमारे पास आती है? क्या हम इत्मीनान व तस्कीने क़ल्ब के साथ ये नहीं देख सकते कि वो सब बातें जिनकी ख़ातिर हम इस किताब की क़द्र करते हैं। हर क़िस्म के हमलों से महफ़ूज़ हैं और हमें इल्हाम के मुताल्लिक़ ख़्वाह अपने ख़यालात को कितना ही तब्दील करना क्यों ना पड़े। तो भी हम इस अम्र में कभी शक नहीं कर सकते कि वो ख़ुदा की तरफ़ नाज़िल हुई है।

बाब सोम

इल्हाम के बारे में मशहूर आम ख़यालात

गुज़श्ता बाब में मैंने इस ग़र्ज़ से लिखा है कि उस शख़्स को जिसका दिल बेचैन हो रहा है। हौसला दिलाऊँ। ये याद दिला कर कि इल्हाम के मुताल्लिक़ उसे ख़्वाह अपने ख़याल क्यों ना तब्दील करने पढ़ें। तो भी इल्हाम बजाए ख़ुद हर एक क़िस्म के हमलों से अमली तौर पर बिल्कुल महफ़ूज़ है। ख़्वाह बाइबल में उसे कैसी ही मुश्किलात क्यों ना नज़र आएं। तो भी ये मुम्किन नहीं कि उसे महज़ इन्सान की बनाई हुई किताब समझ सकें। और ना कभी इस अम्र में शुब्हा पैदा हो सकता है कि वो ऐसे तौर पर ख़ुदा की तरफ़ से इल्हामी समझे जाने के क़ाबिल है। जिस तौर पर हम और किसी किताब को नहीं समझ सकते।

इस ख़याल को मद्द-ए-नज़र रखकर उस शख़्स को तमाम मुश्किलात का दिलेरी से मुक़ाबला करने की जुर्आत होनी चाहिए। मैं ये हरगिज़ उम्मीद नहीं करता कि इस बात से उस की तमाम मुश्किलात दूर हो जाएँगी। वो साफ़ साफ़ मालूम कर लेगा, कि वो शख़्स जो इल्हाम का मुन्किर (इन्कार करने वाला) है। उसे बहुत ज़्यादा मुश्किलात का सामना है। बनिस्बत (मुक़ाबला) इस शख़्स के उस शख़्स पर यक़ीन रखता है। मगर तो भी बाइबल के इल्हामी मानने के मुताल्लिक़ जो उस की मुश्किलात हैं, उनसे ख़लासी पाना उस के लिए मुश्किल होगा। वो ये कहेगा कि □यक़ीनन में इस बात को तो नहीं मान सकता कि बाइबल एक मामूली क़िस्म की ग़ैर-इल्हामी किताब है। ताहम इस बेइत्मीनानी को भी जो मेरे दिल में इस के इल्हामी होने की निस्बत है। दूर नहीं कर सकता। मैं इस किताब के इल्हामी मुसन्निफ़ों के ऐसे अक़्वाल पाता हूँ, जो येसू मसीह के मुक़र्रर कर्दा मेयार में पूरे नहीं उतरे मैं सुनता हूँ कि इस तारीख़ी बयानात में इख़्तिलाफ़ हैं। बाअज़ बातों में वो उलूमे जदीदह की फ़ैसला शूदा बातों से मुख़्तलिफ़ है। उस के इब्तिदाई ज़माने की अख़्लाक़ी ताअलीम बिल्कुल मन घड़त और नाकामिल है। और ख़ुद सहीफ़ों के अंदर जिन्हें मैं ख़ुदा के हाथ की लिखे हुए ख़याल करता था। तालीफ़ व तर्तीब

(जमाअ व तर्तीब) और सेहत व तर्मीम (दुरुस्ती) के निशान पाए जाते हैं कैसे मुम्किन है कि बातें सच्चाई की रूह के इल्हाम के साथ मुताबिक़त खा सकें?

अब अगर किसी आदमी ने ख़ुद किसी तरह इन मुश्किलात से पीछा छुड़ा लिया है तो वो इन तमाम मंज़िलों पर जिनके ज़रीये से दर्जा बदर्जा इस सवाल को हल कर के मौजूदा इतमीनान हासिल किया। दुबारा नज़र डालते वक़्त जल्दी जल्दी उस पर से गुज़र जाना चाहता है। लेकिन अगर वो दूसरे के दिल में भी वही यक़ीन पैदा करना चाहता है तो मुनासिब है कि वो सब्र व इतमीनान के साथ इसी रास्ते पर अपने हम-राही की रहनुमाई करे। इस क़िस्म के ज़हनी मशग़लों में छोटी पक डंडियां हरगिज़ तसल्ली बख़श साबित नहीं होतीं।

मैं पहले बाब में इस अम्र का ज़िक्र चुका हूँ कि जब किसी शख़्स के दिल में इस क़िस्म के शुब्हात पैदा होते हैं। तो उस के दीनदार दोस्त उमूमन उस के साथ किस तरह पेश आते हैं अब हम देखेंगे, कि आया उस की मुश्किलात के साथ और किसी तौर से सुलूक करना मुम्किन है या नहीं जिससे दरहक़ीक़त उस को इस हालत तक पहुंचने में मदद मिले। जहां से वो ठंडे और मुत्मइन दिल के साथ इल्हाम के मसअले पर बज़ात-ए-ख़ुद ग़ौर करके उसे हासिल कर सके।

क्या ये बेचैनी गुनाह है?

ये कि आम तौर पर मानी हुई बात है कि मज़्हबी शकूक और बेचैनी हर सूरत में गुनाह या बदी नहीं समझी जानी चाहिए। मगर तो भी एक ऐसी सच्चाई है जो हर एक शुब्हा में पड़े हुए आदमी के सामने बार-बार बड़े ज़ोर से दुहराई जाने की हाजतमंद (ज़रूरतमंद) है अगर किसी आदमी के दिल में शुब्हात (शक) पैदा हों। बशर्ते के वो शुब्हात साफ़ दिली और नेक नीयती से पैदा हुए हों। तो उसे भी ऐसी ही ख़ुदा की बख़्शिश समझना चाहिए, जैसे कि यक़ीन व ईमान को समझा जाता है। और ज़रूर है, कि इस के ज़रीये से भी आख़िरकार नेक नतीजा निकले। इंग्लिस्तान के मशहूर शायर टेनिसन का ये क़ौल बिल्कुल हक़ है कि :-

> "मेरी बात को यक़ीन मानो कि इस शक में जो नेक नीयती पर मबनी हो। ज़्यादा ईमान को दख़ल है। बनिस्बत दुनिया के आधे अक़ाइद के नामों के।"

और बाअज़ ऐसे औक़ात भी ज़िंदगी में पेश आते हैं, जब कि ऐसे शकूक (शक) को अपने से दूर रखना उल्टा गुनाह होगा। ऐसे बेचैन आदमीयों की सूरत में जिनको मैं मुख़ातिब कर रहा हूँ। बाइबल की निस्बत (मुक़ाबला) इस क़िस्म की बे इत्मीनानी मुम्किन है, कि रफ़्ता-रफ़्ता और भी तरक़्क़ी करती जाये। और आख़िरकार वो मज़्हब और ख़ुदा की निस्बत हर एक क़िस्म के यक़ीन व एतिक़ाद को ख़ैर बाद कह बैठें। तहक़ीक़ात से भागना शक व शुब्हा को तरक़्क़ी देना है। जो शकूक ख़ुद बख़ुद दिल में पैदा हो जाएं, वो किसी तौर से गुनाह समझे जाने के लायक़ मुबारक हैं वो लोग जिन्हें शकूक नहीं सताते, मगर ज़्यादा मुबारक हैं। वो लोग जो शक और तारीकी में से गुज़र कर सच्चाई की आला मार्फ़त को हासिल करते हैं। हम सच्चे दिल से ये यक़ीन करते हैं, कि वो लोग जो आजिज़ दिल और नेक नीयत के साथ सच्चाई की तलाश में मशग़ूल (मसरूफ़) हैं। ख़्वाह उस के सबब उन पर कुछ ही वारिद (पेश आना) क्यों ना हो। इस सच्चाई के दर्याफ़्त करने में ख़ुदा उनकी ज़रूर मदद करेगा। और अगर बिलफ़र्ज़ वो इस तक ना भी पहुंचे तो ज़रूर उन की ख़ता (ग़लती) को माफ़ करेगा। एक क़दीमी मुसन्निफ़ लिखता है कि :-

> "अगर सच्चाई के लिए हर तरह की मेहनत व कोशिश करने के बाद हम ऐसी बातों में जिनकी बाबत पाक नविश्ते साफ़ साफ़ ताअलीम नहीं देते। ग़लती में पढ़ जाएं। तो इस में कुछ भी ख़तर व अंदेशा नहीं। वो जो ग़लती खाते हैं और वो जो ग़लती नहीं खाते दोनों नजात पाएँगे।"

2. सोते कुत्तों को सोने दो

इसलिए हर एक का फ़र्ज़ है कि इस अम्र (फ़ेअल) की सच्चाई में जिससे बेचैनी पैदा हुई। बड़े अदब से मगर बे-ख़ौफ़ हो कर तफ़तीश व जुस्तजू करे। ख़ुदा के नज़्दीक सच्चाई से बढ़कर कोई चीज़ नहीं। सच्चाई ख़ुदा से है। ख़्वाह इस से हमारे अंदर बेचैनी

पैदा हो या ना हो और अगर हमको सच्चाई पर और ख़ुदा पर यक़ीन है तो आख़िरकार इस से बेचेनी हरगिज़ पैदा ना होगी।

इसलिए इस क़ौल पर कि "सोते कुत्तों को सोने दो।" कभी क़नाअत) जितना मिल जाए उस पर सब्र करना (ना करो क्यों कि अव्वल तो ये एक बड़ी कमीना बात होगी। इस से ज़ाहिर होगा कि तुम ख़ुदा पर और सच्चाई पर हक़ीक़ी ईमान नहीं रखते। मगर साथ ही एक ख़ौफ़नाक बात भी है। क्यों कि अक्सर ये कुत्ते ख़ुदा के पहरेदार कुत्ते हैं ताकि तुम्हें इस अम्र से ख़बरदार करते रहें कि तुम्हारे ईमान व एतक़ाद (यक़ीन) में सड़ा देने वाली बातें शामिल होती जाती हैं। अगर तुम इन्हें ख़ामोश करने की कोशिश करोगे और इन्हें सोता रहने दो। तो तुम्हें एक ना एक दिन मालूम होगा कि तुम्हारा ईमान बिल्कुल ज़ंग-आलूदा हो गया और तुम्हें ख़बर भी नहीं हुई। और इस के इलावा ख़ुद तुम्हारे दिली इत्मीनान के लिहाज़ से भी उन से ऐसा सुलूक करना सख़्त हमाक़त (बेवक़ूफ़) की बात है। अगर तुम्हारा नन्हा बच्चा बेचा (बेचने वाला) के ख़ौफ़ से तारीक जगह में जाने से डरता है। तो वो जब कभी उस जगह के पास से गुज़रेगा। हमेशा डरा करेगा। लेकिन अगर तुम उस के साथ जा कर उस चीज़ को बाहर रोशनी में खींच लाओ तो वो देख लेगा कि वो बेचा नहीं, बल्कि सफ़ैद चादर खोटनी पर लटक रही थी। और अगर तुम भी इसी तरह बाइबल में किसी बेचा से डरते हो। जो तुम्हारे दिल में हमेशा उस की तरफ़ से ख़ौफ़ बैठा रहेगा। जब तक कि तुम दिलेरी के साथ उसे रोशनी में ना लाओगे। शायद इस से तुमको ये फ़ायदा पहुंचे कि तुमको ये मालूम हो जाये कि तुम्हारा एतक़ाद (यक़ीन) व तसहीह व तर्मीम (दुरुस्तगी) का हाजतमंद (ज़रूरतमंद) है या मुम्किन है कि जब अपने से बेहतर और दाना आदमी की मदद से तुम उस पर नज़र करो। तो वो बिल्कुल वही बात साबित हो और इस तौर से उस से तुम्हारा पीछा छूट जाये। ख़ैर-ख़्वाह कुछ ही हो उसे रोशनी में खींच लाओ और जहां तक तुम्हारा बस चले कभी सोते कुत्तों को सोते रहने मत दो। वो अपनी नींद में भी भोंक भोंक कर तुम्हें हमेशा बे-आराम करते रहेंगे और मुम्किन है कि किसी ना किसी दिन वो उठ कर तुम्हें चीर डालें।

3. उलमा का एतिमाद

जब आदमी को ये मालूम हो गया कि उस की बेचैनी बुरी बात नहीं, बल्कि अच्छी बात है। और उसे इस क़द्र शैतान की आज़माईश नहीं समझनी चाहिए बल्कि ये जानना चाहिए कि वो ख़ुदा का तरीक़ है। जिसके ज़रीये से वो सच्चाई की ताअलीम देता है तो इस के इलावा इमदाद और यक़ीन की बहाली इस अम्र से भी हासिल हो सकती है कि बड़े-बड़े उलमा और इल्म इलाही के जानने वाले जिनकी आला दीनदारी में किसी को शुब्हा नहीं। सालेहा साल से उन बातों से जो तुम्हें बेचैन कर रही हैं। वाक़िफ़ व आश्ना हैं। मगर उन्हें कभी उनके सबब से कोई परेशानी या इज़तिराब (बेचैनी) नहीं होता। ख़्वाह कोई इस अम्र (फ़ेअल) की हक़ीक़त को समझ सके या नहीं। मगर इस में शक नहीं कि ये देखकर कि एक शख़्स बाइबल का निहायत क़ाबिल और गहरा नुक्ता चीन भी है। मगर साथ ही इस के उस की ताअलीम में कामिल एतिक़ाद (मुकम्मल भरोसा) रखता। और उसे ख़ुदा की इल्हाम हुई किताब समझता है। ज़रूर इन्सान का यक़ीन व एतिक़ाद तरो ताज़ा और मज़्बूत तर हो जाना चाहिए। नहीं बल्कि इस से भी बढ़कर जब हम ऐसे अश्ख़ास से ज़्यादा गहरी वाक़फ़ीयत हासिल करते हैं। तो हमें मालूम होता है, कि उन्होंने जिस क़द्र ज़्यादा गहरी तहक़ीक़ात की और बाइबल को बारीक नज़र से मुतालआ किया। इसी क़द्र पहले की निस्बत (मुक़ाबले) उनका ख़याल बाइबल की अज़मत और शराफ़त और ख़ुदा की इल्हामी किताब होने के मुताल्लिक़ ज़्यादा वसीअ हो गया। उन्होंने छोटे छोटे मसाइल को जो उन्हें इस के इलाही-उल-अस्ल होने के एतिक़ाद (यक़ीन) से रोकते थे। उठा कर फेंक दिया है। उन्होंने सच्चाई की तलाश की और सच्चाई ने उन्हें बिल्कुल आज़ाद कर दिया है।

4. रंगदार ऐनक के ज़रीये बाइबल पर नज़र करना

दूसरा क़दम इस बेचैनी के दूर करने के लिए ये होगा कि अब हमें शुब्हा (शक) पैदा होने लगता है कि शायद कहीं ऐसा ना हो कि ये इल्हाम नहीं जो माअरज़ ख़तर में है। बल्कि वो मसाइल जो लोगों ने इस के मुताल्लिक़ घड़ रखे हैं। इन्सानी ख़याल की तारीख़ में मुश्किल से कोई बात ऐसी अजीब व ग़रीब मालूम होगी कि किस तरह ज़ी अक़्ल ना होश आदमी भी नस्लन बाद नस्ल बाइबल के मुताल्लिक़ अपने ही बे-बुनियाद मसाइल क़ायम करके उन पर जमे रहते हैं। बल्कि इस अम्र (फ़ेअल) पर इसरार (ज़िद) करते हैं कि जो बेहूदा ख़यालात वो बाइबल के इल्हाम की निस्बत रखते हैं, वही हक़ हैं। उन्होंने अपने लिए एक क़िस्म की रंगदार ऐनकें ईजाद कर ली हैं। और उन्ही को लगा

कर बाइबल को पढ़ते हैं। वो उन्ही ऐनकों को पुश्त दर पुश्त (नस्ल दर नस्ल) अपने बच्चों की आँखों पर भी लगाते रहे हैं। जिसका तबई नतीजा ये है कि वो रंग अब बाइबल का हक़ीक़ी रंग समझा जाने लग गया है। और इस तरह के सुलूक और झूटे ख़याल और बेचैनी पैदा हो गई है। इस बात से आदमी के दिल पर से एक बोझ सा उठ जाता है। जब उसे मालूम होता है कि ये बाइबल नहीं बल्कि रंगदार ऐनक है, जिसे उतार फेंकना चाहिए और जब इस किताब को इस क़िस्म के ख़यालात को बालाए ताक़ (एक तरफ़ रखना) रखकर मुतालआ किया जाता है, तो सख़्त से सख़्त मुश्किलात और बेचैनी फ़ील-फ़ौर (फ़ौरन) दूर हो जाती हैं।

अगर इस बात को मद्द-ए-नज़र रखा जाये तो मुझे यक़ीन है, कि बाइबल के एतिक़ाद (ईमान) के मुताल्लिक़ सबसे बड़े ख़तरात का ख़ातिमा हो जाएगा। बेदीन आदमी और उनके सामईन (सुनने वाले) भी बचपन से इन्हीं रंगीन ऐनकों के वसीले बाइबल को पढ़ने के आदी रहे हैं। और ना वो और ना ये इस ख़याल के सिवा जिसके वो बचपन से आदी हो रहे हैं और किसी नए ख़याल का तसव्वुर नहीं कर सकते। इसलिए इस बेदीन लैक्चर देने वाले के दलाईल (सबूत) बड़ी पर ज़ोर और क़ाइल (तस्लीम करना) करने वाले मालूम होते हैं और इस की सामईन के दिल भी उन को क़ुबूल करने को पहले ही से तैयार हैं।

इस रंग की किताब ख़ुदा की तरफ़ से नहीं हो सकती।

बाइबल यक़ीनन इसी रंग की किताब है।

इसलिए बाइबल ख़ुदा की तरफ़ से नहीं है।

और ऐसे नतीजे पर पहुंचना लाज़िमी अम्र है। अलबत्ता अगर कोई शख़्स उसे ये बता दे, कि आप बराए मेहरबानी ये ऐनक उतार डालीए। और तब उस के तमाम दलाईल (सबूत) और लोगों की बेचैनी यक क़लम (फ़ौरन) हवा हो जाती हैं।

5. इल्हाम के मुताल्लिक़ मशहूर आम ख़यालात की ख़तरनाक हालत

जब ये सवाल किया जाता है, कि अगर इल्हाम ऐसी बय्यन (साफ़) बात है। तो इस की क्या वजह है कि लोगों को इस के मानने में इस क़द्र मुश्किलात पेश आती हैं? इस का जवाब ये है कि इसलिए कि उन्होंने ख़ुद वो मुश्किलात अपने रास्ते में पैदा कर रखी हैं। उन्होंने इल्हाम की जगह इस बारे में बाअज़ ऐसे आम तसव्वुरात पैदा कर रखे हैं कि इल्हाम क्या कुछ होना चाहिए। उन्होंने बिला किसी सनद (सबूत) के ये फ़र्ज़ कर लिया है कि अगर ख़ुदा बाइबल को इल्हाम करे, तो ज़रूर है कि वो उसे एक खासतौर पर जो उन के नज़्दीक माक़ूल और मुनासिब मालूम होता है इल्हाम करता। ज़रूर है कि उस के अल्फ़ाज़ भी इल्हामी हों या ज़रूर है कि वो बिल्कुल नुक़्स व ग़लती से मुबर्रा (पाक) हो। या उस की ज़बान और तर्ज़ तहरीर हर क़िस्म के ऐब (ग़लती) से पाक होनी चाहिए। उस की मज़्हबी तालीमी उमूर के मुताल्लिक़ शुरू ही से कामिल होनी चाहिए। और बहर-सूरत वो ऐसी और वैसी होनी चाहिए। जैसा उनकी राय में एक किताब के लिए जो ख़ुदा की तरफ़ से इल्हाम हो, होना ज़रूरी है।

ख़ुदा ने उन्हें इस क़िस्म की कोई बात नहीं बताई। मगर ये उनका अपना ख़याल है कि ऐसा होना चाहिए। उन की ये ग़लती क़ाबिले माफ़ी है। क्यों कि वो इस मुहब्बत आमेज़ अदब व अक़ीदत से जो वो बाइबल और उस के देने वाले ख़ुदा की निस्बत रखते थे पैदा हुई मगर तो भी वो ग़लती ही है और इस के सबब से बाइबल को बहुत नुक़्सान पहुंचा है।

लोग इसी क़िस्म की बातें अपने बच्चों को भी सिखाते रहे हैं कि इल्हाम व मुकाशफ़ा के ये मअनी हैं। रफ़्ता-रफ़्ता जब ये बच्चे बड़े होते हैं। तो इस किताब के बाअज़ हिस्सों में ऐसी ऐसी बातें पाते हैं। जो इन ख़यालात के मुताबिक़ उतरने में क़ासिर (मजबूर) रहती हैं। तब वो फ़ील-फ़ौर इस किताब के इल्हामी होने पर एतराज़ शुरू कर देते हैं। बजाए इस के कि पहले इस बात को देखें कि जो तारीफ़ इल्हाम की उन्हें बताई गई थी वो तो ग़लत नहीं है।

इल्हाम को इल्हाम के मशहूर आम ख़याल के साथ खलत मलत कर देने से वो तमाम ग़लत ख़याल पैदा हुए हैं। जो ईमानदारों और बेईमानों में मुरव्वज (रिवाज) हैं। इन तमाम हमलों का जो मुल्हिदीन (बेदीन लोग) ने बाइबल पर किए हैं। मुतालआ करना फ़ायदा से ख़ाली ना होगा। क्योंकि हमको मालूम हो जाएगा कि इन एतराज़ों में से

महज़ उन ख़यालात पर वारिद होते हैं। जो अवामुन्नास में मुरव्वज (रिवाज) हैं। और जिन्हें ताअलीम-याफ़्ता मसीही मुद्दत से तर्क कर चुके हैं। मगर साथ ही इस के ये देखकर कि बाअज़ भले आदमी इन बेहूदा ख़यालात की बड़ी सरगर्मी और जोशो-ख़रोश के साथ हिमायत (तरफ़-दारी) कर रहे हैं। गोया कि ख़ुद मज़्हब की बुनियाद इन्ही सच्चाइयों पर रखी हुई है सख़्त अफ़्सोस है।

लोगों के लिए ये अम्र (फ़ेअल) कैसा तस्कीन बख़्श और तसल्ली-देह होगा। और अगर उन पर ये साबित हो जाये कि ये महज़ बाअज़ मसीहियों के तुहमात बातिला (झूटी तरफ़दारी) हैं। जो वो बाइबल की निस्बत रखते हैं। जो इस सारी बे-इत्मीनानी के लिए जो लोगों में फैल रही है, जवाबदेह हैं। और दुश्मनों का क़रीबन हर एक हमला जहां तक हमें मालूम है।

लोगों के इस बे-बुनियाद यक़ीन से कि फ़ुलां फ़ुलां बातें भी इल्हाम की तारीफ़ में दाख़िल हैं। अपनी क़ुव्वत हासिल करता है।

ऐ नाज़रीन !

अगर ये बात सच्च है। तो क्या बाइबल के मुताल्लिक़ हमारी सख़्त से सख़्त मुश्किलात काफ़ी अल-फ़ौर ख़ातिमा नहीं हो जाएगा? कोई आदमी सूरज के दाग़ों को देखकर उस की तरफ़ से दिल बर्दाश्ता नहीं हो जाएगा। और ना किसी उम्दा तस्वीर पर कहीं कहीं किसी गोशे में ज़रा सा ख़राश (हल्का ज़ख़्म) देखकर इस का लुत्फ़ उठाने से इन्कार करेगा। इसी तरह कोई सादिक़ दिल आदमी जो पाक नविश्तों के अजीब व ग़रीब हुस्न व ख़ूबसूरती पर नज़र करता है। इन ज़रा ज़रा से नुक़्सों का ख़याल भी दिल में ना लाना अगर उस के सामने इस क़िस्म के ख़याल पेश ना किए जाते कि (जैसा कि अवाम में ये मशहूर हो रहा है) इस किताब में किसी ऐसे नुक़्स का दिखाई देना उस के दर-हक़ीक़त ख़ुदा की तरफ़ से होने के ख़िलाफ़ है उसे ये बताया जाता है कि ऐसे नुक़्स हरगिज़ इस में मौजूद नहीं हैं। और अगर कहीं ऐसे नुक़्स तुम्हें नज़र भी आएं। तो अपनी आँखों की शहादत (गवाही) का कभी यक़ीन ना करो। भला जो किताब आस्मान से उतरी हो उस में ऐसे नुक़्स कब मुम्किन हैं?

क्या इस से इन्सान के दिल को तक़वियत हासिल नहीं होगी। अगर इस पर साबित कर दिया जाये कि इस क़िस्म की ताअलीम महज़ बातिल और ग़लत है? बाइबल आस्मान पर से बनी बनाई नीचे नहीं गिरी। और ना वो जैसा कि पुराने मुतल्ला नुस्ख़ों (सुनहरी नुस्ख़े) में तस्वीरें खींची हुई नज़र आती हैं। तिलाई नुस्ख़ों (सोने के नुस्ख़े) से जिन्हें फ़रिश्ते आस्मान पर लिए हुए बैठे हैं नक़्ल की गई है। उसे आदमीयों ने लिखा। अलबत्ता ये सच्च है कि वो आदमी ख़ुदा की तरफ़ से मुलहम (इल्हाम क्या हुआ) हुए थे। मगर तो भी वो इन्सानी दिल और इन्सानी कमज़ोरियाँ और इन्सानी हसात रखने वाले आदमी थे।

और ये बिल्कुल तबई तौर पर लिखी गई। और जिस तरह हम लिखते वक़्त अपने हाथ और दिल और दिमाग़ को इस्तिमाल करते हैं। इसी तरह उस के लिखने वालों ने किया। हम जानते हैं कि वो ख़ुदा की तरफ़ से उतरी मगर इस के ये मअनी हैं कि ख़ुदा ने इसी दुनिया की रुहानी हिदायत के लिए इल्हाम किया। और एक शराफ़त बख़्श असर और इलाही ताअलीम इस से सादिर (जारी करना) होती थी। मगर इस अम्र ने कि वो ख़ुदा की तरफ़ से इल्हाम हुई इस ज़िंदा इन्सानी किताब को महज़ एक मुर्दा और गिलट (ज़ाहिरी ख़ूबसूरती) किए हुए बुत में तब्दील नहीं कर दिया। अलबत्ता हमने ज़रूर उसे ऐसा बना दिया है। हमने मुख़्तलिफ़ नविश्तों को जो तारीख़, नज़्म, ड्रामा, ख़त, नबुव्वत, तम्सील की सूरत के हाथ से मुख़्तलिफ़ मदिराज से लिखे गए थे। एक जिल्द में बांध दिया है। और ख़्वाह-मख़्वाह उन में एक क़िस्म की पहचान यगानगत दाख़िल करना चाहते हैं। ये ज़िंदा कलामों का मजमूआ जो हमारे इस्तिमाल के लिए दिया गया था। हमने उसे परस्तिश के लिए एक बुत में तब्दील कर दिया है। हमने हर एक ख़ूबी जो हमें उम्दा मालूम हुई उस की तरफ़ मन्सूब कर दी है। मगर ये नहीं सोचा कि आया ऐसा करने के लिए हमारे पास कोई वजह भी है या नहीं। इस में जहां कहीं कोई उलूम या तारीख़ का इशारा पाया जाता है। इस के लिए ख़ुदा को ज़िम्मेदार ठहरा दिया है। नहीं बल्कि मुसन्निफ़ों के नामों के लिए भी जो शुरू किताब में दर्ज हैं। इलाही सनद पेश करते हैं इस तौर से बजाए इस के कि हम ऐसी शरीफ़ इल्हामी किताब का अक़्ल मंदों की तरह अदब व इज़्ज़त करें हमने इस की ऐसे तौर पर परस्तिश की जैसे अहमक़ लोग एक बुत की करते हैं। वो ईमान जिसे बाइबल की रूह को अपने में पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए थी। अब हुरूफ़ और अल्फ़ाज़ की बातिल परस्ती (झूट की पूजा) में ख़र्च हो रहा है।

तवारीख से भी ज़ाहिर है कि ये कोई ग़ैर-मामूली बात नहीं है। इन्सान जिन चीज़ों की इज़्ज़त व अदब करता है उनका आख़िरकार यही हाल होता है। यहूदीयों के रब्बी लोग मूसवी तहरीरों की ऐसी इज़्ज़त करने लग गए कि आख़िरकार कह उठे कि ख़ुदा ने ख़ुद आस्मान से ये किताबें लिखी हुई मूसा के हवाले की थीं। नहीं बल्कि ये किताब ऐसी कामिल और इलाही सिफ़ात से मौसूफ़ थी कि ख़ुद यहोवाह ख़ुदा ए क़ादिर इस के मुतालआ में हर रोज़ तीन घंटे सिर्फ किया करता था। मुहम्मदी लोग भी अपने क़ुरआन की बाबत कहते हैं कि उसे बराह-ए-रास्त जिब्राईल फ़रिश्ते ने अस्ल नुस्खे से जो आस्मान में महफ़ूज़ है। मुहम्मद साहब को सिखाया था। वो बिल्कुल कामिल और बे-नुक़्स अरबी ज़बान में लिखा हुआ मौजूद था। और इस का हर एक हर्फ़ ख़ुदा से है। वो हर तरह की ख़ता व नुक़्स और सहू व निस्यान (भूल चुक गलती) से मुबर्रा (पाक) है। और जो बातें इस में दर्ज हैं इनमें हरगिज़ किसी को कलाम नहीं हो सकता। और इस का अटल फ़ैसला है और कि वो हर ज़माने में हर तरह के नुक़्स से और नक़्ल करने वालों की ग़लती से महफ़ूज़ रहा और ख़ुद ख़ुदा उस का मुहाफ़िज़ व निगहबान है।

ऐ नाज़रीन! आप कहेंगे कि ये सब वहम व ख़्याल है और उन दाअवों का कोई भी सबूत मौजूद नहीं ये तो सच्च है मगर क्या इस से उस इन्सानी मीलान का पता नहीं चलता कि वो जिसकी इज़्ज़त व अदब करता है इस को किस पाये तक पहुंचा देता है और क्या इस से हमारे लिए सबक़ नहीं है कि हम बाइबल के साथ इस क़िस्म का सुलूक करने से ख़बरदार हैं।

मैं कहता हूँ कि हमने भी बाइबल के साथ ऐसा ही किया है हम भी क़रीबन इस के हक़ में यही सब बातें कह गुज़रे हैं हम मूसा और मत्ती और पौलुस के वास्ते वो वो हुक़ूक़ तलब करते हैं जो शायद कभी उनके वहम व ख़्याल में भी नहीं आए थे शायद हम ये समझते हैं कि हम इन बातों को उन से बेहतर समझते हैं मगर इस क़िस्म के बातिल तुहमात के ज़रीये हमने इस किताब की फ़ित्रती हुस्न व खुबसूरती को गंवा दिया है कि बच्चा बच्चा भी अगर चाहे तो इस पर मुल्हिदाना हमला करने के लिए मैदान खुला पाता है। मैं फिर कहता हूँ कि मेरे नज़्दीक ये अम्र भी बहुत ही फ़ाइदेबख्श होगा अगर हम लोगों के ज़हन नशीन कर दें कि उन बोझों के लिए जो लोगों ने उस की गर्दन में बांध रखे हैं बाइबल जवाबदेह नहीं है इस से हम दुश्मनों के हमलों के दर्मियान बेचैन नहीं होंगे और यक़ीनन हम इस अम्र के लिए मुसम्मम अज़्म (पक्का इरादा) बाँधने पर

आमादा होंगे कि जहां तक हो सके जल्द इस क़िस्म की बातिल तुहमात की बेख़कुनी (जड़ से उखाड़ना) कर दी जाये और ख़ुदा के इन पाक अक़्वाल की निस्बत पर आदब मगर माक़ूल एतिक़ाद रखने में आज़ादी के साथ तरक़्क़ी हो।

6. एक तह्हदी

और अब ऐ नाज़रीन। पेश्तर इस के कि हम आगे बढ़ें कि हम इल्हाम के उन मशहूर अवाम ख़यालात में से उस ख़याल को जिसने सबसे बढ़कर ख़राबी फैलाई है बयान कर दें और साथ ही इस के उस के मवेदों (ताईद करने वाले) को मदऊ करें कि अगर ये सही है तो सबूत पेश करें। अब तक हमने सिर्फ आम तौर पर इनका ज़िक्र इन नामों से किया है कि वो मशहूर अवाम या रिवायती ख़याल हैं अब हम दिलेराना इनमें से हर एक ख़याल का फ़रदन फ़रदन मुक़ाबला करेंगे और जो जो हमें सच्चाई के मुख़ालिफ़ नज़र आएगा इसे बिला-ताम्मुल मार गिराएँगे ताकि बाइबल इनके ज़रर से महफ़ूज़ हो और हमारे बेचैन दोस्तों को इत्मीनाने क़ल्ब नसीब हो।

1. लफ़्ज़ी इल्हाम का वो मसअला है। जो ये सिखाता है कि ख़ुदा की किताबे मुक़द्दस के सहीफ़ों का मुसन्निफ़ है। इन्हीं माअनों में जैसे उमूमन कोई शख़्स किसी किताब का मुसन्निफ़ हुआ करता है। और हर एक बाब, आयत, लफ़्ज़ बल्कि हर्फ़ भी बराह-ए-रास्त उसी का लिखा हुआ है।

2. इल्हाम में इन्सानी अंसर का बड़ा हिस्सा है। उस से इन्कार करना।

3. ये यक़ीन ज़रूर है कि इल्हाम शूदा बाइबल बिल्कुल हर नूअ की सहू व ख़ता (ग़लती व ख़ता) से मुबर्रा हो। ख़्वाह तफ़्सीली उमूर (अम्र की जमा) में ख़्वाह दुनियावी वाक़ियात के मुताल्लिक़ उमूर हैं।

4. ये कि इल्हामी किताब की अख़्लाक़ी और रुहानी ताअलीम किसी ज़माने में भी ना कामिल या नाशाइस्ता नहीं हो सकती।

5. ये कि किसी के तर्तीब देने या इस्लाह करने या मुसन्निफ़ के नाम में ग़लती करने से किसी किताब के इल्हामी होने में नुक़्स आइद होता है।

ये पाँच मुख़्तलिफ़ ख़यालात हम इस वक़्त मुंतख़ब करते हैं। जो हमारे नज़्दीक ग़लत हैं। और इसलिए हम इनमें से एक-एक की तर्दीद करके दिखाएँगे कि इन ख़याल के मवेदों के पास कोई शहादत (सबूत) इनकी ताईद (हिमायत) में मौजूद नहीं है। और जो कुछ है सो उनका अपना ही वहम व ख़याल है।

पहला ख़याल तो आगे ही क़रीबन मर चुका है। और इसलिए मोए को मारने की ज़रूरत नहीं मालूम होती। मगर दूसरे ख़याल ज़रा सख़्त-जान हैं और बहुत से मसीहियों के दिल में अब भी इन्हें जगह हासिल है।

वो आगे बढ़कर यके बाद दीगरे हमारे सामने आएँगे। लेकिन इस वक़्त हम सिर्फ इन पर सरसरी नज़र करते हैं। और इस बाब को ख़त्म करने से पहले फ़क़ज़ एक ज़र्ब लगाएँगे।

7. क्या इल्हाम की किसी ख़ास तारीफ़ का मानना हम पर लाज़िम है?

लेकिन शायद कोई हमसे पूछे कि क्या इन अक़ाइद को मानना मुझ पर फ़र्ज़ नहीं है? क्या इल्हाम पर एतिक़ाद (यक़ीन) रखने से मुझ पर ये मानना लाज़िम नहीं ठहरता कि बाइबल के तारीख़ी वाक़ियात का हर एक बयान मोअजज़ाना तौर पर हर एक क़िस्म के सहू या ग़लती से महफ़ूज़ कर दिया गया है। और कि इस के लिखने वाले इल्मे हेइयत या इल्म-उल-अर्ज़ के मुताल्लिक़ हर क़िस्म की ग़लती खाने से महफ़ूज़ थे। और कि बाइबल की हर एक किताब की यकसाँ क़द्र व क़ीमत रखती है, कि इल्हामी आदमी के लिए मुम्किन नहीं कि मज़्हब या अख़्लाक़ के मुताल्लिक़ नाक़िस ताअलीम दे कि हर एक लफ़्ज़ को उस के साफ़ और ज़ाहिरी माअनों में लेना चाहिए। और कि ऐसी कहानी जैसे कि अय्यूब का मुआमला और शैतान का ख़ुदा से हम-कलाम होना है। लफ़्ज़ी तौर पर दुरुस्त वाक़िया मानना चाहिए। क्यों कि मुम्किन नहीं कि ख़ुदा मज़्हबी सच्चाइयों की ताअलीम के मुताल्लिक़ एक महज़ शाएअराना ख़्याली नज़्म व नाटक इल्हाम कर देता।

इन सब सवालों के जवाब में मैं कहूँगा कि हरगिज़ नहीं इन सवालात पर ग़ौर व बहस करते हुए तुम ख़्वाह किसी नतीजे पर क्यों ना पहुँचो। ताहम इस से तुम्हारी बाइबल के इल्हामी होने के यक़ीन पर कोई असर नहीं पड़ सकता।

जैसा कि मैं ऊपर बयान कर चुका हूँ आम तौर पर ये ख़याल पाया जाता है, कि इल्हाम बाइबल के मुताल्लिक़ मसीही दीन इस क़िस्म के अक़ाइद (अक़ीदा की जमा) रखने का ज़िम्मा उठा चुका है। और अगर इनमें से कोई अक़ीदा क़ाबिले एतराज़ साबित हो। तो उस के साथ ही बाइबल के इल्हामी होने का भी ख़ातिमा हो जाएगा। नहीं बल्कि ख़ुद मसीही दीन भी माअरज़-ए-ख़तर में होगा।

मगर पहले ये बताईए कि ये कहाँ लिखा है कि इल्हाम की ये तारीफ़ होनी चाहिए कि वो इन मज़्कूर बाला सारी बातों का बेड़ा उठाए? हरगिज़ कहीं नहीं लिखा।

बाइबल में ऐसा हरगिज़ कहीं नहीं लिखा। अगरचे ये बात आपको अजीब मालूम हो। लेकिन अगर आप ज़रा भी गौर व फ़िक्र करेंगे। तो आप पर साबित हो जाएगा कि बाइबल किसी मुक़ाम पर कभी भी ये नहीं बताती कि इल्हाम की क्या तारीफ़ है। दर-हक़ीक़त बाइबल अपने इल्हाम के मुताल्लिक़ सिवाए इस के कि वो इस की दाअवेदार है, कहीं भी और कुछ भी नहीं बताती और इस की हक़ीक़त और वुसअत के बारे में और इस अम्र में कि किसी किताब के इल्हामी होने में क्या-क्या बातें शामिल हैं। गौर व फ़िक्र और फ़ैसला करना वो हमारी अक़्ल व दानिश पर छोड़ देती है।

और फिर याद रहे कि मसीही कलीसिया ने भी जो पाक नविश्तों का शाहिद और मुहाफ़िज़ है। इस बारे में अपने बच्चों के लिए कोई ख़ास क़ानून नहीं ठहरा दिया। मौजूदा बेचैनी के ज़माने से जब हम पीछे को नज़र करते हैं। तो हम इस दाइमी इलाही राहनुमाई का जिसका कलीसिया से वाअदा किया गया है। बराबर साफ़ खोज (निशान) पाते हैं। हम देखते हैं कि मुख़्तलिफ़ ज़मानों में इल्हाम की निस्बत (मुक़ाबला) लोगों के मुख़्तलिफ़ ख़यालात थे कभी अदना थे कभी आला। कलीसिया के लिए कितनी बड़ी आज़माईश होती होगी, कि आइन्दा नसलों के लिए ऐसे अहम मुआमले पर एक ना तब्दील क़ानून छोड़ जाये। हालाँकि कि ये मसअला उन के गहरे मसाइल से जिनके हल करने के लिए नसलों ने मुख़्तलिफ़ ज़मानों में अपनी सारी ताक़त ख़र्च कर दी। कहीं ज़्यादा अहम और ज़रूरी था। लेकिन बावजूद इस मसअले के इस क़द्र अहम और ज़रूरी

होने के और बावजूद इस क़द्र इख़्तिलाफ़ राय होने के फिर भी कोई अक़ीदा या हुक्म या क़ायदा कलीसिया की तरफ़ से मुक़र्रर नहीं हुआ। जिसका मानना ख़ादिमाने दीन या मुक़तदियों (पैरवी करने वाला) पर लाज़िमी ठहरता।

तो जब कि ना तो बाइबल ने ना कलीसिया ने इस मसअले का फ़ैसला किया है। तो किसी आदमी को क्या इख़्तियार है कि इस अम्र में हमारी आज़ादी छिनने की कोशिश करे? अगर हम अब दब जाएं तो इस से हमारे ईमान के जाने का अंदेशा है। क्यों कि मुल्हिदों के सख़्त से सख़्त हमलों और मसीहियों की सख़्त परेशानी इन सब का मदार एसी आम यक़ीन पर है कि मसीही दीने इल्हाम के मुताल्लिक़ ख़ास ख़ास अक़ाईद (यक़ीन) रखने का पाबंद है मगर ऐसा नहीं है। हमें सिर्फ इल्हाम पर यक़ीन करना लाज़िमी है। मगर इस की तश्रीह में हम जितना चाहें एक दूसरे से इख़्तिलाफ़ रख सकते हैं।

अगर हम ये देखें कि बाइबल में ख़ास-ख़ास बातें हैं। जिन्हें अवाम के मुसल्लिमा एतिक़ाद (यक़ीन) के साथ मुताबिक़त (बराबरी) नहीं दे सकते। तो इस से बेचैन होने का कोई मौक़ा नहीं। क्योंकि मुम्किन है कि इल्हाम के मुताल्लिक़ ये अक़ीदा ही ग़लत साबित हो। क्योंकि इस क़िस्म के अक़ाइद का मदार महज़ इन्सानी राय और इन्सानी ज़न्न (गुमान) पर है। हमारा एतिक़ाद जो इल्हाम के मुताल्लिक़ है। वो किसी ख़ास तारीफ़ का पाबंद नहीं है। और अगर बिलफ़र्ज़ हम अदना से अदना तारीफ़ जो इल्हाम की की जा सकती है। मान लें। तो भी मसीही मज़्हब के बुनियादी उसूलों में किसी तरह लग़्ज़िश (ग़लती) वाक़ेअ नहीं हो सकती।

नहीं बल्कि एक क़दम और बढ़कर हम ये भी कह सकते हैं कि मज़्हब के बुनियादी उसूल इस अम्र पर भी मुन्हसिर नहीं हैं कि किसी वही इल्हाम में भी एतिक़ाद रखा जाये।

मसलन हर एक बहस व हुज्जत जो बिशप बटलर और पादरी पीकी साहब मसीही मज़्हब के सबूत में पेश करते हैं। वो इस आदमी के नज़्दीक भी जो किसी इल्हाम व मुकाशफ़ा का क़ाइल नहीं। बल्कि "चारों इन्जील नवीसों को एक मामूली दियानतदार और रास्त-गो और अक़्ल के आदमी मानता है।" यकसाँ वक़अत (बराबर हैसियत) और ज़ोर

रखेंगी। ये सबसे अहम सवाल कि आया मसीह ने इस तौर पर ज़िंदगी बसर की। इस तौर पर कलाम किया और मर गया और जी उठा।

इन इन्जील नवीसों के साहिबे इल्हाम (इल्हाम रखने वाले) होने पर मुन्हसिर नहीं है। बल्कि फ़क़त इस अम्र पर कि आया वो जायज़ और मोअतबर गवाह (भरोसे के क़ाबिल गवाह) थे, या नहीं। मगर मैं इस अम्र का किस के लिए ज़िक्र करता हूँ? यक़ीनन इसलिए नहीं कि मैं बाइबल के इल्हामी होने पर मज़्बूत एतिक़ाद रखने की ज़रूरत को कमज़ोर करना चाहता हूँ। बल्कि मेरा ये मंशा (मर्ज़ी) है, कि जहां तक मुम्किन हो क़दीमी तअस्सुबात (पुरानी बेजा हिमायत) और तुहमात (वहम) को ढीला कर दूँ ताकि लोगों को इल्हाम की हक़ीक़त और वुसअत (गहराई) के मुताल्लिक़ साफ़ दिल और नेक नीयत से तहक़ीक़ात करने के लिए आज़ादी हासिल हो। मैं इस अम्र पर ज़ोर देना चाहता हूँ कि हम इस सवाल पर जिसके हल करने के लिए ये किताब लिखी गई है। आज़ादाना बहस करें और ये ख़ौफ़ दिल में ना लाएं कि इस से किसी तरह हमारे पाक दीन की बुनियादें हिल जाएँगी। क्यों कि बिलफ़र्ज़ अगर हम बाइबल के हर एक सहीफ़े को ग़ैर-इल्हामी ही मानें तो हमें इस वजह से ईमान से हाथ धो बैठने की ज़रूरत नहीं। अगरचे ये सच्च है कि बाइबल की क़द्रो-क़ीमत इस वजह से हमारी नज़रों में बहुत कम हो जाएगी। इसलिए जब कि हमारे दीन की बुनियादें इल्हाम के मुताल्लिक़ किसी ख़ास क़िस्म के एतिक़ाद रखने पर मौक़ूफ़ व मबनी नहीं हैं। जब कि ख़ुद बाइबल ने भी इस सवाल को बे हल किए छोड़ रखा है। और जब कि कलीसिया ने भी गुज़श्ता (1900) साल में कोई ख़ास राय इस के मुताल्लिक़ क़ायम नहीं की तो कोई वजह नहीं कि हम भी इल्हाम के मुताल्लिक़ तारीफों या मसअलों की निस्बत अपने को ऐसा ही आज़ादाना समझें जैसा कि हवा और ज्वारभाटा (समुंद्र का उतार चढ़ाओ) के अस्बाब की निस्बत समझते हैं।

बाब चहारुम

इल्हाम के मुताल्लिक़ सच्चा ख़याल किस तरह बांध सकते हैं

1. ग़लत तरीक़

ये एक निहायत ज़रूरी और अहम अम्र है। क्यों कि मौजूदा बे-इत्मीनानी ज़्यादातर इस से पैदा हुई है कि लोगों ने गुज़श्ता ज़माने में इस मसअले पर गौर व बहस करने के लिए ग़लत तरीक़ इख़्तियार किए। जो ग़लत तरीक़ इस वक़्त खासतौर पर मेरे मद्दे-नज़र है। सो ये है कि चूँकि हम पहले अपने ज़हन में ये ख़याल कर बैठे हैं कि ख़ुदा को फ़ुलां मुआमले में इस तौर से काम करना चाहिए था। इसलिए ये उम्मीद बांध बैठे हैं कि उसने यक़ीनी तौर पर ऐसा ही किया होगा। मगर ये तरीक़ हरगिज़ इत्मीनान बख़्श नहीं। क्योंकि हम अक्सर देखते हैं कि ख़ुदा इस तरीक़ से काम नहीं करता। जैसा कि हमने अपने ज़हन में फ़ैसला कर लिया था कि इसे इस तौर से करना ज़रूर है। ये बात अक्सर बताई गई है कि अगर तजुर्बा हमें इस के बरअक्स ना बताता तो हम बड़े वसूक़) यक़ीन (के साथ ये दावा कर सकते कि अगर इन्सान को इल्हाम देता है, तो ज़रूर है कि इस इल्हाम तक सब लोगों की रसाई हो। या कम से कम ये कि इसे वो इल्हाम ऐसे तौर पर देना ज़रूर है कि जब इस तक किसी शख़्स की रसाई हो, तो इस के समझने में ग़लती करने का कोई ख़ौफ़ व ख़तर ना हो। मगर हम देखते हैं कि इस क़िस्म के मफ़रूज़ात (फ़र्ज़ की हुई बातें) को कोई सबूत नहीं। हम अब इस क़िस्म की बातें फ़र्ज़ नहीं करते। इसलिए कि वाक़ियात ने उन की बिल्कुल तर्दीद (रद्द) कर दी है। मगर इल्हाम की निस्बत जो जो ख़याल बाँधे गए हैं। उन की सारी तारीख़ इसी क़िस्म के बे-बुनियाद मफ़रूज़ात का क़िस्सा बयान करती है। जो एक-एक ज़माने में बतौर

अक़ाइदे मुसल्लमा (माना हुआ अक़ीदा) के तस्लीम कर लिए गए थे और जो उस वक़्त ख़ुदा की तरफ़ मन्सूब (ताल्लुक़) किए गए थे। लेकिन इन पर आजकल कोई भी यक़ीन नहीं रखता। बल्कि वो मुश्किल से लोगों को याद भी होंगे।

मैं यहां इनमें से सिर्फ चंद मिसालें नक़्ल करूँगा। जिनसे ये भी ज़ाहिर हो जाएगा कि मेरा ये इल्ज़ाम कि मसीही लोग अपनी बाइबल की निस्बत इस से कुछ कम अहमक़ाना ख़याल नहीं रखते थे। जैसे कि मुहम्मदी लोग क़ुरआन की निस्बत रखते हैं। सोलहवीं सदी में ये बड़े वसूक़ (एतिमाद) से माना जाता था कि इब्रानी नविश्तों के एराब भी इल्हाम से लगाए गए हैं। क्योंकि मुम्किन ना था कि ख़ुदा किसी लफ़्ज़ के सही तलफ़्फ़ुज़ को ऐसी हालत में छोड़ देता कि इस की निस्बत किसी क़िस्म का शुब्हा (शक) पैदा हो सके। लेकिन जब कुछ अर्से के बाद इस क़ौल पर एतराज़ किया गया। और बाअज़ उलमा ने ये साबित कर दिया, कि ये एराब (ज़ेर, ज़बर पेश) की अलामतें अहद-ए-अतीक़ के सहीफ़ों की तक्मील के कई हज़ार साल बाद ईजाद हुए। तो उस वक़्त भी उन पर ये इल्ज़ाम लगाया गया था कि उनके ख़यालात इल्हाम के मुताल्लिक़ सही नहीं हैं। ख़ैर अब हम सब जानते हैं कि ये उलमा सही कहते थे। और इस वक़्त ये क़दीमी झगड़ा बिल्कुल फ़रामोश (भूल जाना) हो गया है। मगर इल्हाम जूं का तूं वैसा ही मौजूद है।

फिर बाअज़ आदमीयों ने ये ठहराया कि चूँकि ख़ुदा बाइबल का मुसन्निफ़ है। तो ज़रूर है कि इस की ज़बान और इबारत हर क़िस्म के नुक़्स से ख़ाली हो। (ठीक वैसे ही। जैसे कि मुसलमान क़ुरआन की निस्बत एतिक़ाद रखते हैं) कैसे हो सकता है कि ख़ुद ख़ुदा का कलाम एक अदना दर्जे की इब्रानी और यूनानी ज़बान में लिखा जाये? ऐसा कहना उस के मिंजानिब अल्लाह होने से मुन्किर (इन्कार) होना होगा। मगर ये बात भी ग़लत साबित हुई। बाइबल एक बे-नुक़्स ज़बान या इबारत में नहीं लिखा गया। और लोगों ने रफ़्ता-रफ़्ता जान लिया कि किसी किताब के इल्हामी होने के लिए ये अम्र नहीं।

फिर इस अम्र पर बड़ा ज़ोर दिया जाता था कि ज़रूर है कि ख़ुदा का कलाम ऐसे मोअजिज़ाना तौर पर महफ़ूज़ व मसऊन (हिफ़ाज़त व निगहबानी) हो कि इस में किसी ज़माने में भी नक़्ल करने वालों के हाथ से ज़रा सी भी ग़लती वाक़ेअ होने का एहतिमाल व अंदेशा (वहम व डर) ना हो। और अभी थोड़ा ही अर्सा हुआ है जब इस्लाह शूदा तर्जुमे

से ये साबित हुआ कि मुख़्तलिफ़ नुस्ख़ों में सहू कातिब (तहरीरी ग़लती) से कहीं कहीं ख़फ़ीफ़ (मामूली) गलतीयां वाक़ेअ हुई हैं। तो इस से पाक नविश्तों के मुताल्लिक़ बहुतों के ईमान मुतज़लज़ल (डगमगा गए) होंगे। बल्कि अमरीका की कलीसिया ने एक जलसे में आम तौर पर ये दावा कर दिया कि मुन्किरों के सारे जुमलों के बावजूद मसीहियों के दिल में पाक नविश्तों की इज़्ज़त व तौक़ीर को किसी चीज़ ने ऐसा नुक़्सान नहीं पहुंचाया। जैसा कि इस बात ने। मगर क्यों? सिर्फ इस वजह से कि लोगों ने अपने दिल में फ़र्ज़ कर लिया था कि ख़ुदा को चाहिए था कि नक़्ल करने वालों की उंगलीयों की ऐसी हिफ़ाज़त करता कि वो ख़फ़ीफ़ (मामूली) सी ग़लती भी ना कर सकते। ख़ुदा ने उनको ये नहीं बताया था कि मैंने ऐसा किया है। और ना उन के पास इस क़िस्म का ख़याल करने के लिए कोई सनद (सबूत) थी। मगर उन्होंने अपने ज़हन में ये बात फ़र्ज़ करली थी। और फिर उसे इल्हाम की तारीफ़ का एक हिस्सा बना दिया कि उसने ज़रूर ऐसा किया है। और इसलिए जब उन के इस ख़याल की ग़लती साबित हो गई। तो बाइबल के इल्हाम के मुताल्लिक़ इनके यक़ीन व ईमान में फ़र्क़ आ गया।

मुझे और इसी क़िस्म के एतिक़ादों के जो अब बिल्कुल मफ़्क़ूद (ग़ायब) हो गए या होते जाते हैं। ज़िक्र करने की ज़रूरत नहीं। मसलन ये कि ज़बूर की सारी किताब दाऊद की लिखी हुई है। ख़ल्क़त चौबीस चौबीस घंटे के छः दिनों में तक्मील को पहुंची। या ये कि इस अम्र से इन्कार करना कि सूरज ज़मीन के गर्द घूमता है। ख़ुद मसीह की उलूहियत से इन्कार करना होगा। जिसने फ़रमाया था, कि "वो सूरज को चढ़ाता है वग़ैरह।" इस क़िस्म के ख़यालात की ग़लती और इनके सीधे साधे लोगों के ईमान के लिए ख़ौफ़नाक होने के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। ये हरगिज़ मुनासिब नहीं कि हम उन उमूर की बाबत ख़्वाह-मख़्वाह अपने दिल में बाअज़ बातों को फ़र्ज़ कर लें। और फिर उनको इल्हाम की तारीफ़ के साथ ऐसा ग़लत मलत कर दें कि जब इन बातों की ग़लती साबित हो जाये तो बेचारे सीधे साधे लोगों को अपने ईमान के लाले पड़ जाएं।

अब हम जब कभी इस क़िस्म के ख़यालात का ज़िक्र सुनते हैं। तो हमें हंसी आती है। जो उन लोगों के लिए जो इन को मानते थे। वो बिल्कुल रास्त और सही थे। और शायद हम में से भी बाअज़ लोग जो इस वक़्त इन बातों को सुनकर मुस्कुराते हैं। इन लोगों से बढ़कर अक़्ल व दानिश नहीं रखते हैं। मुलाहिज़ा करो? इनके सही या ग़लत होने के सवाल से क़त-ए-नज़र कर के एक साहिबे अक़्ल आदमी पर जो इन पर ग़ौर करे

साफ़ रोशन हो जाएगा कि इल्हाम के मुताल्लिक़ बाअज़ अक़ाइद जो इस वक़्त कसीर-उल-तादाद (बड़ी तादाद) मसीहियों के दिल में निहायत गहरी जगह रखते हैं। ऐसे ही बे-बुनियाद मफ़रूज़ात हैं। जैसे कि वो जो अब बिल्कुल मफ्क़ुद (ग़ायब) हो गए हैं। जिन दलाईल की बुनियाद पर हमारे आबा व अजदाद अपने इन इल्हामी अक़ाइद को मानते थे। इसी क़िस्म की दलाईल की बिना पर हम इस वक़्त अपने मौजूदा अक़ाइद को मान रहे हैं। मसलन ये कि ख़ुदा ने ज़रूर बाइबल को ऐसा और वैसा बनाया होगा। और ये क़रीन-ए-अक़्ल (अक़्ल क़ुबूल करे) है कि वो ऐसा बनाता। वग़ैरह-वग़ैरह। लेकिन अगर हमारे किसी ऐसे एतिक़ाद में कुछ फ़र्क़ आने लगता है। तो हम ऐसे मुशव्वश (घबराना) और ख़ौफ़-ज़दा हो जाते हैं। जैसे कि हमारे बुज़ुर्ग अपने वहमी अक़ाइद की निस्बत होते थे। और वो भी हमारी तरह ऐसा ही कहा करते थे, कि "अगर ये बात सच्च नहीं है तो बाइबल हरगिज़ इल्हामी नहीं हो सकती।" कुछ ताज्जुब (हैरानगी) नहीं कि जो लोग बाइबल पर हमला करते हैं। वो हमारे ही अल्फ़ाज़ को लेकर उन्हें अपने हमलों का औज़ार बनाते हैं?

हमें किस ने बताया है कि ख़ुदा को चाहिए था कि बाइबल को इस तरह इल्हाम करता, जिस तरह हम चाहते हैं। ना इस तरह जिस तरह कि वो ख़ुद चाहता है? हम कौन हैं जो इस अम्र पर हुक्म लगा दें कि उसने इल्हामी किताबों के लिखने वालों को किस क़द्र इल्म की वुसअत (गहराई) और किस क़द्र इमदाद दी? या उसे देनी चाहिए थी? कब हम गुज़श्ता हालात से इबरत (सबक़) हासिल करेंगे? और कब हम इस क़िस्म के ढकोसलों (धोका फ़रेब) से बाज़ आएँगे, कि चूँकि हमारी ये राय है कि ख़ुदा को यूं या दूँ करना चाहिए था। इसलिए उसने ज़रूर ऐसा ही किया भी है। और अगर उसने ऐसा नहीं किया तो हमें इल्हाम पर यक़ीन लाने से क़तअ इन्कार कर देना चाहिए? बिशप बटलर ने एक सौ पचास साल हुए बड़ी दानाई से लोगों को ये साफ़ बता दिया था। गोया कि उस का बताना कुछ भी काम न आया कि :-

> "हम किसी सूरत से पहले ही से इस अम्र के हुक्म या फ़ैसला करने वाले नहीं हो सकते कि किस तरीक़ से या किस मिक़दार से हम इस बालाई क़ुद्रत रोशनी और हिदायत अता होने के उम्मीदवार हो सकते हैं। पाक नविश्तों के इख़्तियार व सनद के मुताल्लिक़ सिर्फ ये सवाल किया जा सकता है कि आया वो वही

> हैं, जिसका वो अपने हक़ में दावा करते हैं। आया वो इस क़िस्म की किताब है। और इस तौर से जारी की गई है। जैसा कि कमज़ोर आदमी किसी ऐसी किताब की निस्बत जो इलाही इल्हाम पर मुश्तमिल हो ख़याल करने के आदी हैं। और इसलिए ना तो मुग़ल्लिज़ात (मोटी गालियां) ना इबारत के ज़ाहिरी नुक़्स ना मुख़्तलिफ़ कराईं (क़ारी की जमा) ना मुसन्निफ़ों के मुताल्लिक़ इब्तिदाई ज़माने के झगड़े। ना और कोई इस क़िस्म की बात ख़्वाह वो इनसे भी बड़ी क्यों ना हो। पाक नविश्तों के इख़्तियार को ज़ाइल (ख़त्म) कर सकती है। सिवाए इस के कि अम्बिया या रसूल (रसूलों की जमा) या हमारे ख़ुदावंद ने ये वाअदा दिया हो कि वो किताब जिसमें इलाही इल्हाम दर्ज हो। इन बातों से महफ़ूज़ मसऊन (निगहबानी) होनी चाहिए।[9]

2. सही तरीक़

अच्छा तो अगर ये ग़लत तरीक़ है। तो इल्हाम के मुताल्लिक़ सच्ची बात मालूम करने का सही तरीक़ कौनसा है? सही तरीक़ ये है कि ख़ुद बाइबल से सवाल करो। किसी अवामुन्नास के मुसल्लिमा अक़ीदे या किसी मफ़रूज़ा मसअले को ख़्वाह कैसे ज़ोर शोर से इस की ताईद क्यों ना होती हो। कभी मत मानो। जब तक कि तुम नविश्तों की तहक़ीक़ व जुस्तजू कर के ये ना मालूम कर लो, कि ये बातें फ़िल-हक़ीक़त ऐसी ही हैं।

उलूम की दूसरी शाख़ों में अहले फ़ल्सफ़ा मुद्दत से ये तस्लीम करते आए हैं। कि तहक़ीक़ात व जुसतजू का सिर्फ ये सही तरीक़ है। एक ज़माना था जब कि लोग नेचर (फ़ित्रत) को भी ऐसे ही तौर से मुतालआ किया करते थे। जैसे लोग अब बाइबल को करते हैं। वो पहले बाअज़ दाअवों को सही तस्लीम कर लिया करता थे। और फिर उन्हीं से नताइज इस्तिख़्राज (निकालना) करते जाते थे। मसलन अहले हेइयत ने फ़र्ज़ कर लिया था कि अजराम-ए-आस्मानी को दायरों में हरकत करनी ज़रूर है क्यों कि उनकी हरकत कामिल होनी चाहिए। और दायरा कामिल गोलाई है। और जो वाक़ियात मुशाहिदा

---

9 इतालोजी हिस्सा दोम बाब 3

में आते थे। उनको भी किसी ना किस तरह तश्रीह कर के इसी उसूल की क़ैद में लाने के लिए कोशिश करते थे। जिसका नतीजा सिवाए तज़बज़ब (बेचैनी) और परेशानी के और कुछ ना हुआ। और इल्म की तरक़्क़ी पर मुहर लग गई। जैसा कि आजकल बाइबल का भी ये हाल है। मगर तीन सौ साल हुए फ्रांसिस बेकन ने लोगों को एक बेहतर तज्वीज़ बताई। चुनान्चे वो लिखता है, कि :-

> "ख़ुद नेचर से सवाल करो। वो तुम्हें सही जवाब देगी। जो ख़याल तुम्हारे दिल में जम रहे हैं। उन्हें धो डालो। क़ुद्रत के वाक़ियात और ज़हूरात का इम्तिहान करो। और देखो कि कौन सा मसअला तुम क़ायम कर सकते हो। जिसमें ये सब समा जाएं।"

और इस तौर से उसने मुतालआ-ए-फ़ित्रत की ऐसी काया पलट दी कि इस में देरपा नताइज का फल लगने लगा।

यही तरीक़ हमें इल्हाम के मुतालए में इस्तिमाल करना चाहिए। हमें वो पुराना तरीक़ छोड़ देना चाहिए जिसमें पहले ये फ़र्ज़ कर लेते थे कि फ़ुलां फ़ुलां बात बाइबल के हक़ में सादिक़ आनी चाहिए। और फिर इन्हीं मफ़रूज़ात की बुनियाद पर बहस व हुज्जत शुरू करते थे। हमें बेकन के क़ायदे पर अमल करना चाहिए, कि "ख़ुद बाइबल से सवाल करो और वो तुम्हें सही जवाब देगी हमें अपना इल्हाम का मसअला उन वाक़ियात की बिना पर क़ायम करना चाहिए, जो बाइबल में मर्क़ूम हैं। और वो इसी सूरत में सही होगा, जब इन तमाम वाक़ियात के साथ मुताबिक़त खाएगा।

अब मैं इस तरीक़ को एक सादा मिसाल के ज़रीये से बयान करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि इल्हाम के मुताल्लिक़ जो कुछ मालूम हो सकता है, मालूम करूँ। ख़ुदा ने मुझे कहीं नहीं बताया कि इल्हाम ठीक ठीक क्या है। उस ने मुझे ये बताया है कि ये एक इलाही तास्सुर है। या यूं कहूं कि क़दीम लिखने वालों की रूह में रूह क़ुद्दुस का नफ़ख़ (फूकना) है। मगर मैं ये नहीं कह सकता कि इस से ठीक ठीक मुराद क्या और किस क़द्र है। ना ये कि मुझे इस से किस क़िस्म के असरात की उम्मीद रखनी चाहिए। इसलिए मेरे पास इस के दर्याफ़्त करने का और कोई ज़रीया नहीं। सिवाए इस के कि इस वाक़िये के मुताल्लिक़ तहक़ीक़ात करूँ कि बाइबल में उसे किस तौर से पेश किया गया है।

मेरी राय में बाइबल और सब किताबों से इस अम्र में मुख़्तलिफ़ है कि वो बिल्कुल ख़ुदा से मामूर है। इलाही ख़यालात उस के अम्बियाओं और ज़बूर नवीसों की ज़बान से निकलते हैं। इस की पैशन गोईयाँ ऐसी ऐसी भेद की बातें बताती हैं जो ख़ुदा ही ज़ाहिर कर सकता था। इस की तवारीख़ दूसरी तवारीख़ों से मुख़्तलिफ़ है। क्यों कि वो हमेशा इलाही पहलू को मद्द-ए-नज़र रखती है। वो इन्सानी ज़िंदगी के तमाम ज़हूरों की तह में और पसे-पुश्त ख़ुदा ही को पाती है। जब कि दूसरी तारीखें फ़क़त लड़ाईयों और शिकस्तों कामयाबीयों और नाकामियों, क़ौम के बादशाहों और रिहाई देने वालों के हाल बयान करती हैं। ये तारीख-ए-बाइबल एक अजीब व ग़रीब और पुर राज़े इलाही बारीक बीनी के साथ पर्दे को फाड़ कर पीछे को चली जाती है। और ये दिखा देती है कि इन सब वाक़ियात के पसे-पुश्त जो मह्ज़ इत्तिफ़ाक़ी मालूम होते हैं। एक और ताक़त इस सारी दुनिया का इंतिज़ाम व बंदो बस्त कर रही है। वो तारीख़ हर जगह खुदा को देखती है। वो ख़ुदा को ज़ाहिर करती है। और इस से मुझे ये मालूम होता है कि ये इलाही ताअलीम और ये इलाही बारीक बीनी इल्हाम की इस तारीफ़ का जो मेरे नज़्दीक सही है। बहुत बड़ा जुज़्व (हिस्सा) होना चाहिए।

और जब मैं और भी मुतालआ करता हूँ। तो मेरे दिल में ये यक़ीन जागज़ीन (पसंदीदा) होता जाता है कि इस किताब में एक ख़ुफ़ीया ताक़त भरी है। जिसके ज़रीये से वो इन्सान की आला और शरीफ़ ज़िंदगी की तरफ़ रहनुमाई करती है। और जूँ-जूँ इस किताब का ज़्यादा मुतालआ करते हैं। उसी क़द्र ज़्यादा ज़ोर से हमें अपने गुनाहों से आगाही (मालूम होना) होती है। और हमारे दिल में रास्तबाज़ी और सदाक़त के लिए पुर ज़ोर ख़्वाहिश पैदा होती है। और इसलिए मैं इस अजीब व ग़रीब रुहानी क़ुद्रत को भी इल्हाम की तारीफ़ का एक जुज़्व क़रार दूंगा। जब मैं और भी आगे बढ़ता हूँ। तो मैं देखता हूँ कि अम्बिया और दीगर अश्ख़ास साफ़-साफ़ इस अम्र का इक़रार करते हैं कि रूह-उल-कुद्दुस अपनी तासीर से उनकी हिदायत करता। उनमें तहरीकें पैदा करता है। और उन्हें गोया उठाए लिए जाता है। और मैं अपने इल्हाम के तसव्वुर में इस आगाही को भी शामिल करना चाहता हूँ। जो मुसन्निफ़ के दिल में ख़ुदा के इल्हामी पैग़ाम्बर होने के मुताल्लिक़ पैदा होती है। लेकिन जब और भी मुतालआ करता हूँ। तो मुझे मालूम होता है कि दूसरे मुसन्निफ़ भी हैं। जो मसलन इन्जील नवीस इस क़िस्म की आगाही और एहसास का ज़िक्र तक भी नहीं करते। मुक़द्दस लूक़ा अपनी इन्जील लिखने का फ़क़त ये सबब बताता है कि वो अपने नफ्स-ए-मज़मून से ज़्यादा कामिल वाक़फ़ीयत रखता है।

और मुक़द्दस यूहन्ना का ये दावा है कि वो इन वाक़ियात का चश्मदीद गवाह है। इसलिए मैं अपने इस फ़ैसले को मुल्तवी (टालना) करता हूँ। और कहता हूँ कि **नहीं लिखने वाले के दिल में इस क़िस्म की आगाही का होना इल्हाम का लाज़िमी जुज़्व नहीं। ये हो सकता है कि एक आदमी खासतौर पर ख़ुदा की तरफ़ से इल्हाम हासिल करे। मगर उसे उस की ख़बर तक भी ना हो।"**

अब शायद मेरे नज़्दीक इस अम्र के फ़र्ज़ के लिए हुज्जत व दलील मौजूद हो कि रूह-उल-कुद्दुस की इस हिदायत व रहनुमाई में ये अम्र भी शामिल है, कि लिखने वाला हर क़िस्म के तारीख़ी या इल्मी उमूर की तहरीर में ख़फ़ीफ़ से ख़फ़ीफ़ (मामूली से मामूली) ग़लती में पड़ने से भी महफ़ूज़ रखा जाये। इसलिए मैं अपने इल्हाम के तसव्वुर में इस अम्र को भी दाख़िल कर देता हूँ। मेरे नज़्दीक इस क़िस्म के मफ़रूज़ात को जिनकी सेहत अग़्लब (सच्चाई मुम्किन हो) हो दाख़िल कर लेने में कुछ हर्ज (दिक्कत) नहीं। क्यों कि आख़िरकार इस की सेहत व दुरुस्ती महक-ए-इम्तिहान (स्याह पत्थर जिस पर सोना चांदी परखा जाता) पर परखी जाएगी। और वाक़ियात की बिना पर इस के सही होने का फ़ैसला किया जाएगा। लेकिन एक दिन कोई मोअतरिज़ (एतराज़ करने वाला) किसी इल्मी मुआमले की बाबत बाइबल के किसी ग़ैर सही बयान की तरफ़ मुझे तवज्जोह दिलाता है। या किसी ऐसी बात का ज़िक्र करता है, जो ज़ाहिरन मुतज़ाद (उलट) मालूम होती है। जैसे कि सलातीन और तवारीख़ के सहीफ़ों के बाअज़ बयानात, अगर मैं इस की इत्मीनान बख़्श तश्रीह नहीं कर सकता। तो ज़रूर मेरे दिल में शुब्हा पैदा होगा कि मैं अपने फ़ैसले में जल्दी कर रहा हूँ। और कि अभी मुझे ये हक़ हासिल नहीं हुआ कि अपने इल्हाम की तारीफ़ में इस के मुसन्निफ़ों के हर एक सीग़ा में सहू व खता (ग़लती व ख़ता) से क़तअन मुबर्रा (बिल्कुल पाक) होने की सिफ़त ख़ूबी को भी दाख़िल कर लूं।

और इस तौर से क़दम बक़दम और दर्जा-ब-दर्जा मैं इल्हाम का वो तसव्वुर हासिल कर लूँगा, जिसमें ये सब बातें शामिल हों। कभी तो मुझे अपने ख़यालात की तर्मीम (दुरुस्ती) करनी पड़ेगी। और कभी ज़्यादा इल्मी रोशनी मिलने के सबब पहले ख़याल को रद्द करना पड़ेगा और इस तौर (पर) आख़िरकार मैं इल्मी क़ायदे के मुताबिक़ बाइबल के इल्हाम की सही तारीफ़ कर सकूँगा।

पस इस तौर से कार्रवाई करने में किसी क़द्र तस्कीन (ताज़गी) मिलती है। जब मैं आम मफ़रूज़ात की बिना पर तहक़ीक़ात शुरू करता हूँ, कि इल्हाम के तसव्वुर में ये ये और वो वो बातें शामिल होनी चाहियें। तो मैं क़दम क़दम पर ठोकरें खाता हूँ। और मोअत्रज़ीन मेरी जान खा जाते हैं कि ये ये बातें जो तुम कहते हो। बाइबल में हरगिज़ इनके मुताबिक़ नहीं पाया जाता। लेकिन अगर मैं अपने सब मसाइल को ख़ुद बाइबल के अन्दरूनी इम्तिहान पर मौक़ूफ़ रखूं तो मोअतरिज़ बजाए मुख़ालिफ़ होने के सच्चाई की तलाश में मेरा मुमिद व मुआविन (मददगार) बन जाता है। मैं इन बातों की तहक़ीक़ात करने में जो वो मेरे सामने पेश करता है। हरगिज़ ख़ौफ़ नहीं करता। अगर वो मेरी तर्दीद (रद्द करना) के ख़याल से मेरे सामने कोई तारीख़ी नुक़्स (ख़राबी) या कोई बयान जो ख़िलाफ़ उसूले इल्म हो पेश करता है। तो इस से ना मुझे लर्ज़ा चढ़ता है। ना मेरा दिल पेच व ताब खाने लगता है। और मैं कहता हूँ कि अगर वो इस बात में सच्चा है तो यक़ीनन मेरा तसव्वुर। जो मैंने इल्हाम की बाबत क़ायम किया है। ग़लत होगा। मैं समझे बैठा था कि इल्हाम के तसव्वुर में सहू व ख़ता से मुबर्रा होना भी शामिल है। गो ख़ुदा ने तो ऐसा ना कहा था। मगर मुझे ख़याल था कि ऐसा ही होगा। मगर मैं देखता हूँ कि मेरा ख़याल ग़लत था। इसलिए मुझे अपने मसअले को दुरुस्त करना चाहिए।

और इस तरह मुत्मइन और साफ़ दिल के साथ में ठंडे दिल के साथ इन सब सवालात का इम्तिहान कर सकता हूँ, जो दूसरे आदमीयों की जान खा रहे हैं। क्योंकि मैं इस बात को बेहतर समझता हूँ कि अजज़ व फ़िरोतनी (आजिज़ी व हलीमी) और अदब व ताज़ीम के साथ उन ज़हूरात का जो बाइबल मेरे सामने पेश करती है, इम्तिहान करूँ। और इस तौर से ये दर्याफ़्त (मालूम) करूँ कि ख़ुदा ने इल्हाम करने में क्या-क्या कुछ किया है। ना ये कि पहले ही से अपने दिल में ठान लूं कि चूँकि लोगों की राय में ख़ुदा को ऐसा और वैसा करना ज़रूर था। इसलिए उसने ज़रूर ऐसा ही किया होगा।

इल्हाम के मुताल्लिक़ सही इल्म हासिल करने का यही सही तरीक़ है। इस बे इत्मीनानी और बेचैनी से बचने को मेरे लिए इस से बेहतर और कोई तरीक़ नहीं और ना इल्हाम का ऐसा सही तसव्वुर बाँधने का कोई और तरीक़ है। जो वाक़ियात के मन्तिक़ (दलील) की ज़िद से बचने को हौसला कर सकता है।

बाब पंजुम

इल्हाम के तसव्वुरात की तारीख़

इस अम्र को साबित करने के लिए कि ये मशहूर अवाम ख़याल जो बाइबल की निस्बत फैल रहे हैं। महज़ लोगों की राएं हैं। जिन पर हर एक ज़माने के नेक अस्हाब में बाहम इख़्तिलाफे राए रहा है। मैं ये मुनासिब समझता हूँ कि यहां मुख़्तसर तौर पर उन तमाम बड़ीबड़ी- मशहूर राएयों (राय की जमा) की जो बाइबल के इल्हाम की हक़ीक़त और वुसअत के मुताल्लिक़ गुज़श्ता ज़मानों में मुरव्वज (रिवाज पाना) रही हैं। एक तारीख़ लिख दूं। इससे पढ़ने वालों पर ये वाज़ेह हो जाएगा, कि नफ़्स-एइल्हाम- के सब लोग हमेशा से क़ाइल (तस्लीम करना) रहे हैं। और जो इस का मुन्किर (इन्कार करने वाला) होता था। वो काफ़िर या मुल्हिद समझा जाता था। मगर इस अम्र में इख़्तिलाफ़ राय रहा है कि किसी किताब के इल्हामी होने के ख़याल में कौन-कौन सी बातें शामिल हैं। मसलन आया इस से लफ़्ज़ी तौर पर इल्हाम होना मुराद है। आया इन्सानी अंसर इस से ख़ारिज है। आया इल्हाम साहू व खता (ग़लती) से मुबर्रा (पाक) कर देता है। आया हर एक हुक्म व हिदायत जो इल्हाम के ज़रीये दिया जाता है, कमाल मुतलक़ का दर्जा रखता है। और आया इस के अहकाम का इजरा हर एक ज़माने से ताल्लुक़ रखता है वग़ैरह।

1. यहूदी

सबसे पहले हम ये देखते हैं कि हमारे ख़ुदावंद के ज़माने में और मसीही दीन की इब्तिदाई सदीयों में यहूदीयों का एतिक़ाद (यक़ीन) क्या था। इस में हरगिज़ कलाम नहीं कि वो इल्हाम के मसअले के मुताल्लिक़ बहुत ही आला दर्जे (अज़ीम दर्जा) के और निहायत ही सख़्त क़िस्म के एतिक़ाद रखते थे। अम्बिया की ज़िंदा आवाज़ बंद हो चुकी थी और रस्मी हर्फ़ परस्ती जो एक मुर्दा मज़्हब का निशान है। बाइबल के मुतालआ में

बरसर हुक्म पाई जाती थी। मशहूर यहूदी आलिम फ़ैलो जो डीसन यूनानी ख़यालात की पाबंदी में इल्हाम को महज़ एक हालते वजद (बे-ख़ुदी) की हालत समझता है। चुनान्चे वो लिखता है, कि :-

> "नबी अपनी तरफ़ से कोई लफ़्ज़ नहीं बोलता। बल्कि वो महज़ ख़ुदा के एक आला के तौर पर है। जिसमें ख़ुदा इल्हाम करता या फूँकता है। और इस के ज़रीये से वो ख़ुद कलाम करता है।"

मगर वो साथ ही ये भी लिखता है, कि :-

> "इल्हाम के मुख़्तलिफ़ दर्जे होते हैं। और हर एक को यकसाँ (बराबर) दर्जा हासिल नहीं होता।"

मगर इस के माबाअ्द के ज़माने के यानी मसीही दीन की इब्तिदाई सदीयों के यहूदी इस से भी ज़्यादा सख़्त एतिक़ाद (यक़ीन) रखते थे। उनकी नज़र में हर एक लफ़्ज़ हर एक हर्फ़ की सूरत ख़ुदा की तरफ़ से मुक़र्रर की हुई थी। और इस में किसी क़िस्म की ग़लती की आमेज़िश (मिलावट) नामुम्किन थी। उन की इस रिवायत से खासतौर पर ज़ाहिर होता है, कि जब मूसा पहाड़ पर चढ़ा। तो उसने यहोवा को शरीअत की किताब के हर्फ़ों पर गुलगारी करते पाया। वो लिखते वक़्त बड़ी एहतियात से हर एक ज़रा ज़रा सी तहरीरी ख़ुसूसीयत क़रा (क़िरअत) की हर एक सूरत और फ़र्क़ का लिहाज़ करते थे। वो हर एक आयत और हर एक लफ़्ज़ और हर एक हर्फ़ को गिनते थे। वो ये भी लिख गए हैं कि हर एक हर्फ़ तहज्जी किताब-अल्लाह में कितनी दफ़ाअ आया है। और उस के याद रखने के लिए ख़ास-ख़ास अलामतें मुक़र्रर थीं। वो ये भी बता गए हैं कि कितनी दफ़ाअ एक ही लफ़्ज़ किसी आयत के शुरू या दर्मियान या आख़िर में आता है। वो तौरेत की पांचों किताबों में से हर एक किताब की ऐन दर्मियानी आयत और दर्मियानी लफ़्ज़ और दर्मियानी हर्फ़ भी बता गए हैं। अगर कहीं मतन में उन्हें कोई सरीह (साफ़) ग़लती मिलती। तो वो उस की तसहीह का भी कभी हौसला नहीं करते थे। बल्कि एक पेच दर पेच (निहायत पचीदा) क़ायदे के मुवाफ़िक़ उसे हाशिये पर लिख दिया करते थे। रब्बी इस्माईल लिखता है, कि :-

> ऐ मेरे बेटे! ख़ूब होशियार रह कि तू अपना काम किस तरह करता है। क्योंकि तेरा काम आस्मानी काम है। ऐसा ना हो कि तो क़लमी नुस्ख़ा (क़लम से लिखा गया) में से कोई हर्फ़ छोड़ दे। या बढ़ा दे और इस तौर से आलम का बर्बाद करने वाला ठहरे।

इन बातों से साफ़-साफ़ उन के अक़ाइद (यक़ीन) का पता लगता है कि वो यक़ीन रखते थे, कि बाइबल का हर एक नुक़्ता या शोशा इल्हामी है। और कि इस का हर हिस्सा हर क़िस्म की सहू ग़लती या नुक़्स से मुबर्रा (पाक) है। और कि शरीअत का हर एक हुक्म निहायत ही कामिल है। और कभी मन्सूख़ या तर्मीम (ख़ातिमा या रद्द व बदल) नहीं हो सकता। नहीं बल्कि उनका एतिक़ाद इस हद को पहुंच गया था कि शरीअत की ज़बानी तफ़सीर व तशरीह भी सहू व नुक़्स से बरी मानी जाने लग गई। और इस के हक़ में भी ये दाअवा (मुक़द्दमा) किया गया था कि जब ख़ुदा ने मूसा को लिखी हुई शरीअत दी। तो ये शरह भी उसी वक़्त मिली थी। क्योंकि कैसे ज़हन में आ सकता है कि एक कामिल (मुकम्मल) शरीअत के साथ कामिल तफ़्सीर भी ना हो। या ऐसी जो ख़ुद यहोवा के हुक्म या इख़्तियार से ना मिली हो।

इस में कुछ शुब्हा (शक) नहीं कि इस क़िस्म के मुबालग़ा आमेज़ (बढ़ा-चढ़ा) कर ख़यालात के ज़रीये ख़ुदा के इंतिज़ाम के बमूजब अहद-ए-अतीक़ मतन का महफ़ूज़ रखा गया। जिन लोगों के इस की निस्बत ऐसे एतिक़ाद हों। भला उन से बढ़कर कौन आदमी इस काम के लायक़ और सज़ावार हो सकता है कि पाक नविश्तों को सदीयों तक ग़लती से महफ़ूज़ रखकर नस्लन बाद नस्लन हवाला करते चले आएं। मगर मैं ये तो ज़रूर कहूँगा कि वो इस से बढ़कर और किसी बात की लियाक़त (ख़ूबी) ना रखते थे। मैं ये नहीं कहता कि उनके दर्मियान भी ऐसे सच्चे दीनदार आदमी ना थे, जिनके दिल में इस क़िस्म के एतिक़ाद की वजह से सच्ची दीनदारी ने जड़ पकड़ ली थी। मगर पाक नविश्तों के हर्फ़ की ग़ुलामी ने उन्हें उनकी रूह या हक़ीक़त का गहरा इल्म हासिल करने से ज़रूर महरूम रखा। यही अहद-ए-जदीद के ज़माने के वो रस्म परस्त लोग थे। जिनके तरीक़ ताअलीम को मसीह ने इस क़द्र क़ाबिले इल्ज़ाम ठहराया था। हाँ ये वो आदमी थे। जिनको कलाम-अल्लाह की तरफ़-दारी के तास्सुब ने इस अम्र (फ़ेअल) पर आमादा किया कि उन्हों ने ख़ुद ख़ुदा के बेटे को मार कर ही छोड़ा।

ये एक अजीब बात है कि बावजूद ये कि इल्हाम की निस्बत उन के इस क़िस्म के ख़यालात थे। तो भी वो इस में मुख़्तलिफ़ मदारिज के क़ाइल (मानना) थे। शरीअत यानी तौरेत सबसे आला समझी जाती थी। इस के बाद अम्बिया के सहीफ़े, फिर ज़बूर और दीगर नविश्ते, हमारे ज़हन में नहीं आता, कि जब वो लफ़्ज़ी इल्हाम के क़ाइल थे। तो किस तरह से इस क़िस्म के मदारिज के ख़याल को उस के साथ तत्बीक़ (मुताबिक़त) दे सकते थे।

2. इब्तिदाई कलीसिया

जैसा कि हम पहले अहद-ए-जदीद (नया अहदनामा) के रफ़्ता-रफ़्ता नश्वो नुमा पाने की निस्बत लिख चुके हैं। इस से हर एक शख़्स ये नतीजा निकाल सकता है कि इस सूरत में कलीसिया के इब्तिदाई ज़माने में इल्हाम की निस्बत कोई ख़ास मसअला क़ायम होना एक मुश्किल अम्र था। हम हर जगह यही देखते हैं कि वो लोग कुतुब अह्दे-अतीक़ (पुराना अहदनामा) को मानते हैं। ख़ुदावंद और रसूलों के कलाम की इज़्ज़त व ताज़ीम करते हैं। और उनके मुलहम मिनल्लाह (अल्लाह की तरफ़ से इल्हाम) और पुर अज़-इसरार व माअनी होने पर यक़ीन रखते हैं। मगर उन के दर्मियान इल्हाम की निस्बत कोई ख़ास मसअला क़ायम करने की कोशिश नहीं पाते। बिला-शुब्हा ख़ुदावंद और उस के रसूलों का नमूना उन्हें इस अम्र से बाज़ रखता होगा कि वो कट मुल्लाओं (ख़्वाह-मख़्वाह बह्स करना) की तरह मसाइल क़ायम करें या □हर्फ़ की परस्तिश□ करें। जो उस ज़माने के यहूदीयों में मुरव्वज (राइज) थी। उनको याद हो कि मसीह बावजूद ये कि नविश्तों की बड़ी इज़्ज़त व तोक़ीर करता था। तो भी उनके साथ बड़ा आज़ादना बर्ताव करता था। नहीं बल्कि उसने अहद-ए-अतीक़ का कुछ हिस्सा और उस के मसाइल को अपनी ताअलीम के ज़रीये आला पाये को पहुंचा कर एक तरह से मंसूख (रद्द) कर दिया था। उन्होंने ये भी देखा होगा, कि किस तरह मुक़द्दस पौलुस शरीअत को नामुम्किन ठहराता था। और रसूल कैसी आज़ादी से अहद-ए-अतीक़ के सहीफ़ों की इबारतें नक़्ल करते थे। वो मह्ज़ अलफ़ात के पाबंद ना थे। बल्कि उस के मतलब या मआनी को बयान कर देना काफ़ी समझते थे। बल्कि उन चंद मिसालों पर पूरा लिहाज़ करके भी जो मेरे इस बयान के ख़िलाफ़ मालूम होती हैं। मसलन मुक़द्दस पौलुस का लफ़्ज़ □नस्ल या नसलों□ पर बह्स करना। (ग़लतियों 16:3)

फिर भी मैं बिला तामिल (बग़ैर सोचे समझे) कह सकता हूँ कि ज़माना हाल के लफ़्ज़ी इल्हाम (असली इल्हाम) का मुरव्वजा मसअला हरगिज़ ख़ुदावंद या उस के रसूलों की ज़बान से निकलना मुम्किन ना था। और इसलिए इब्तिदाई कलीसिया में इस का रिवाज पाना बिल्कुल ग़ैर अग़लब (ग़ैर यक़ीनी) है। लोग सदीयों तक अह्देजदीद- की हदूद का फ़ैसला किए बग़ैर भी क़ाने (क़नात करने वाला) रहे। और उन्होंने इस को कोई बड़ी अहम बात नहीं समझा। उनके दर्मियान बाअज़ किताबों की क़बूलीयत की बाबत भी बाहम इख़्तिलाफ़ था। और इसलिए उन्हें मसाइल की ताईद (हिमायत) में पूरी वसूक़ (मुकम्मल एतिमाद) के साथ नक़्ल नहीं करते थे। गो ये महसूस करते थे कि उनके दर्मियान ख़ुदा और नेकी की बाबत बहुत कुछ पाया जाता है। लेकिन शायद वो उनके पास दूसरी किताबों की तरह आला सनद (बड़ा सबूत) के साथ नहीं पहुंची थीं। अगर वो मौजूदा ज़माने के लफ़्ज़ी इल्हाम के क़ाइल होते। तो इस क़िस्म की बातें उन्हें बिल्कुल हैरान व परेशान कर डालतीं।

जब हम उनकी तहरीरों का इम्तिहान करते हैं। तो इनमें से इस पहलू या इस पहलू की ताईद (हिमायत) में इबारतें नक़्ल कर देना बिल्कुल आसान अम्र है। चुनान्चे मिसाल के तौर पर हम इनमें से बाअज़ सर-बर-आवुर्दा (मुअज़्ज़िज़ मुसन्निफ़ों) के चंद फ़िक्रात नक़्ल करते हैं। मसलन कलीमन्ट रूमी 90 ई॰ में लिखता है कि नविश्तों को “रूह-उल-कुद्दुस की सच्ची बातें” कहता है। जस्टिन शहीद (150 ई॰) लिखता है, कि :-

> “रूह-उल-क़ुद्स का अमल इल्हामी किताबों के लिखने वालों पर ऐसा था। जैसा मिज़्राब (सितार बजाने का छल्ला) का असर बरबत पर होता है।”

1 थेनागूरास (170 ई॰) में लिखता है, कि :-

> “ये ऐसा है जैसे बंसी नवाज़ बंसी बजाता है।”

ये बात तो बिल्कुल लफ़्ज़ी इल्हाम की आला थियूरी की मानिंद मालूम होती है। गोया कि वो पाक नविश्तों में इन्सानी अंसर की मिलावट से क़तई मुन्किर है। मगर ये याद रहे जैसा कि बिशप विस्टिकट साहब फ़र्माते हैं कि हमें इस क़िस्म की मिसालों और तश्बीहों की निस्बत जिनसे लिखने वाला ख़ुदा के हाथों में महज़ एक आला के तौर पर

मालूम होता है। याद रखना चाहिए, कि आवाज़ की सुर और ख़ासियत ना सिर्फ बजाने वाले के हाथ पर बल्कि ख़ुद साज़ पर भी मौक़ूफ़ (ठहरना) होती है।

कलीमन्ट साकिन सिकंदरीया (190 ई॰) लफ़्ज़ी इल्हाम के आला मसअले का क़ाइल मालूम होता है। और वो पाक नविश्तों को बिल्कुल सहू व ख़ता से मुबर्रा समझता था। टरटोलेन (200 ई॰) का ये ख़याल था कि :-

> "इलाही इल्हाम इल्हामी शख्सों को एक वज्द या ग़शी की हालत में दिया जाता था। गो उस का ये भी ख़याल है कि रसूल बाज़ औक़ात अपनी तरफ़ से भी बोलते थे। जैसा कि मुक़द्दस पौलुस कहते है, कि "बाक़ीयों से मैं कहता हूँ, ना ख़ुदावंद।"

मुक़द्दस अगस्तीन (400 ई॰) में अनाजील की बाबत कहता है कि :-

> "उन्हें कलीसिया के सर ने लिखवाया है।"

और वो आम तौर पर पाक नविश्तों के सहू ख़ता से मुबर्रा होने का क़ाइल है। अगरचे बाज़ औक़ात ऐसी राएं भी ज़ाहिर कर देता है, जो इस ख़याल से मुताबिक़त नहीं खातीं। यूसेबस (325 ई॰) एक जगह इस अम्र पर ग़ज़बनाक होता है, कि कोई शख़्स ये कहे कि "ज़बूर नवीस के किसी शख़्स के नाम की बाबत ग़लती खानी मुम्किन है।" और एक और बुज़ुर्ग अपी फ़ीनियस इस ख़याल को मरदूर (लानती) ठहराता है कि रसूल ने एक आयत ज़ेर-ए-बहस में इन्सानी हैसियत से कलाम किया है।

लेकिन इनके मुक़ाबले में हमें ऐसे ही और बुज़ुर्ग मिलते हैं। जो आज़ादाना नविश्तों के बयानात पर एतराज़ करते हैं। बल्कि मज़्कूर बाला बुज़ुर्ग भी दूसरे मौक़ों पर ऐसा ही करते पाए जाते हैं। मसलन औरेजन (220 ई॰) जो अपने ज़माने की कलीसिया में बाइबल की वाक़फ़ीयत के लिहाज़ से सब से बढ़ कर था। अगरचे पाक नविश्तों के इल्हाम का बड़े अदब से ज़िक्र करता है। लेकिन साथ ही लोगों को हिदायत करता है, कि लफ़्ज़ों पर-ख़याल ना करो। जो मुम्किन है कि बेफ़ाइदा हों। और शायद उनसे ठोकर लगे। बल्कि ताअलीम की रूह व मग़ज़ को पहुंचने की कोशिश करो। जिससे हमेशा रुहानी इमदाद मिलती है। वो इक़रार करता है कि अनाजील में इतने इख़्तिलाफ़ात हैं कि उनसे "आदमी का सर घूमने" लग जाता है। और वो शरीअत के बाअज़ अहकाम की नुक्ता-

चीनी कर के उनका नामाक़ूल होना साबित करता है। अगरचे साथ ही बड़ी ख़ूबसूरती से उस इलाही मक़्सद का जिसके पूरा करने के लिए वो लिखी गई बयान करता है। "जब लोग बनी-इस्राईल ब्याबान में कुड़ कुढ़ाने लगे। तो मूसा उन्हें चट्टान के पास पानी पिलाने ले गया। और ऐसा ही वो अब भी उन्हें मसीह के पास ले जाता है।" मुक़द्दस जेरोम (200 ई॰) अपने ख़यालात में बिल्कुल मुख़्तलिफ़ व मुतज़ाद है। कहीं तो ऐसा मालूम होता है कि वो बिल्कुल लफ़्ज़ी इल्हाम का क़ाइल है। कहीं वो तारीख़ी सिलसिले की ग़लतीयों का ज़िक्र करता है। जिनका समझना मुश्किल है। वो लिखता है कि मुक़द्दस मर्क़ुस (2:26) ने ग़लती से अख़ी मुल्क की जगह अबयात्र लिख दिया है। और बड़ी आज़ादी से मुक़द्दस पौलुस की नुक्ता-चीनी करता है। और उस की दहक़ानी ज़बान और ख़िलाफ़ मुहावरा इबारत का ज़िक्र करता है। और उस की दलाईल (सबूत) को कमज़ोर ना काफ़ी ठहराता है। ख़ास कर "नस्ल और नसलों" वाली बहस में (ग़लतियों 2:16) मगर ये बात क़ाबिले लिहाज़ है, कि वो इन बातों की निस्बत (ताल्लुक़) भी ये नहीं समझता कि इनके सबब से इन किताबों के इल्हामी होने में फ़र्क़ आना मुम्किन है। मुक़द्दस ख़िरोस्टम (380 ई॰) मुख़्तलिफ़ अनाजील के बयानात में फ़र्क़ पाता है। मगर उसे एक तबई बात समझता है। और इस को इस बात का सबूत ठहराता है कि इन्जील नवीसों की गवाही एक दूसरे पर मुन्हसिर नहीं है। बल्कि वो एक दूसरे से बिल्कुल आज़ाद हैं।

ये देखना भी दिलचस्पी से ख़ाली नहीं कि इस ज़माने के अहले अल-राए क्यों कि इल्हाम व मुकाशफ़ा में बतद्रीज (आहिस्ता-आहिस्ता) नशो व ननुमा और तरक़्क़ी के क़ाइल (क़ुबूल करना) थे। हालाँकि इस उसूल का ना मानना आजकल अक्सर लोगों को हैरानी में डाल रहा है। वो इक़रार करते हैं कि अहद-ए-अतीक़ के बहुत से अहकाम महज़ लोगों की अदना अख़्लाक़ी हालत के लिहाज़ से दिए गए थे। ख़ुदा ने उनके साथ इस तरह सुलूक किया। जैसे एक मुअल्लिम या तबीब करता है। और अगरचे उसने उनकी आबाई रसूम की बाअज़ बातों में कांट छांट कर दी। मगर बाक़ी को रहने दिया। और इस अम्र में उनके मज़ाक़ को मद्द-ए-नज़र रखा। "क्योंकि लोग जिस रस्म के आदी होते हैं उसे आसानी से छोड़ने में नहीं आते।" मुक़द्दस ख़िरोस्टम लिखता है :-

> "ये मत पूछो कि अहद-ए-अतीक़ के अहकाम इस वक़्त तक किस तरह फ़ाइदेमंद हो सकते हैं। जब कि उनकी एहतियाज (ज़रूरत) ही जाती रही है। बल्कि ये पूछो कि जिस ज़माने में

> उनकी ज़रूरत थी। उस वक़्त वो क्या काम देते थे। उनकी सबसे आला तारीफ़ ये है कि अब हम उन्हें नाक़िस मालूम करते हैं। क्यों कि अगर वो हमें ऐसे अच्छे तौर से तर्बीयत ना करते। यहां तक कि हम आला बातों के महसूस करने के क़ाबिल हो गए। तो हम इस वक़्त उनके नुक़्स व कमी से हरगिज़ वाक़िफ़ ना होते।

फिर मुक़द्दस बाज़िली लिखता है, कि :-

> शरीअत जो आने वाली अच्छी चीज़ों के साये के तौर पर थी। और अम्बिया का कलाम जो निशान व अलामत के तौर पर होने के सबब सच्चाई को धुँदले तौर पर ज़ाहिर करता है। ये सब दिल की आँखों के लिए बतौर मश्क़ के थे। ताकि हम इस से बढ़कर उस हिक्मत को जो राज़ में मख़्फ़ी (छिपी) है। हासिल करने के क़ाबिल हो जाएं।

इस ज़माने के इल्हाम बाइबल के तसव्वुरात का अंदाज़ा करते हुए इस अम्र को भी मद्द-ए-नज़र रखना ज़रूरी है कि उस वक़्त ये एतिक़ाद भी था कि कलीसिया की सारी जमाअत को भी इल्हाम पाने की क़ुद्रत हासिल है। जो मुक़द्दस नविश्तों के लिखने वालों के इल्हाम से फ़क़त दर्जे के लिहाज़ से अदना समझी जाती थी।

जो कुछ ऊपर बयान हुआ। इस अम्र की तस्दीक़ के लिए काफ़ी है कि क़दीम बुज़ुर्गाने-दीन अगरचे पाक नविश्तों के मिन-जानिब-अल्लाह (खुदा की तरफ से) होने पर यक (एक) ज़बान थे। मगर इल्हाम की हक़ीक़त और हदूद के बारे में उनके एतिक़ाद में बहुत कुछ आज़ादी पाई जाती थी।

3. क़ुरून-ए-वुस्ता यानी दर्मियानी ज़माना

क़ुरून-ए-वुस्ता में इस एतिक़ाद का मीलान (रुझान) उसूल के लिहाज़ से इब्तिदाई कलीसिया के अक़ाइद (अक़ीदा की जमा) से बहुत मुख़्तलिफ़ ना था। बाइबल के इल्हामी होने पर सब लोग कामिल (मुकम्मल) यक़ीन रखते थे। मगर ये भी याद रहे कि ये इल्हाम बाइबल, कलीसिया की ग़ैर नविश्ता रिवायत के हमपल्ला (बराबर) समझा जाता

था। ट्रेंट की कौंसल में इस बात को साफ़ अल्फ़ाज़ में बयान कर दिया गया है। जिसके बमूजब रूमी कलीसिया ये ज़ाहिर करती है कि बाइबल के सहीफ़ों और ग़ैर-नविश्ता रिवायत को जो कलीसिया में सिना ब-सिना चली आई हैं। वो यकसाँ अदब व इज़्ज़त के साथ मानती है। इन रिवायत की ना-साफ़ और पुर इख़्तिलाफ़ हालत पर लिहाज़ कर के ये अम्र साफ़ रोशन है कि इस मसअले के मुवाफ़िक़ पाक नविश्तों के इल्हाम का ख़याल किस क़द्र गिरा हुआ है। बल्कि सच्च तो ये है कि हम अक्सर देखते हैं कि वो बुज़ुर्गाने दीन की राएयों को ऐसे ही वसूक़ (मुकम्मल एतिमाद) और एतबार के साथ नक़्ल करते हैं। जैसे कि इल्हामी मुसन्निफ़ों के अक़्वाल को :-

और इस के इलावा दिन-ब-दिन तसव्वुफ़ (मार्फ़त) की तरफ़ मीलान बढ़ता चला जाता था। जो इस अम्र पर ज़ोर देता था कि हर एक रूह इंसानी ख़ुदा के साथ इस क़िस्म का मेल और इत्तिहाद हासिल कर सकती है। जिसे इल्हाम के रुतबे से किसी तरह कम नहीं समझना चाहिए। इस क़िस्म के तसव्वुफ़ की सबसे उम्दा मिसाल ज़माना-ए-हाल के क्वेकर (Quaker) फ़िर्के में पाई जाती है। नाज़रीन बाआसानी देख सकते हैं कि अफ़राद इन्सानी के इल्हाम के मुताल्लिक़ ऐसा मुबालग़ा आमेज़ एतिक़ाद और इस का रूह-ए-इलाही से बराह-ए-रास्त पैग़ाम हासिल करना इस हद को जो बाइबल के ख़ास इल्हाम और मसीही अफ़राद के आम इल्हाम के दर्मियान जिससे □तमाम नेक मश्धरे और तमाम उम्दा काम पैदा होते हैं।" वाक़ेअ है बिल्कुल दूर कर देता है।

ताहम इन सवालात के मुताल्लिक़ जो इस वक़्त लोगों के दिलों में जोश मार रहे हैं। क़ुरून-ए-वुस्ता की राय के बड़े बहाव या मीलान को मालूम करना कुछ आसान अम्र नहीं है। मसलन इस में शक नहीं कि बाइबल के बयानात मुताल्लिक़ा तारीख़ व उलूम के ख़ाली अज़ सहू (भूल) होने पर लोगों का कामिल यक़ीन था। अगरचे साथ हम अबीलार्ड (बारहवीं सदी के नामी और मशहूर आलिम) के इस क़िस्म के आज़ादाना ख़यालात को भी देखते हैं कि उस के नज़्दीक रसूलों से ग़लती होनी मुम्किन थी। और कि अम्बिया ने बाज़ औक़ात महज़ अपने इन्सानी ख़यालात ही ज़ाहिर किए मगर सच्च तो ये है कि इस क़िस्म के सवालात इल्मी तौर पर कभी माअरज़ बहस में नहीं आए थे। क्यों कि उनके दिल में ये ख़याल कभी नहीं आया था कि बाइबल को एक तबई क़ायदे के मुताबिक़ मुतालआ करना चाहिए। या ये कि वो ख़ुदा के इस बर्ताव और सुलूक की तारीख़ है। जो

उसने इन्सान के साथ किया और उस के अल्फ़ाज़ को भी किसी दूसरी किताब की तरह उनके साफ़-साफ़ और लफ़्ज़ी माअनों के एतबार से समझना चाहिए।

और इस तौर से उस वक़्त बाइबल की अजीबो-गरीब क़िस्म की शरहें और तफ़्सीरें होने लगीं। यहूदी रिवायत की तरह जिसे ख़ुदावंद ने क़ाबिल इल्ज़ाम ठहराया था। बिगड़ी हुई कलीसिया की रिवायतों और मुतकल्लिमें (कलाम करने वाले) के इल्म इलाही के सिलसिलों ने कलाम अल्लाह की आज़ाद रुहानी ताअलीम को बिल्कुल दबा लिया। इस वक़्त बाइबल महज़ एक क़िस्म की पत्थर की कान के मानिंद समझी जाती थी। जहां इलाही फ़ल्सफ़ा के बड़े बड़े मसाइल की ताईद (हिमायत) में सुबूती आयात का ज़ख़ीरा जमा हो। और अगर कहीं मामूली मुतालआ करने वाले को कोई मुश्किलात नज़र आती थीं। तो तफ़्सीर के ख़ास ख़ास उसूलों की बिना पर उनकी तश्रीह कर दी जाती थीं।

मुस्लिहीन (इस्लाह करने वाले) का सबसे उम्दा काम ये था कि उन्होंने बाइबल को फिर अपने सच्चे रुतबे पर बहाल कर दिया और लोगों को ये बता दिया कि उन्हें इस के वही मअनी समझने चाहियें जो इस के लफ़्ज़ों से निकलते हैं। लेकिन बदक़िस्मती से पुरानी ताअलीम का ख़मीर (फ़ित्रत) बहुत जल्द मुस्लिहीन के बाद के मकतबों (कुतुब ख़ाने) में भी चल निकला। और इस के बानीयों का अस्ल मक़्सद किसी हद तक ज़ाए हो गया।

4. ज़माना इस्लाह

इस्लाह (दुरुस्ती, तर्मीम) के वक़्त बाइबल के मर्तबे में एक बड़ी तब्दीली वाक़ेअ हुई। ग़लती से मुबर्रा (पाक) कलीसिया का इम्तिहान हो चुका था। और वो निहायत ही नाक़िस व क़ासिर (खोटी और लाचार) साबित हुई। और लोगों ने इस की बद अमलियों (बुरे काम) और तुहमात बातिला (झूटे वहम) से दिक़ (तंग आना) आकर और एक राहनुमा की ज़रूरत को महसूस कर के एक "लाग़लत बाइबल" को इस के जा-ब-जा धर दिया। "प्रोटेस्टेंटों का मज़्हब बाइबल है।" सिर्फ पाक नविश्ते ही नजात के लिए काफ़ी हैं।" ये अल्फ़ाज़ इस तहरीक के तकया कलाम हो गए। और ये बिल्कुल तबई बात थी कि आम मीलान (रुझान) इस तरफ़ हो कि इल्हाम की हक़ीक़त और वुसअत (गुंजाइश) के मुताल्लिक़ एक आला क़िस्म का एतिक़ाद रखा जाये।

मगर इस मीलान ने दूसरी नस्ल में मुबालग़ा आमेज़ सूरत इख़्तियार कर ली। जिन लोगों ने दिलेरी के साथ ज़मीन के आला से आला मुसल्लिमा इख़्तियार को उठा फेंका था। उनसे ये ख़ौफ़ किया जा सकता था कि वो हर क़िस्म के इख़्तियार (इजाज़त) से बिल्कुल आज़ाद होने की कोशिश करेंगे। आज़ाद ख़्याली तफ़तीश व जुस्तजू में दिलेरी। जब वो बिगड़ी हुई कलीसिया से मुक़ाबिल होते थे। इन बातों पर उनकी सारी क़ुद्रत का मदार होता था। और वो तबई तौर पर इस उसूल को दूसरे उमूर में भी इस्तिमाल करने लगे। अगरचे हमको उनकी बाअज़ राएं सुनकर अफ़्सोस आता है। बल्कि माबाअ्द की ज़िंदगी में वो ख़ुद भी इस पर अफ़्सोस किया करते थे। ताहम हम उनकी इस हद से बढ़ी हुई दिलेरी और आज़ादी पर जो ऐसे नाज़ुक मौक़े पर उन से ज़ाहिर हुई उन पर सख़्ती से हुक्म नहीं लगाना चाहिए। जब कि आज़ादी ख़याल के मुताल्लिक़ जान जोखों का सामना था। तो इस अम्र से गुरेज़ मुश्किल था कि बाज़ औक़ात ये आज़ादी मुनासिब हद्दूद से बाहर निकल जाये।

इरासमस के ख़यालात पाक नविश्तों के इल्हाम और मजमुए के मुताल्लिक़ बिल्कुल आज़ादाना थे। वो मुक़द्दस यूहन्ना के मुकाशफ़ा के इल्हामी किताब होने से मुन्किर (इन्कार करने वाला) था। और ये कहा करता था कि अगरचे जो कुछ इस में लिखा है उस पर ईमान लाना बरकत का बाइस हो। मगर कोई नहीं कह सकता था कि इस में क्या लिखा है। ना वो पाक नविश्तों के लिखने वालों में से किसी को हर तरह की सहू ग़लती से मुबर्रा (पाक) समझता था। इस का क़ौल था कि फ़क़त मसीह ही हक़ कहलाता है और फ़क़त वही हर क़िस्म की ग़लती से मुबर्रा है।

लूथर बाइबल के सहीफ़ों पर अपनी ही तमीज़ के मुताबिक़ हुक्म लगाता था। चुनांचे वो मुक़द्दस याक़ूब के ख़त के हक़ में कहता था, कि वो तो "कूड़ा या भूसा" है। क्यों कि ये ख़ता उस के इस ख़याल से कि आदमी फ़क़त ईमान के ज़रीये से रास्त बाज़ ठहरता है। इख़्तिलाफ़ करता हुआ मालूम होता था। पाक नविश्तों के मज़ामीन में वो सोना, चांदी, और क़ीमती पत्थरों "के साथ लकड़ी, घास, और भूसा" भी पाता था। इस का क़ौल है, कि :-

> "जो नविश्ता मसीह का ऐलान नहीं करता वो रसूली नहीं है। ख़्वाह वो मुक़द्दस पतरस या मुक़द्दस पौलुस का लिखा हुआ क्यों

> ना हो। जो नविश्ता मसीह का ऐलान करता है, वो रसूली है। ख़्वाह उस के लिखने वाला यहोदा या अनास या पिलातुस या हेरोदेस ही क्यों ना हो।□

वो अय्यूब की किताब की निस्बत कहता है कि वो एक तारीख़ी ड्रामा (नाटक) है। जो तवक्कुल व सब्र सिखाने की ग़र्ज़ से लिखा गया है। और उस के नज़्दीक बाइबल के तमाम सहीफ़े यकसाँ क़द्र व क़ीमत नहीं रखते। पौलुस की तहरीरात को वो सबसे अफ़्ज़ल समझता था। अगरचे उस के बाअज़ दलाईल की नुक्ता-चीनी करने से भी नहीं झिजकता। वो लफ़्ज़ी इल्हाम का हरगिज़ क़ाइल ना था। और बार-बार इस सच्चाई पर जो बाइबल के मुताल्लिक़ बहस मुबाहिसों में अक्सर फ़रामोश कर दी जाती है ज़ोर देता था कि रूह-उल-क़ुद्स फ़क़त किसी क़दीम ज़माने की किताब ही में महदूद नहीं है। बल्कि हर एक मसीही के ज़मीर में बोलता है।

कालविन अगरचे बाइबल के मुआमले में ज़्यादा मुअद्दब (अदब सिखाने वाला, उस्ताद) और मुहतात था। मगर लूथर से बहुत ही हल्का आदमी था। और इसी तरह उस के ख़यालात भी इस बारे में हल्के क़िस्म के थे। वो पाक नविश्तों की शरह व तफ़्सीर में ज़मीर को बहुत कम जगह देता था। जैसा कि उस के सिलसिला इल्म इलाही के बाअज़ नफ़रत आमेज़ मसाइल शाहिद हैं। वो अहद-ए-अतीक़ की अख़्लाक़ी ताअलीम को मसीही के दस्तूर-उल-अमल (क़ानून की किताब) के लिए काफ़ी समझता था। वो बाइबल के हर एक हिस्से को यकसाँ क़ाबिल-ए-क़द्र मानता था। जब एक मौक़े पर रैंटी डचस औफ़ फ़ेररा, लोई दवाज़ दहुम की लड़की ने कहा कि दाऊद का नमूना अपने दुश्मनों के साथ अदावत (दुश्मनी) की बाबत हमारे लिए क़ाबिल तक़्लीद (पैरवी) के लायक़ नहीं है। तो कालविन ने सख़्ती से जवाब दिया कि अगर हम इस क़िस्म की तशरीहें करने लगें, तो सारे नविश्ते दरहम-बरहम हो जाऐंगे। और कि अपने दुश्मनों से अदावत करने के लिहाज़ से भी दाऊद हमारे लिए बतौर मिसाल के है। और मसीह का नमूना और निशान है। शायद (मुम्किन है) इसी क़िस्म के ख़यालात ही के बिना पर उसने सर्वेट्स को उस के मुख़ालिफ़ाना अक़ाइद की वजह से जला दिया था। रूमी इनकोईज़ेश के मुमिद (मददगार) अपने अफ़आल को इसी क़िस्म की दलाईल से जायज़ साबित किया करते थे। तो कालविन ऐसा क्यों ना करता?

दूसरी नस्ल में जब ये सब जोश व ख़रोश फ़िरौ (दब गया) हो गया। और आज़ादाना रुहानी ख़यालात किसी क़द्र मुर्दा हो गए। तो बाइबल को फ़ील-फ़ौर वो रुत्बा हासिल हो गया जो कि ऐसे हालात के दर्मियान उसे हासिल हो जाना एक तबई अम्र था। जैसा कि यहूदीयों का हाल था कि जब उनके उलिल-अज़्म अस्हाब और अम्बिया गुज़र गए। तो फ़क़ीहों और शरीअत सिखाने वालों का दौर आया। और इल्हाम की तरो ताज़ा और गर्मा गर्म लहरों के बाद हर्फ़ की सर्द और संगीन परस्तिश शुरू हुई। जब इस्लाह का पहला ऐक्ट ख़त्म हुआ। और वो बुज़ुर्ग चल बसे। जिनकी हुज़ूरी से वो क़ुव्वत हासिल हुआ करती थी। तो उनके पैरओं ने बाइबल को बहैसीयत मजमूई ग़लती से मुबर्रा (पाक) होने की इन तमाम मस्नूई) खुदसाख्ता (सिफ़ात से मुलब्बस कर दिया। जिन सिफ़ात के रूमी अपनी कलीसिया के लिए दाअवेदार थे। अपने ज़माने की ज़रूरीयात से तंग आकर कालविन के शागिर्द ये मानने लग गए, कि हर एक इल्हामी आदमी के अल्फ़ाज़ भी बिला लिहाज़ उस की शख़्सी या अक़्ली हैसियत के एक रहनुमा ताक़त के बराह-ए-रास्त और बालाई क़ुद्रत फ़ेअल का नतीजा हैं। पाक नविश्तों का हर एक हिस्सा ना सिर्फ ताअलीम से ममलू (लबरेज़) है। बल्कि एक ही क़िस्म की ताअलीम से और एक ही माअनों में।" (ओसंकट सलहब की किताब मुतालआ अनाजील पर)

बहस मुबाहिसे की जरूरतों ने उन्हें ऐसे गोशों में धकेल दिया, जो निहायत ख़तरनाक थे। और ला ग़लत कलीसिया के मुक़ाबले में उन्होंने बाइबल का लाग़लत होना रख दिया। इल्हाम में इलाही पहलू पर इस क़द्र ज़ोर दिया गया कि इस में जो इन्सानी पहलू है। वो बिल्कुल फ़रामोश हो गया। लिखने वाला ख़ुदा के हाथ में महज़ एक क़लम के तौर पर था। वो गोया रूह-उल-क़ुद्स के मुंशी के तौर पर था कि जो कुछ वो लिखवाता था ये लिखता जाता था। पाक नविश्ते अव्वल आख़िर तक लफ़्ज़ बलफ़्ज़ इल्हामी हैं। ऐसे तौर से कि उनका हर एक लफ़्ज़ और हर एक हर्फ़ ठीक ऐसा है। गोया कि ख़ुद क़ादिर-ए-मुतलक़ ख़ुदा ने उसे अपने ही हाथ से लिखा है। उनका हर एक कलिमा ख़ुदा का कलाम है। जो कुछ रूह क़ुद्दुस ने लिखाया है। सो बिल्कुल सच्च है। ख़्वाह वो अक़ाइद (यक़ीन) के मुताल्लिक़ हो। या अख़्लाक़ के तारीख़ के हो या तवारीख़ के जुग़राफ़िया के हो या अस्मा के।" और फिर इस से ये इस्तिंबात (नतीजा निकालना) किया कि तमाम ज़मानों में पुश्त ब पुश्त ये नविश्ते ऐसे ही चले आए हैं। क्योंकि कातिब (लिखने वाला) और नाक़िल (नक़्ल करने वाला) ख़ुदा की क़ुद्रत मोअजिज़ानुमा (मोअजिज़ा की ताक़त) के ज़रीये से हर एक क़िस्म की ग़लती या तहरीफ़ (रद्दो-बदल) से

बिल्कुल महफ़ूज़ रखे गए हैं। क्यों कि अगर ऐसा ना होता तो हम किस तरह मान सकते कि बाइबल सहू ग़लती से मुबर्रा है।

ये बात उस ज़माने के यहूदीयों की हर्फ़ की परस्तिश के किस क़द्र मुताबिक़ मालूम होती है। जब कि ज़िंदगी कलीसिया से ख़ारिज हो रही थी। और ये मुशाबहत और भी ज़्यादा कामिल हो जाती है। जब हम ये पाते हैं कि जैसा यहूदीयों में वैसा ही इन लोगों के दरम्यान भी पाक नविश्तों के अल्फ़ाज़ की इस क़द्र आला इज़्ज़त व तौक़ीर के बावजूद हक़ीक़ी रूहानियत निहायत ही अदना और तबाह हालत में हो रही थी। प्रोटेस्टेंटों की सारी तारीख़ में कभी इस क़द्र तंगदिली और तास्सुब (तंगनज़री) और अदावत नहीं पाई जाती। जिस क़द्र कि इस्लाह के बाद के ज़माने में जिस कि इस क़िस्म के मसाइल लोगों के अक़ाइद में जड़ पकड़ गए थे।

इस तौर से इस्लाह के बाद के दस्तूर परस्ती के ज़माने में इल्हाम के मुताल्लिक़ इस क़िस्म के झूटे मसाइल ज़हूर में आए। जिन्हें हमारे ज़माने के लोग इल्हाम की सही तारीफ़ समझने लग गए हैं। और इन मुबालग़ा आमेज़ ख़यालात का लाज़िमी नतीजा हुआ। कि लोग ऐसे नामाक़ूल मसअलों से दिक़ (आजिज़) आ गए। और जो कुछ हम शक और बेचैनी और अल-हाद (दीन से फिर जाना) उस वक़्त देखते हैं। उन के लिए यही बातें जवाबदेह हैं।

5. ज़माना-ए-हाल

अठारहवीं सदी की डी इज़म[10] और अल-हाद) बेदीन, मुल्हिद (किसी हद तक ज़माना इस्लाह के बाद की इस क़िस्म की मसाइल साज़ी का नतीजा था। बाइबल के मुताल्लिक़ इस क़िस्म की मुबालग़ा आमेज़ बातों ने लोगों को तबई तौर पर उस के मुक़ाबिल के गोशा में धकेल दिया। रिचर्ड बैक्स्टर का क़ोल है :-

> शैतान का आख़िर तरीक़ ये है कि किसी चीज़ को हद से परे पहुंचा कर उसे बेकार कर देता है। और इसी तरह उसने कोशिश

10 वो लोग जो ख़ुदा की हस्ती के तो क़ाइल हैं। मगर उस को आलम के इंतिज़ाम में कुछ हिस्सा नहीं देते।

की कि बाइबल के एतबार में मुबालग़ा करने से उसे बर्बाद कर दे।

मुख़ालिफ़ों ने हर एक ज़रा ज़रा सी ग़लती या इख़्तिलाफ़ पर जो बाइबल में दर्याफ़्त हो सकता। और ख़ासकर अहद-ए-अतीक़ की अख़्लाक़ी मुश्किलात पर अपने हमलों की बुनियाद रख दी। ऐसी बातें उस शख़्स को जो बाइबल की निस्बत (ताल्लुक़) ख़याल रखता है। किसी तरह परेशान नहीं कर सकतीं। लेकिन उस ज़माने में जब कि इस क़िस्म के मुबालग़ा आमेज़ एतिक़ाद राइज थे। वो निहायत ख़ौफ़नाक हथियार थे। अगर ये किताब "बालाई क़ुद्रत के अलफ़ात और कलिमात का मजमूआ" है जिसे रूह-उल-क़ुद्स ने बज़ात-ए-ख़ुद लिखाया है। अगर जैसा कि उलमा ताअलीम देते थे। किसी तारीख़ी या इल्मी बयान या अख़्लाक़ी और रुहानी ताअलीम में किसी क़िस्म का ज़रा सा नुक़्स वाक़ेअ होना इल्हाम के मफ़्हूम के ख़िलाफ़ है। तो एक मुल्हिद (काफ़िर) का काम इस की बेख़कुनी (जड़ से उखाड़ना) करने में कुछ मुश्किल काम ना था।

साहिबे अक़्ल व होश मंद मसीहियों ने फ़ौरन ताड़ लिया कि इस क़िस्म की ताअलीम को दुरुस्त करना चाहिए मगर तो भी कई नसलों तक कुछ ना किया गया। मगर शायद सबसे पहली कोशिश जो इस बारे में की गई। वो कोलर्ज साहब की एक किताब मौसूमा "**ग़ौरो-फ़िक्र की इमदाद**" थी। जो उस की वफ़ात के बाद शाएअ हुई ये एक ऐसे शख़्स का काम है। जो फ़िल-हक़ीक़त बाइबल से मुहब्बत रखता था। जिसको ये देखकर कि इन मस्नूई) खुदसाख्ता (ख़यालात के सबब जो उस के ज़माने में राइज थे। मज़्हब को किस क़द्र ज़रूर नुक़्सान पहुंचा है। सख़्त रंज व मलाल (दुख व अफ़सोस) हुआ। वो इस बात पर ज़ोर देता है कि बाइबल की शराअ व तफ़्सीर में ज़मीर के इख़्तियार को तस्लीम करना लाज़िम है। वो इस में इन्सानी अंसर की मौजूदगी और इस के तबई और बर-महल (मौज़ूं) होने का भी सबूत देता है। वो बड़े जोश से इस अम्र की तर्दीद करता है कि बाइबल के इल्हामी होने के लिए उस का हर एक नुक़्ता और शोशा सहू ग़लती से मुबर्रा (पाक) होना ज़रूरी है। वो बाइबल की ताअलीम की अज़मत और ख़ूबसूरती में ऐसा महव (मसरूफ़) है कि उन तहरीरों को जो उस की छोटी छोटी मुश्किलात और इख़्तिलाफ़ात के हल करने के लिए लिखी गई हैं। हिक़ारत की नज़र से देखता है। उस का क़ौल है कि "**शायद उनकी तश्रीह व तौज़ीह हो सकती है। शायद नहीं हो सकती। मगर इस की किसे परवा है कि ऐसा हो सकता है या नहीं।**"

ये तो सच्च है कि उस के ख़यालात एक ख़ौफ़नाक हद के क़रीब पहुंचे हुए मालूम होते हैं। मगर हालात के लिहाज़ से ऐसा होना बिल्कुल तबई अम्र था। लेकिन इस में कुछ शुब्हा नहीं कि उसने बहुतों को जगा दिया कि इस मज़्मून पर पर संजीदगी से ग़ौर व फ़िक्र करें। कंगली और मोर्रिस और आरनल्ड और दीगर अस्हाब ने ये झगड़ा बराबर जारी रखा। गो हम नहीं कह सकते कि वो हमेशा बड़ी दानाई और सलामत-रवी (सीधी राह) को इख़्तियार करते और मुनासिब हद के अंदर ही रहते थे। मगर बहैसीयत मजमूई उन्होंने लोगों की इस अम्र में बड़ी मदद की कि बाइबल की निस्बत ज़्यादा फ़राख़ (खुला) और ज़्यादा सही ख़यालात रखें। और हम आजकल उनकी मेहनतों का समरा (फल) काट रहे हैं। औरों ने मेहनत की और हम उनकी मेहनत में दाख़िल हो गए।"

दूसरा हिस्सा

ख़ुदा ने बाइबल को किस तरह इल्हाम किया

मुकदमा

(1)

इस वक़्त तक हम सिर्फ ज़मीन के साफ़ करने में मशग़ूल (मसरूफ़) रहे हैं ताकि पढ़ने वाले को ऐसे मुक़ाम तक पहुंचाएं। जहां से वो इल्हाम के मसअले पर ठंडे दिल से ग़ौरो-फ़िक्र कर सके। हमने ये दर्याफ़्त किया है कि मौजूदा बेचैनी का बड़ा बाइस बाइबल में नहीं है। बल्कि उन बेहूदा और बे सनद मफ़रूज़ात में है जो बाइबल के मुताल्लिक़ लोगों ने घड़ रखे हैं। हमने ये भी मालूम किया है कि मफ़रूज़ात (फ़र्ज़ किया गया) के ज़रीये नहीं बल्कि एक इल्मी तहक़ीक़ात के तरीक़ पर अमल करने से हम इल्हाम के सही मफ़्हूम को दर्याफ़्त कर सकते हैं। और साथ ही साथ तारीख़ी तौर पर एक मुख़्तसर नज़र कर के ये भी बता दिया है कि मुख़्तलिफ़ ज़मानों में इस बारे में लोगों के क्या-क्या ख़याल रहे हैं।

अब हम दुनिया में इस तौर पर बुनियादें रखने के बाद इस अम्र की तहक़ीक़ात में मशग़ूल होते हैं कि इस मज़्मून के मुताल्लिक़ हम क़ायदा और उसूल के मुवाफ़िक़ क्या कुछ एतिक़ाद (यक़ीन) रखने के मजाज़ (बा-इख़्तियार) हैं।

हमारे सामने जो सवाल गौर-तलब है। सो ये है कि ख़ुदा ने बाइबल को किस तरह इल्हाम किया? इल्हाम के मफ़्हूम में क्या-क्या बातें शामिल हैं? इस अम्र को तस्लीम कर के कि पाक नविश्तों के लिखने वाले इल्हामी थे। हम पर उन की तहरीरों के मुताल्लिक़ क्या कुछ एतिक़ाद रखना लाज़िम आता है।

(2)

मसलन ये कि क्या ख़ुदा ने इस तौर से बाइबल को इल्हाम किया कि इस में से इन्सानी अंसर बिल्कुल ख़ारिज कर दिया था? क्या लिखने वाला मह्ज़ रूह-उल-क़ुद्स के क़लम के तौर पर था? क्या लिखने वाले की कोई भी ज़ाती ख़ुसूसीयत या कोई इन्सानी जज़्बा या नफ़्सानी तह्रीक या तास्सुब "कलाम-उल्लाह" में मौजूद नहीं और ना वो बातें इस में कोई जगह पा सकती हैं?

क्या ख़ुदा ने बाइबल को इस तौर से इल्हाम किया कि इस में किसी क़िस्म की सह्व व ग़लती का इल्म या तारीख़ के मुताल्लिक़ मौजूद होना नामुम्किन है? क्या इल्हाम पर एतिक़ाद रखने से इस अम्र पर एतिक़ाद रखना भी लाज़िम आता है कि पाक नविश्ते हर तरह की सह्व व ख़ता से मुबर्रा हैं? या इस के साथ क्या इस क़िस्म का एतिक़ाद रखना भी मुम्किन है कि कम से कम उस के इल्मी बयानात फ़क़त इस ज़माने की लाइल्मी हालत को ज़ाहिर करते हैं।

या अख़्लाक़ी और मज़्हबी उमूर के लिहाज़ से अगर मैं ये यक़ीन रखूं कि बाइबल में ख़ुदा ने इल्हामी मुकाशफ़ा इस ग़र्ज़ से दिया है कि इस के ज़रीये से बनी इन्सान को उठा कर आला ज़िंदगी की तरफ़ ले जाये। तो क्या इस के साथ मुझे ये भी मानना ज़रूर है कि उसने ये मुकाशफ़ा एक ही वक़्त और एक ही दफ़ाअ तमाम व कमाल दे दिया। या क्या इस के मुताल्लिक़ ये एतिक़ाद (यक़ीन) रखना भी मुम्किन है कि उस की ताअलीम इब्तिदा में ना-मुकम्मल और मोटी सोटी होनी चाहिए थी। या दूसरे लफ़्ज़ों में क्या ये ख़याल करना ना-रवा है कि अह्द-ए-अतीक़ में ऐसी अख़्लाक़ी हिदायात और शराए (शरीअत की जमा) हो सकती हैं। जो आजकल के मसीहियों की हिदायत व रह्नुमाई के लिए अदना और ना-मुकम्मल समझी जानी चाहियें।

फिर क्या ख़ुदा ने बाइबल को इस तौर से इल्हाम किया कि इस के इल्हामी होने पर एतिक़ाद रखने से मुझ पर ये भी लाज़िम ठहरता है कि मुख़्तलिफ़ सहीफ़ों की पेशानियों पर जो मुसन्निफ़ों के नाम लिखे हैं। उन्हें बिल्कुल सही मानूँ या ये कि ये किताब जैसी मुसन्निफ़ों के हाथ से निकलीं। उस वक़्त से लेकर अब तक हर क़िस्म के तग़य्युर व तबद्दुल (फ़र्क़) से बिल्कुल मह्फ़ूज़ चली आई हैं?

क्या इल्हाम में सख़्त दिमाग़ी मेहनत को दख़ल नहीं है। जिसके ज़रीये से लिखने वाला क़दीमी नविश्तों से ढूंढ ढूंढ कर इत्तिला हासिल करे। या दूसरी किताबों में से फ़िक़्रे

के फ़िक़्रे अपनी किताब में दाख़िल करे? क्या नामालूम अश्ख़ास के ज़रीये से इन सहीफ़ों का तर्तीब दिया जाना या इस्लाह व तर्मीम किया जाना इनके इल्हामी होने को नुक़्सान पहुँचाता है?

नाज़रीन को याद रहे कि मैं बड़े ज़ोर से इस अम्र को बार-बार लिख चुका हूँ कि इन सवालों का जवाब देने में हमें मज़्हबी लोगों के मफ़रूज़ात या एतिक़ादात को हरगिज़ दख़ल नहीं देना चाहिए और ये भी कि बाइबल और कलीसिया दोनों ने हमें इस अम्र की तहक़ीक़ात करने के लिए आज़ाद छोड़ दिया है। और सच्चा तरीक़ इस काम के सरअंजाम करने का ये है कि बड़ी एहतियात और अदब के साथ बे-ख़ौफ़ हो कर हम ख़ुद मसअला इल्हाम की तहक़ीक़ात करें जैसा कि वो बाइबल में हमारे रूबरू पेश किया गया है।

नाज़रीन को मुझसे ये उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि मैं इस किताब में पूरे तौर पर इस मसअले पर बहस करूँगा। इस के लिए तो एक बड़ी किताब लिखने की ज़रूरत होगी। जिसमें अव्वल से शुरू कर के बाइबल की एक एक किताब पर ग़ौर किया जाये। और मज़्कूर बाला सवालात में से हर एक के मुताल्लिक़ इस की शहादत को परखा जाये। मैं यहां इस क़िस्म के इम्तिहान की सिर्फ चंद मिसालें देकर ये दिखाऊँगा कि इस क़िस्म की तहक़ीक़ात किस तरीक़ से की जानी चाहिए। और नीज़ वो नताइज भी नाज़रीन के सामने पेश कर दूंगा। जो तमाम अहले अल-राए के नज़्दीक जिनकी राय को हमारी नज़र में वक़अत (क़द्र) होनी चाहिए। मक़्बूल व मुसल्लम हैं।

बाब अव्वल

इल्हाम

1. इल्हाम क्या है?

इसी क़िस्म के एक सवाल का जवाब देते वक़्त एक आलिम ने कहा था कि :-

"अगर तुम मुझसे ना पूछो तो मैं जानता हूँ।"

और मुझे यक़ीन है कि हम में से अक्सर अश्ख़ास इल्हाम बाइबल के मफ़्हूम की निस्बत इसी क़िस्म का जवाब देने पर माइल (मुतवज्जोह) होंगे। हमारे ज़हन में इस की निस्बत एक धुंदला सा ख़याल है कि वो किसी ख़ास क़िस्म की मख़्फ़ी (छिपी हुई) तासीर का नाम है। जो ख़ुदा ने पाक नविश्तों पर की है। और ये ख़याल अमली ज़रूरीयात के लिए तो काम दे जाता है। मगर जब हमसे इस की और हद तलब की जाती है। तो ज़रा टेढ़ी खीर है। और मुझे शुब्हा (शक) है कि आया इस की सही और मुकम्मल तारीफ़ करनी मुम्किन भी है। अगर कोई आदमी ये यक़ीन रखता है कि ख़ुदा पाक ने पाक नविश्तों के अल्फ़ाज़ को लिखा दिया। और इसलिए ख़ुदा पाक नविश्तों का ऐसा ही मुसन्निफ़ है। जैसे मसलन जान बेनिन साहब "मसीही के सफ़र" के हैं। तो इस का इल्हाम का तसव्वुर बिल्कुल साफ़ है। लेकिन अगर इस क़िस्म का एतिक़ाद (यक़ीन) रद्द कर दिया जाये। तो इस के साथ ही ऐसी साफ़ और वाज़ेह तारीफ़ को भी छोड़ना पड़ेगा।

इल्हाम का ख़याल फ़क़त यहूदीयों और मसीहियों में ही महुददूद नहीं है। क़दीम यूनानी व रूमी मुसन्निफ़ भी अक्सर "इलाही जुनून या तनफ़्फ़ुस या ख़ुदा से उठाए जाने या ख़ुदा से इल्हाम किए जाने और फूंके जाने" का ज़िक्र करते हैं। फ़नून शरीफा (मुअज़्ज़िज़ पेशा) मिस्ल संग तराशी या मुसव्विरी और शायरी की लियाक़त पेशगोई की क़ुद्रत इश्क़ व मुहब्बत का जोश, और लड़ाई का तहव्वुर (दिलेरी), ये सब बातें उन फनों के देवताओं की तरफ़ मन्सूब की जाती थीं। जो उस वक़्त उस शख़्स पर क़ाबू पाए हुए समझे जाते थे। यही अल्फ़ाज़ और ख़यालात बादअज़ां मसीहियों की मज़्हबी इस्तिलाहात

में भी दाख़िल हो गए। और लाज़िमी तौर इब्तिदाई कलीसिया के तसव्वुरात इल्हाम पर भी किसी दर्जे तक अपना असर डाला।

लफ़्ज़ (Inspird) यानी "इल्हाम शूदा"[11] सिर्फ दो मौक़ों पर अंग्रेज़ी बाइबल में इस्तिमाल हुआ है। अव्वल अय्यूब 32:8 जहां लिखा है कि :-

"क़ादिर-ए-मुतलक़ अपने दम से उन्हें[12] फ़हमीदा बख़्शता है।" दोम (2 तीमुथियुस 3:16) "हर एक किताब जो इल्हाम से है।" मगर इस से हमें इस ख़याल का पूरा मफ़्हूम दर्याफ़्त करने में कुछ मदद नहीं मिलती। अंग्रेज़ी लफ़्ज़ के मअनी हैं, "कोई ऐसी चीज़ जिसके अंदर ख़ुदा फूँकता है।" और ये लफ़्ज़ हर दर्जे की इलाही तासीर पर आइद होता है। (2 पतरस 1:21) में "क़दीम ज़माने के मुक़द्दस लोगों का इल्हाम इन लफ़्ज़ों में बयान हुआ है, कि वो रूहुलक़ु-द्दुस की "तहरीक" या उठाए जाने" से बोलते थे। जो दम फूँकने या नफ़ख़ (फूकना) की निस्बत ज़्यादा ज़ोर रखता है। मगर इन दोनों अल्फ़ाज़ से हम सिर्फ इतनी ही समझ हासिल करते हैं, कि इल्हाम के मअनी हैं "इलाही तासीर।"

तो अब सवाल ये है कि बाइबल के वाक़ियात का बड़ी एहतियात के साथ इम्तिहान करने के बाद हम इल्हाम की क्या तारीफ़ करें? हमको इस तारीफ़ से बढ़कर मानने से क़तई इन्कार कर देना चाहिए। जो ख़ुद लफ़्ज़ ही में पाई जाती है। यानी ख़ुदा की तरफ़ से फूँका जाना या एक इलाही तासीर। क्यों कि सिर्फ यही तारीफ़ है जो इल्हाम के सारे ज़हूरात पर हावी होगी। ये इलाही तासीर, जैसा कि बाइबल के इम्तिहान करने से वाज़ेह होगा। बाअज़ वाक़ियात तो फ़िल-हक़ीक़त एक मामूली बात होगी। जिसकी मदद से आदमी को ये ताक़त मिले कि वो किसी बात को ज़्यादा संजीदगी और ज़्यादा सेहत के साथ बयान कर दे। बनिस्बत किसी और मुआमले के जो उसने महज़ अपनी अक़्ल व मुशाहिदे से दर्याफ़्त किया है। और बाज़ औक़ात ये एक अजीब व ग़रीब और मख़्फ़ी)छिपी (क़ुव्वत होगी। जो इन्सान को ख़ुदावंद ख़ुदा की पोशीदा बातों के समझने की

---

11 इस किताब में हमने लफ़्ज़ इल्हाम अंग्रेज़ी लफ़्ज़ (Inspirtion) इंसपायरेशन का तर्जुमा किया है। जिसके लफ़्ज़ी मअनी "किसी के अंदर फूंक देना" हैं। लफ़्ज़ इल्हाम अरबी मुसद्दिर लहम से निकला है। जिसके मअनी "डाल देता" है। यूं दोनों लफ़्ज़ यानी अंग्रेज़ी व अरबी क़रीब क़रीब बलिहाज़ लुग़त व इस्ताह के एक ही मअनी रखते हैं।

12 इब्रानी में जो लफ़्ज़ यहां इस्तिमाल हुआ है। सोनिशामाह (سونشاماه) है। जो अरबी नस्र से मिलता है।

क़ाबिलीयत अता कर दे। इस क़ुव्वत ने एक आदमी को तारीख़ नवीसी में मदद दी। दूसरे क़दीमी नविश्तों की तर्तीब देते हैं। एक को फ़न मेअमारी में दूसरे को दिल को उभारने वाले गीत गाने में। इस से एक रसूल को कलीसिया के लिए नेक और उम्दा सलाहों से भरे हुए ख़त लिखने में मदद मिली। और इसी ने दूसरे नबी के लबों को पाक आग से छुआ, ताकि वो अपनी क़ौम को उस की शरारत और बदकारियों से ख़बरदार कर दे।

अगरचे वो दरअस्ल एक अख़्लाक़ी और रुहानी नेअमत है। मगर मालूम होता है कि इस से ज़हन की सफ़ाई और तेज़ी में भी मदद मिलती थी। इस के ज़हूर तरह तरह के थे। और मुख़्तलिफ़ आदमीयों पर मुख़्तलिफ़ होते थे। इस से अख़्लाक़ी और रुहानी सच्चाई की गहरी समझ हासिल होती थी। ख़ुदा का हिस्स।,रूह का अलू, (रूह की बरतरी) रास्त बाज़ी की ख़्वाहिश अक़ीदत की गर्म-जोशी। सब इसी के फल थे। इस से हिक्मत और अदालत की रूह। रुहानी मुकाशफ़ात के हासिल करने की क़ाबिलीयत। और ज़हनी क़वाह (ताक़त, क़ुव्वत) की ताज़गी और तेज़ी हासिल होती थी। वो ये सब या इनमें से बाअज़ ताक़तें अता करती थी। और वो इन ताक़तों को मुख़्तलिफ़ मिक़दार में बख़शती थी। और इस का ज़हूर मुख़्तलिफ़ सूरतों में मुख़्तलिफ़ होता था।

इसलिए हमें इल्हाम की निस्बत ये ख़याल नहीं करना चाहिए। कि वो ऐसी चीज़ है। जो हर हालत में यकसाँ अमल करती है। या हर वक़्त एक ही क़िस्म का अजीब व ग़रीब नतीजा पैदा करती है। इन सादा अल्फ़ाज़ में इस की तारीफ़ निहायत मुनासिब मालूम होती है कि ये वो ताक़त है जिसे ख़ुदा हर एक आदमी को उस मिक़दार के मुवाफ़िक़ अता करता है। जिसकी इमदाद की इस आदमी को अपने ख़ास सपुर्द शूदा काम के सर-अंजाम करने के लिए हाजत (ज़रूरत) थी।

2. मुकाशफ़ा और इल्हाम

ताकि इस मज़्मून पर ख़यालात में गड़-बड़ ना हो। ये ज़रूर है कि हम मुकाशफ़ा और इल्हाम में अच्छी तरह से इम्तियाज़ (फ़र्क़) कर लें। हम एक शख़्स को इल्हाम करते हैं। मगर हम एक अम्र (फ़ेअल) को कश्फ़ या ज़ाहिर करते हैं इल्हाम बतौर हवा के सांस या झोंके के है। जो एक अख़्लाक़ी हस्ती के बादबानों (मस्तूल, वो कपड़ा जो कश्ती की रफ़्तार को तेज़ करने और उस का रुख मोड़ने के लिए लगाते हैं) को भरता है।

मुकाशफ़ा बतौर एक दूरबीन के है। जिससे हम ऐसी चीज़ें देख सकते हैं। जो आँख से नज़र ना आ सकतीं।" मुकाशफ़ा के मअनी हैं, "किसी चीज़ को जो पहले मालूम ना थी ज़ाहिर कर देना।" इल्हाम के मअनी हैं, "रूह-उल-क़ुद्स का नफ़ख़ या फूंकना।" ताकि ज़्यादा रुहानी कैफ़ीयत या हालत या ज़्यादा गर्म-जोशी और गहरी मुहब्बत पैदा कर दे। और ख़ुदा के मक़ासिद व मंशा का गहरा इल्म व फ़हम हासिल हो। या दीगर क़ाबलियतों को जिनके इस्तिमाल की इल्हामी शख़्स को अपने मन्सबी (ओहदे के मुताल्लिक़) काम के सरअंजाम करने के लिए ज़रूरत थी। ज़्यादा तेज़ और ताक़तवर कर दे।

इसलिए इल्हाम का बग़ैर मुकाशफ़ा या कश्फ़ के होना मुम्किन है। मसलन अगर नुक्ता-चीनीया ये साबित कर दे कि किसी किताब का कोई जुज़्व भी बालाए क़ुद्रत तरीक़ से कश्फ़न (ज़ाहिर) नहीं किया गया। और जो वाक़ियात इस में दर्ज हैं। वो मामूली क़ुदरत-ए-मुशाहिदा के ज़रीये से या क़दीमी नविश्तों से या दूसरों की शहादत (गवाही) से हासिल किए गए थे। तो इस से किसी किताब का ग़ैर-इल्हामी होना लाज़िमी तौर पर साबित ना होगा। इस से हरगिज़ ये बयान ग़लत नहीं ठहरेगा कि मुसन्निफ़ को इल्हाम के ज़रीये एक साफ़ हाफ़िज़ा और इलाही बातों के समझने के लिए एक तेज़ फ़हम और बारीक बीन नज़र अता हुई थी। और उस को तबई क़ुव्वत से ज़्यादा क़ुव्वत-ए-इम्तियाज़ बख़्शी गई। जिसके ज़रीये से उसने जान लिया कि उसे क्या कहना चाहिए और किस तरह कहना चाहिए।

यक़ीनन सारी बाइबल इलाही मुकाशफ़ा नहीं है। बहुत सी बातें जो महज़ इन्सानी क़वा (इन्सानी ताक़त) के ज़रीये मालूम ना होतीं। वो ख़ुदा ने मोअजज़ाना तौर से बज़रीया मुकाशफ़ा के ज़ाहिर कर दीं। मगर और बहुत सी बातें ऐसी थीं। जिनके लिए मुकाशफे की हाजत ना थी। यहूदी तारीख़ के वाक़ियात मालूम करने के लिए किसी क़िस्म के मुकाशफे की हाजत ना थी। बल्कि क़दीम नविश्तों और मसौदों का मुतालआ और इल्हामी मुसन्निफ़ का ज़ाती मुशाहिदा और हाफ़िज़ा इस ग़र्ज़ के लिए काफ़ी थे। रसूलों और यूसुफ़ और कुँवारी मर्यम के अस्मा, यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले का क़िस्सा या हमारे ख़ुदावंद के मोअजज़ात का बयान करने के लिए जो अनाजील के लिखने वालों या उनकी ख़बर देने वालों ने मुशाहिदा किए थे, किसी मुकाशफे की ज़रूरत ना थी। ना पौलुस रसूल अपने मिशनरी सैरो सियाहत के मालूम करने के लिए जिनका वो अपने ख़ुतूत में ज़िक्र करता है किसी मुकाशफे का मुहताज था।

तो ये ज़ाहिर है कि बाइबल का बहुत बड़ा हिस्सा हरगिज़ ख़ुदा की तरफ़ से कश्फ़ के तौर पर नहीं दिया गया। और ना इस की हाजत थी। मगर हम यक़ीन रखते हैं कि उसने सारा बाइबल इल्हाम किया। जब कि मुसन्निफ़ीन ने अपनी क़ुव्वत-ए-मुशाहदा या हाफ़िज़ा को इस्तिमाल किया या क़दीम तारीख़ी नविश्तों से काम लिया। मसलन याशर की किताब याजद और ऊद की तवारीख़ वग़ैरह। तो हम इस अम्र के लिए इल्हाम की ज़रूरत को देख सकते हैं ताकि वाक़ियात की क़द्रो क़ीमत और मंशा (मर्ज़ी) और अमली ताल्लुक़ व लगाओ का सही तौर से मुवाज़ना किया जाये। और हर एक चीज़ इस की हैसियत और रुतबे के मुवाफ़िक़ जांची जाये। और कि कोई वाक़िया काफ़ी तौर पर हस्ब-ए-ज़रूरत बयान किया जाये और बैरूनी तारीख़ के पीछे ख़ुदा का हाथ साफ़-साफ़ नज़र आए।

बाब दोम

दो हदें

तम्हीद

अगरचे जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं। हम इल्हाम की सही तारीफ़ बयान नहीं कर सकते और ना इस की हक़ीक़त को बता सकते हैं। और ना ये कह सकते हैं कि ख़ुदा इल्हाम देने में किस क़द्र इमदाद अता करता है। ताहम इस के ज़हूरात पर जैसा कि वो बाइबल में नज़र आते हैं। ग़ौरो फ़िक्र करने से इस की निस्बत अपने ख़यालात को बहुत कुछ साफ़ व रोशन कर सकते हैं। हम ये दर्याफ़्त कर सकते हैं कि आया इल्हाम इस अम्र को लाज़िमी ठहराता है कि हम बाइबल के हर एक बयान को महज़ ख़ुदा ही का कलाम मानें। जिसमें किसी मख़्लूक़ के कलाम की आमेज़िश (मिलावट) ना हो। या के इस में इन्सानी ना कामिलियत और नुक़्स की मिलावट भी मुम्किन है? या क्या एक इल्हामी किताब में मज़्हबी या अख़्लाक़ी उमूर में ज़माना-ए-हाल के मसीही अक़ाइद की निस्बत अदना दर्जे के नातिरा शैदा (ना डर) ख़यालात का मिलना भी है?

अगर हम शुरू ही में इन हदों को मुक़र्रर कर लें। जिनके दर्मियान हमारी तहक़ीक़ात महदूद रहनी चाहिए। और जिनसे बाहर हम यक़ीनी तौर पर कह सकें कि इल्हाम का सच्चा तसव्वुर मिलना मुम्किन नहीं। तो इस से हमारी तहक़ीक़ात व जुस्तजू में बहुत मदद मिलेगी।

अब जो लोग किसी माअनों में भी पाक नविश्तों को इल्हामी मानते हैं। उनके दर्मियान ह्म ख़यालात की दो हदें पाते हैं। जिनसे बाहर कोई नहीं गया। नीचे की हद पर वो लोग हैं, जो इल्हाम को महज़ एक तबई बात समझते हैं। ऊपर की तरफ़ वो हैं, जो लफ़्ज़ी इल्हाम के क़ाइल हैं। अगर हम इन दोनों को आख़िरी हदूद समझ कर इन को बहस से ख़ारिज कर दें। तो हम हदूद को और भी तंग कर देंगे। जिसके अंदर इल्हाम की सच्ची तारीफ़ व तसव्वुर के वाक़ेअ होने की उम्मीद हो सकती है। और इस तौर से हम किसी क़द्र सही तारीफ़ के ज़्यादा क़रीब हो जाऐंगे।

1. तबई इल्हाम

इस वक़्त जब कि क़दीमी एतिक़ाद खड़े हुए हैं। एक आसान और सादा मसअला पेश किया जाता है। जो बावजाह आसान और सादा होने के बहुत से अहले अल-राए (अक़्लमंद) अस्हाब के दिलों में जड़ पकड़ता जाता है और बहुत से दूसरे लोग भी जो हरगिज़ अहले अल-राए कहलाने के मुस्तहिक़ नहीं हैं। वो इसे दूसरों से मुस्तआर (मांगा हुआ) लेकर ख़्वाह-मख़्वाह इस पर अपनी फ़साहत व बलाग़त (ख़ुश-बयानी) झाड़ते रहते हैं। और चूँकि इस में सच्चाई का कुछ जुज़्व शामिल है। जैसा कि ऐसी सूरतों में उमूमन हुआ करता है। इसलिए वो निहायत ख़ौफ़नाक और मुग़ालित (ग़लत-फ़हमी) में डालने वाला है।

ये मसअला इस तौर पर बयान किया जाता है कि बाइबल चंद सफ़हात का मजमूआ है। जो फ़हीम और मोअतबर अश्ख़ास ने नेक नीयती से तहरीर किए हैं। और जिनके काम में रूह-उल-क़ुद्स की तरफ़ से इल्हाम और हिदायत दी गई। मगर ये हिदायत व इल्हाम ऐसा ही है जैसा कि किसी शरीफ़ मुसन्निफ़ की किताब में ख़्वाह वो शायर हो या वाइज़ पाया जाता है। और जिसकी ताअलीम से लोगों के दिल में ख़ुदा और मज़्हब की निस्बत सच्चे ख़यालात पैदा हो जाते हैं। इस मसअले के एतबार से हर एक आली क़द्र शायर मुलहम (इल्हाम रखना) है। और हर एक गर्म-जोश और सादिक़ आदमी जो अपने ज़माने के लोगों के लिए कोई इलाही पैग़ाम रखता है। वो ऐसा ही ख़ुदा-ए-क़ादिर का नबी है। गोया कि उस का कलाम भी बाइबल का एक हिस्सा है। दाऊद और मिल्टन शायर, यसअयाह और जान बनियन, अफ़लातून और मुक़द्दस पौलुस एक ही इलाही रूह के मुख़्तलिफ़ ज़हूर हैं। □बाइबल के मुसन्निफ़ इस आगाही और शऊर को जो किसी हद तक सारे बनी-आदम को हासिल है। और जो दुनिया के बराबर वसीअ और ख़ुदा की तरह आलमगीर है। औरों से ज़रा ज़्यादा मिक़दार में रखते हैं।" अम्बिया का इल्हाम जिसके ज़रीये से उन्हों अपने ज़माना आइन्दा की पेश ख़बरी की। वो फ़क़त बारीक नज़री थी। जिसके ज़रीये से उन्होंने अपने ज़माने के मीलानों (रूझानों) को देखकर जान लिया कि इनसे क्या नतीजा निकलेगा। जो ताक़त उन्हीं लोगों के ज़मीरों को जगाने के लिए हासिल थी। वो उनकी ज़िंदगी की पाकीज़गी व तक़द्दुस का नतीजा थी। जैसा कि इंग्लिस्तान के एक फ़सीहुल-बयान (साफ़ बयान) ने फ़्रांस के मशहूर मुल्की इन्क़िलाब की बाबत जो गुज़श्ता सदी के शुरू में वाक़ेअ हुआ पैशनगोई कर दी थी। इसी तरह यसअयाह ने यहूदीयों की असीरी की पैशन गोई की थी। जैसा कि आजकल किसी पाक आदमी का कलाम लोगों के दिलों पर तासीर किए बग़ैर नहीं रहेगा। वैसे ही ज़बूर नवीसों और रसूलों

के अल्फ़ाज़ का भी हाल है। क्यों कि वो ख़ुदा की क़ुर्बत) नज़दिकी (व नज़दीकी में ज़िंदगी बसर करते थे।

1. (अलिफ़) ये मसअला कहाँ तक सच्च है?

इस में कुछ शुब्हा नहीं कि इस में बहुत कुछ सच्चाई पाई जाती है। ये समझना सख़्त ग़लती होगी कि इल्हामी आदमी सिर्फ ज़माना गुज़श्ता ही में हुआ करते थे। और कि इल्हामी नविश्ते सिर्फ़ बाइबल ही में पाए जाते हैं। और कि ख़ुदा की रूह ने क़दीम ज़माने के ग़ैर-मसीही नेक दिल मुअल्लिमों (मुअल्लिम की जमा) को आज और कल के नेक दिल मसीहियों को इल्हाम नहीं किया। ताकि इनके ज़रीये से लोगों के दिलों में ज़िंदगी और फ़र्ज़ के मुताल्लिक़ बेहतर और आला ख़यालात पैदा करे।

दुआ की किताब के इन अल्फ़ाज़ को कौन रद्द कर सकता है कि ख़ुदा हमारे ज़माने में अपनी रूह-उल-क़ुद्स के इल्हाम से लोगों के दिल के ख़यालों को पाक करता है? और कौन इस से इन्कार कर सकता है कि लूथर और टॉमस ए कम्पस कंगली और कार्लाइल के पैग़ामात मज़्हबी ख़यालात की दुरुस्ती और तरफ़ीअ (बुलंदी चढ़ना) के लिए ख़ुदा की तरफ़ से इल्हाम नहीं किए गए थे?

लेकिन यक़ीनन ये सब बातें इस एतिक़ाद के मुख़ालिफ़ नहीं हैं कि ख़ुदा ने एक क़ौम को दूसरी अक़्वाम के फ़ायदे के लिए खासतौर पर तर्बीयत किया और उसने ख़ास और बालाई क़ुद्रत इल्हाम की नेअमत दुनिया के क़दीमी ज़मानों में ख़ास ख़ास आदमीयों को अता की। ताकि उनके ज़रीये से अपनी ज़ात और मशीयत (मर्ज़ी) के मुताल्लिक़ बुनियादी उमूर बनी-इन्सान पर कश्फ़ (ज़ाहिर) करे। जो इस ज़माने के बाद की तमाम मज़्हबी ताअलीमात के लिए बतौर दुनिया के रही हैं। इसलिए आओ। हम इस अम्र पर ग़ौर करें कि हमारे पास इस एतिक़ाद के लिए क्या दलील है कि पाक नविश्तों के मुसन्निफ़ों का इल्हाम एक ख़ास क़िस्म का बालाई क़ुद्रत अम्र था। वो मामूली इल्हाम की निस्बत जिसकी रहनुमाई से आजकल के लोग अच्छे ख़याल सोचते और नेक काम करते हैं बरतर और मुख्तलिफ था।

2. (ब) लिखने वालों का अपने इल्हाम की निस्बत क्या ख़याल था?

पाक नविश्तों के मुसन्निफ़ों और दूसरे मुसन्निफ़ों के दाअवे का मुक़ाबला करने से पहले शुरू ही में ये सवाल करना मुनासिब है कि ये मुसन्निफ़ ख़ुद इस अम्र की निस्बत क्या ख़याल रखते थे? इस अम्र की निस्बत जो ख़ुद उनकी रूहों में मख़्फ़ी) छिपी (था। ख़ुद उनकी राय यक़ीनन क़ाबिल-ए-क़द्र होनी चाहिए। और इस सवाल से हमें फ़ौरन एक निहायत अहम जवाब मिलता है कि जब कि बड़े-बड़े शूअरा और मोअल्लिमीन और मुतख़लक़ीन कभी भी ख़ुदा की तरफ़ से मुलहम (इल्हाम रखना) होने के दावेदार नहीं पाए जाते। और ना अपने पैग़ाम के साथ इस क़िस्म के अल्फ़ाज़ शामिल करते हैं कि "ख़ुदावंद यूं फ़रमाता है।" बाइबल के कई एक सहीफ़ों के मुसन्निफ़ ऐसा करते पाए जाते हैं।

अहद-ए-अतीक़ पर नज़र करो। पहले शाह दाऊद के अल्फ़ाज़ सुनो जो अपने इल्हाम की निस्बत फ़रमाता है :-

"ख़ुदावंद की रूह मुझमें बोली और उस का कलाम मेरी ज़बान पर था।" (2 समुएल 23:2) फिर यसअयाह का कलाम सुनो। "ख़ुदावंद ने जब उस का हाथ मुझ पर ग़ालिब हुआ.....मुझको यूं फ़रमाया।" (यसअयाह 8:11)

फिर यर्मियाह का बयान सुनों, "पेश्तर इस के कि मैंने तुझे पेट में ख़ल्क़ किया। मैं तुझे जानता था। और रहम में से तेरे निकलने से पहले मैंने तुझे मख़्सूस किया। और क़ौमों के लिए तुझे नबी ठहराया। तब मैंने कहा, हाय। ख़ुदावंद यहोवा देख मैं बोल नहीं सकता क्यों कि लड़का हूँ। पर ख़ुदावंद ने मुझको कहा, मत कह कि मैं लड़का हूँ। क्यों कि जिनके पास मैं तुझे भेजूँगा। तू जाएगा। और सब कुछ मैं तुझे फर्माऊंगा, तू कहेगा देख मैंने अपनी बातें तेरे मुँह में डाल दीं। देख आज के दिन मैंने तुझे क़ौमों और बादशाहों पर इख़्तियार दिया।" (यर्मियाह 1:5-10)

आमोस जो एक ग़रीब चरवाहा था। जब बैतएल- के काहिनों ने उसे चुप रहने का हुक्म दिया तो यूं कहता है, "मैं तो नबी नहीं ना नबी का बेटा हूँ। बल्कि चरवाहा हूँ।

और गूलर के फूलों का बटोरने वाला हूँ। और ख़ुदावंद ने मुझे लिया। जब मैं गल्ले के पीछे पीछे जाता था। और ख़ुदावंद ने मुझे फ़रमाया कि जा और मेरी उम्मत इस्राईल से नबुव्वत कर।" (आमोस 7:15-14)

फिर सुनो हिज़्क़ीएल क्या कहता है, कि "रूह मुझे उठा के ले गई सौ मैं तल्ख़ दिल हो के और रूह में जोश खा के रवाना हुआ कि ख़ुदावंद का हाथ मुझ पर ग़ालिब हो रहा था।" (हज़िकीएल 3:14)

मगर और मिसालें जमा करने की ज़रूरत नहीं है। नाज़रीन अम्बिया के सहीफ़ों में से गुज़र जाएं। और वो ख़ुद देख लेंगे की किस तरह बार-बार ये सुनने में आते हैं, "ख़ुदावंद का कलाम" "ख़ुदावंद यूं फ़रमाता है।" बाज़ औक़ात वो देखेगा, कि एक नीम रज़ा पैग़म्बर "ख़ुदावंद के बोझ" के नीचे आहें मार रहा है। और किसी बालाई क़ुद्रत हाथ के ज़रीये धकेला जा रहा है। और बाज़ औक़ात अपनी ख़िलाफ़-ए-मर्ज़ी बोलने पर मज्बूर किया जाता है। और बाज़ औक़ात अपनी मर्ज़ी बोलने पर मज्बूर किया जाता है। जब कि ख़ुदा की रूह क़ुद्रत के साथ उस पर उतरती है और ये देखकर उसे इस अम्र में कुछ भी शुब्हा ना रहेगा कि क़दीमी अम्बिया ये यक़ीन रखते थे कि उन पर एक ख़ास क़िस्म का और बालाई क़ुद्रत इल्हाम नाज़िल होता है।

अब अहद-ए-जदीद पर नज़र करो और ख़ुदावंद के वो पुर ज़ोर अल्फ़ाज़ सुनो, जिनका हम हिस्सा अव्वल बाब दोम में ज़िक्र कर चुके हैं। फिर मुक़द्दस पौलुस के बयानात को देखो कि वो किस तरह लिखता है कि "मुझे इन्जील अता हुई। वो मुझे इन्सान की तरफ़ से नहीं पहुंची और ना मुझे सिखाई गई। बल्कि येसू मसीह की तरफ़ से मुझे इस का मुकाशफ़ा हुआ।" (ग़लतियों 1:12) फिर देखो कैसे एक साहिब-ए-इख़्तियार की मानिंद वो अपने ख़तों को शुरू करता है, "पौलुस येसू मसीह का एक रसूल" गोया कि वो ये महसूस करता है कि उस का सारा इख़्तियार इसी एक अम्र पर मुन्हसिर है। फिर देखो वो किस तरह क़दीमी अम्बिया की तरह दाअवा करता है कि "ये बात हम तुम्हें ख़ुदा के कलाम से कहते हैं।" और अपने इल्हाम के हक़ में उस का यही ख़याल है। और अगर तुम ये जानना चाहते हो कि वो अहद-ए-अतीक़ के नविश्तों के मुताल्लिक़ क्या ख़याल रखता है। तो उस के ख़ुतूत में उन बेशुमार हवालों को देखो जहां वो बड़े अदब व इज़्ज़त से उन्हें "ख़ुदा का कलाम" कहता है। फिर एक और मौक़े पर वो

लिखता है कि "ख़ुदा होसीअ (नबी के सहीफ़ा) में फ़रमाता है।" फिर ख़ुदा एक और मुक़ाम में फ़रमाता है। "मैं उनमें बसूँगा, और उनमें चलूं फिरूंगा।" (2 कुरिन्थियों 6:16) फिर ख़ासकर उस मुक़ाम को देखो, जहां वो बड़े वसूक़ (एतिमाद) से तमताओस (तीमुथियुस) से कहता है, कि "तमाम नविश्ते जो ख़ुदा से इल्हाम हुए।" जिसका तर्जुमा ख़्वाह किसी तरह करो। इस से कम से कम ये तो ज़रूर साबित होता है कि वो इन नविश्तों के एक ख़ास क़िस्म के और बालाई फ़ित्रत इल्हाम का क़ाइल था।

और अगर हम अहद-ए-जदीद के बाक़ी सहीफ़ों में से भी गुज़र जाएं, तो हम मालूम करेंगे कि किस तरह मुख़्तलिफ़ नवीस निदा ये एतिक़ाद ज़ाहिर करते हैं कि अम्बिया इस अम्र की "जुस्तजू" करते थे कि मसीह की रूह जो उन में थी। उस का मतलब क्या था। (1 पतरस1:11) "और कि ख़ुदा के बंदे रूहुल-क़ुद्दुस की तहरीक से बोलते थे" (2 पतरस 1:21) और कि इन बातों का ज़िक्र "ख़ुदा ने दुनिया के शुरू से अपने पाक नबियों की ज़बानी किया है।" (आमाल 3:21) कि "ये सब कुछ इसलिए हुआ कि जो ख़ुदावंद ने नबी की मार्फ़त कहा था वो पूरा हो।" (मत्ती 1:22) लेकिन इस क़िस्म की और मिसालें नक़्ल करना फ़ुज़ूल है। क्यों कि हर एक पढ़ने वाले पर ये साफ़ ज़ाहिर है कि पाक नविश्तों के मुसन्निफ़ ये यक़ीन रखते थे कि उनको एक ख़ास क़िस्म का इल्हाम होता है। और ख़ुदा की तरफ़ से एक मोअजज़ाना क़ुव्वत बख़्शी गई है।

3. (ज) दीगर उमूर क़ाबिल लिहाज़

इस तबई इल्हाम के मसअले के ख़िलाफ़ और भी कई एतराज़ हैं। जिन पर इस मुक़ाम पर बहस करना ग़ैर ज़रूरी मालूम होता है। मसलन उन मुसन्निफ़ों को एक ख़ास क़िस्म की अजीब बारीक-बीनी की क़ुव्वत हासिल है, जो किसी और में नहीं पाई जाती। या वो इलाही नबुव्वतें जिन के सबब से एक मसीह की आमद की आलमगीर इंतिज़ारी पैदा हो गई या मोअजज़ाना इल्म व मार्फ़त जैसे कि मुक़द्दस पौलुस को हासिल थी। "देखो मैं एक राज़ की बात बताता हूँ। हम सब सोएँगे नहीं वग़ैरह।" फिर एक निहायत अजीब बात है कि किस तरह ये किताबें जो एक दूसरे से बिल्कुल अलेहदा) अलग (हैं। बल्कि इनमें से बाअज़ के दर्मियान सदीयों का फ़ासिला पाया जाता है। फिर भी सबकी सब मिलकर एक कामिल और जामेअ किताब बन जाती हैं। गोया कि कोई उस्ताद इस तमाम मुआमले का इंतिज़ाम व बंद व बस्त कर रहा था। और भी कई एक दलाईल हैं।

जिनका मैं इस किताब के पहले हिस्से में ज़िक्र कर चुका हूँ। जिनसे इस किताब का इल्हामी होना साबित होता है। मगर उनके यहां दोहराने की ज़रूरत नहीं। मेरे ख़याल में जो कुछ लिखा गया है। वो इस अम्र के सबूत के लिए काफ़ी है कि "तबई या फ़ित्रती इल्हाम" का मसअला हरगिज़ क़ुबूल नहीं किया जा सकता, जब तक कि हम बाइबल की ख़ास ख़ास बातों को जो उसे दूसरी किताबों से मुम्ताज़ करती हैं। बिल्कुल नजर-अंदाज़ ना कर दें।

2. लफ़्ज़ी इल्हाम

जो दलाईल हमने ऊपर "फ़ित्रती इल्हाम" के मसअले की तर्दीद (इन्कार) में बयान की हैं। वही दलाईल अक्सर बाइबल के "लफ़्ज़ी इल्हाम" की ताईद में पेश की जाया करती हैं। इस मसअले के मुताबिक़ ख़ुदा पाक नविश्तों का मुसन्निफ़ समझा जाता है। ठीक इसी माअनों में जिनमें मसलन मिलन शायर को उस की मशहूर नज़मों का मुसन्निफ़ कह सकते हैं। उस का हर एक फ़िक़्रह उसी का लिखाया हुआ है। और उस के लिखने वाले महज़ बतौर क़लम के थे। जिसका चलाने वाला रूह-उल-क़ुद्स था। और उनका इस काम में इस से बढ़कर और कोई हिस्सा ना था। इसलिए बाइबल कुल्लियतन (पूरे तौर पर) इलाही-उल-अस्ल है। और लफ़्ज़ी तौर पर इस हर एक फ़िक़्रह और सतर ख़ुदा की तस्नीफ़ की हुई है। इस मसअले के सही तौर पर बयान करने के लिए मैं इस के चंद मशहूर मवय्यदों (हिमायत करने वाले) के अल्फ़ाज़ बजिन्सा नक़्ल करता हूँ। प्रोफ़ैसर गोसन साहब लिखते हैं :-

> "ख़ुदा ने नविश्तों को दिया और उनकी ज़बान पर भी अपनी मुहर कर दी है।"

डीन बर्गन लिखते हैं :-

> "बाइबल सिवाए इस के नहीं कि वो उस की जो तख़्त पर बैठा है, आवाज़ है। इस का हर एक सहीफ़ा, हर एक बाब, हर एक आयत, हर एक कलिमा, हर एक हर्फ़ उस क़ादिर-ए-मुतलक़ की अपनी आवाज़ है। और इसलिए मुतलक़ बे-नुक़्स और बे-ख़ता है।"

एक और मुसन्निफ़ मिस्टर बेली लिखता है :-

> "और इस का हर एक कलिमा ऐसा है जैसा कि इस सूरत में होता। अगर ख़ुदा बग़ैर किसी इन्सानी वसीले के आस्मान से कलाम करता।"

हासिल कलाम इस मज़्मून पर आम ख़याल ये है, कि इल्हामी नवीस नदो (लिखने वाले) ने ख़ुदा के बताने से ऐसी तारीखें लिख दीं जो सहू ख़ता (ग़लती व ख़ता) से मुबर्रा (पाक) हैं। और जिनके तैयार करने में उन्हें और किसी क़िस्म के नविश्तों से मदद लेने की ज़रूरत ना थी।

शायद हमारे नाज़रीन में से कोई कहे कि "वो पुर ज़ोर कलिमात जो हमारे ख़ुदावंद के अक़्वाल और बाइबल के बाअज़ मुसन्निफ़ों की तहरीरात से नक़्ल किए गए हैं। उन्हें पढ़ कर मुझे यक़ीन होता है कि अग़लबन लफ़्ज़ी इल्हाम का मसअला सच्च है।" ख़ैर साहब आपको ये भी मालूम रहे कि बहुत से अहले अल-राय (अक़्लमंद) इस अम्र में आपसे इख़्तिलाफ़ रखते हैं। क्यों? इसलिए कि अगरचे वो इन दलाईल की बिना पर बाइबल के इल्हामी होने के क़ाइल हैं। ताहम उन्होंने सतही बातों को छोड़कर ज़रा आगे भी जुस्तजू व तहक़ीक़ात की है। ताकि इस अम्र को मालूम करें कि ख़ुदा के इल्हाम के मफ़्हूम में कौन कौनसी बातें दाख़िल हैं पर वो पाक नविश्तों का इम्तिहान करने के बाद हरगिज़ ये यक़ीन नहीं कर सकते कि इस लफ़्ज़ के मफ़्हूम में लफ़्ज़ी इल्हाम भी शामिल है।

मसलन वो तवारीख़ की किताबों में सरीह निशानात (साफ़ निशान) इस अम्र के पाते हैं कि बजाए इस के कि लिखने वाले ख़ुदा के लिखाने से लिखते। उन्होंने अपने दिमाग़ों से काम लिया। और क़दीमी तारीख़ों और रिवायतों और सरकारी काग़ज़ात में इन वाक़ियात की जुस्तजू और तलाश की। हम ये भी पाते हैं कि बावजूद इस सारी तहक़ीक़ात व जुस्तजू के उनके बयानात में बहुत कुछ नुक़्स व इख़्तिलाफ़ पाया जाता है। वो ये भी लिखते हैं कि इन्जील नवीस अगरचे क़िस्सों के नफ़्स-ए-मज़्मून में बाहम इत्तिफ़ाक़ रखते हैं। ताहम अल्फ़ाज़ की बाबत ऐसी एहतियात करते हुए नज़र नहीं आते। मसलन जैसे कि सलीब के ऊपर के नविश्ते की बाबत जहां कि दो इन्जील नवीस भी बाहम मुत्तफ़िक़ नहीं हैं। नीज़ वो देखते हैं कि ख़ुद मुक़द्दस पौलुस रसूल इस क़िस्म के

अल्फ़ाज़ के इस्तिमाल करता है, कि "मैं एक अहमक़ की तरह कलाम करता हूँ।" जो अगरचे एक इन्सानी मुसन्निफ़ के लिए ऐसा कहना एक बिल्कुल तबई बात है। मगर रूह-उल-क़ुद्स की ज़बानी ऐसे अल्फ़ाज़ लिखाये जाने की मुश्किल से उम्मीद हो सकती है। वो बाअज़ ज़बूरों में इस क़िस्म के अल्फ़ाज़ पाते हैं। जो हमारे ख़ुदावंद की ज़बान से बिल्कुल नामौज़ूं मालूम होते।

वो इस क़िस्म की बातों से जो बाइबल में पाई जाती हैं। अपनी आँखें बंद नहीं कर सकते। और अगरचे उन्हें लफ़्ज़ी इल्हाम पर यक़ीन करने में कुछ भी एतराज़ ना होता। ताहम वो इस अम्र को तर्जीह देते हैं कि इस क़िस्म की बातों को इन्सानी मुसन्निफ़ों के ज़िम्में लगाऐं। बजाए इस के कि ख़ुदा को इनका ज़िम्मेदार ठहराएँ। और इन दोनों बातों में से एक ज़रूर ही माननी पड़ेगी।

और जब एक शख़्स इस तौर पर ग़ौर व फ़िक्र करने लगता है। तो उसे इस लफ़्ज़ी इल्हाम के मसअले के ख़िलाफ़ हर तरफ़ से सबूत मिलने लगते हैं वो देखता है कि अगर ख़ुदा लफ़्ज़ी तौर पर इस का मुसन्निफ़ समझा जाये। ठीक उन्ही माअनों में जिसमें मिल्टन या जान बिनन अपनी तस्नीफ़ात के मुसन्निफ़ हैं। तो बाइबल की इबारत और ज़बान हमेशा और हर हालत में बे-नुक़्स कामिल और यकसाँ होनी चाहिए। हालाँकि कि ऐसा अक्सर देखने में नहीं आता। इलावा बरीं इनमें मुसन्निफ़ों की ऐसी ख़ुसूसियात पाई जाती हैं। जो आसानी से देखी जा सकती हैं। वो देखता है कि किस तरह अहद-ए-जदीद के सहीफ़ों के लिखने वाले बल्कि ख़ुद ख़ुदावंद अहद-ए-अतीक़ में से आज़ादी के साथ आयात को नक़्ल करते हैं। जिससे साफ़ ज़ाहिर है कि ये लोग ज़बान में नहीं बल्कि अंदरूनी ख़यालात और मज़ामीन में इस इल्हाम के देखने के आदी थे। वो ये भी देखता है कि हमारी बाइबल में बहुत सा हिस्सा क़दीमी नविश्तों तारीख़ी और दीगर काग़ज़ात भी शामिल है। और इसलिए उनके लिए इस अम्र पर यक़ीन लाना एक मुश्किल अम्र है कि ख़ुदा उन क़दीमी गुम-शुदा नविश्तों के "हर एक फ़िक़्रह हर एक लफ़्ज़ और हर एक कलिमा और हर एक हर्फ़" का भी लफ़्ज़ी तौर पर मुसन्निफ़ समझा जाये।

और वो इस क़िस्म का सवाल किए बग़ैर भी नहीं रह सकते कि पाक नविश्तों के फ़िक़्रात और अल्फ़ाज़ और हुरूफ़ के लफ़्ज़ी तौर पर लिखाये जाने से क्या फ़ायदा हो सकता है। सिवाए इस के कि ख़ुदा इन तमाम सदीयों के दर्मियान भी अपनी मोअजज़ाना

क़ुद्रत के साथ इनके लफ़्ज़ बलफ़्ज़ सही तौर पर नक़्ल करने वालों से लिखवाने का भी बंद व बस्त ना कर दे। मगर बाइबल के इस्लाह शूदा तर्जुमा आम लोगों को भी मालूम हो गया होगा। जो बात कि उलमा को बहुत पहले से मालूम थी कि पाक नविश्तों के बाअज़ अल्फ़ाज़ के मुताल्लिक़ अक्सर औक़ात ठीक-ठीक नहीं कह सकते कि दरअस्ल सही लफ़्ज़ क्या है। इस से हमें क्या फ़ायदा होगा कि ये तो मानें कि हज़ार-हा साल हुए ख़ुदा ने ये तो अपनी क़ुद्रत के ज़रीये इंतिज़ाम कर दिया कि पाक नविश्तों का हर एक कलिमा ख़ुदा ही का लिखवाया हुआ हो। मगर साथ ही ये इंतिज़ाम ना किया कि वो हर ज़माने में बिल्कुल महफ़ूज़ भी रहे। जिससे इस मोअजिज़े का असली मक़्सद व मुद्दआ बिल्कुल फ़ौत (ख़त्म) हो गया।

मगर इस मसअले की तर्दीद (रद्द करना) में और ज़्यादा क़ुव्वत ख़र्च करना महज़ तसनेअ औक़ात है वो ज़माना गुज़र गया। जब कि ऐसा करने की ज़रूरत होती। लफ़्ज़ी इल्हाम की निस्बत अब सब ताअलीम याफ्ता अश्ख़ास यक़ीन करते हैं कि वो एक ऐसा मसअला है। जिसका वाक़ियात से कोई सबूत नहीं मिलता। और अब दुनिया के दीगर पुराने मर्दूद। दिमाग़ी ख़बतों (सौदाई) के साथ वो भी चिमगादड़ों और छछूंदरों का हिस्सा है।

अब हम ने अपनी तहक़ीक़ात में पहले क़दम पर ये दर्याफ़्त कर लिया है, कि ख़ुदा ने पाक नविश्तों को इस तौर पर इल्हाम नहीं दिया, जैसा कि लफ़्ज़ी इल्हाम के मानने वाले बयान करते हैं। मगर बर-ख़िलाफ़ इस के ये भी देखते हैं कि उसने इस तौर पर भी इल्हाम नहीं किया। जिस तौर पर कि वो आजकल भी नेक लोगों को इल्हाम बख़्शता है। इसलिए दोनों मुबालग़ा आमेज़ (बढ़ा-चढ़ा कर) हदूद को छोड़कर और इस तौर से अपनी तहक़ीक़ात के दायरे को महदूद कर के हम इस अम्र के दर्याफ़्त करने की कोशिश करेंगे कि बाइबल के इल्हाम के मफ़्हूम में क्या-क्या बातें शामिल हैं ताकि इस बारे में हमारे ख़यालात व तसव्वुरात ज़्यादा साफ़ और वाज़ेह हो जाएं।

बाब सोम

इन्सानी और इलाही

1. इल्हाम में इन्सानी अंसर

जो शख़्स सिदक़ दिल (सच्चे दिल) से बाइबल का मुतालआ करेगा। वो ज़रूर इस में इन्सानी अंसर या पहलू भी पाएगा। अगर वो इसे नज़रअंदाज- करने की कोशिश करेगा। तो बाइबल उस के लिए एक अक़्दह लाएन्हल (मुश्किल जो हल ना हो) या एक गोरख दहिंदा (मुश्किल मुआमला) बन जाएगी। लेकिन अगर वो इस अम्र को अदब व इज़्ज़त के साथ तस्लीम करेगा। तो बाइबल बिल्कुल साफ़ और ज़्यादा ख़ूबसूरत मालूम होगी। इल्हाम ख़ुदा की रूह और इन्सान की रूह के इत्तिसाल (मिलाप) का नतीजा है या शायद ज़्यादा साफ़ अल्फ़ाज़ में यूं कहना चाहिए कि ख़ुदा रूह-उल-क़ुद्स और इन्सानी ज़हन और ज़मीर के इत्तिसाल का नतीजा है। इन दोनों अजज़ा में से एक से भी क़त-ए-नज़र (नज़रअंदाज-) नहीं हो सकती। और ना जैसा कि हम गुज़श्ता बाब में दिखा चुके हैं। इनमें से एक पहलू पर हद से बढ़कर ज़ोर दिया जा सकता है। क्यों कि इस सूरत में गड़बड़ मचने और परेशानी पैदा होने का ख़तरा है। जब हम ये पढ़ते हैं कि "आदमी ख़ुदा की तरफ़ से रूह-उल-क़ुद्स की तहरीक के सबब बोलते थे।" तो हमें इस सच्चाई के दोनों पहलूओं में इम्तियाज़ चाहिए।

1. वो रूह-उल-क़ुद्स से तहरीक किए जाते थे।

2. वो महज़ आदमी थे।

वो ऐसे ही आदमी थे जैसे कि हम हैं। हमारी ही कमज़ोरियाँ और हमारे जैसे जज़्बात और तअस्सुबात (बेजा हिमायत) रखते थे। अगरचे रूह-उल-क़ुद्स के असर से वो बहुत कुछ पाक-साफ़ और आली मिज़ाज हो गए थे। इन आदमीयों में उनके मिज़ाज और तौर व अत्वार की ख़ुसूसियात पाई जाती हैं। कोई आलम व ताअलीम-याफ़्ता था। कोई इस से बे-बहरा (बेख़बर) था। हर एक एक अपने अपने पहलू से बैरूनी मुआमलात पर नज़र करता था। हर एक दूसरों से असरात और तजुर्बात और तर्बियत-ए-ज़िंदगी के

लिहाज़ से मुख़्तलिफ़ था। उनके इल्हामी होने से तबई क़वाइद का माअरज़-अल-तवा (टालना) में पढ़ जाना या बेकार होना लाज़िम नहीं आता। और ना इस से उनकी शख़्सियत या ताअलीम व ख़सलत (फ़ित्रत) के इख़्तिलाफ़ात ज़ाइल (दूर) हो गए। जो साहिबे इल्म था। उस की तहरीर से इल्मीयत ज़ाहिर होती है। जो चरवाहा या मछुवा था। वो अपनी तर्बीयत व आदत का इज़्हार करता है। □शायर शायर ही रहा। और फ़ल्सफ़ी फ़ल्सफ़ी ही रहा। और मोअर्रिख मोअर्रिख (तारीख़ लिखने वाला) ही रहा। हर एक का तबई ख़ास्सा और तौर व तरीक़ जूं का तूं ही रहा। और इसलिए हर एक की उस के फ़न के क़वानीन के मुताबिक़ शरह करनी चाहिए।"

ऐसा कहने से बाइबल की किसी तरह से हतक व बेइज़्ज़ती (बे-हुरमती, गुस्ताख़ी) नहीं होती। मसलन अगर कोई कहे, कि ज़मीन का कुर्रह ठीक मुदव्वर (गोल) नहीं है। तो इस से इस की इज़्ज़त को क्या दाग़ लग जाएगा। बल्कि जब हम ऐसा कहते हैं, तो उस के ये मअनी हैं कि हम एक अम्र वाक़ई का बयान करते हैं। इस की बाबत एक सच्ची बात का इज़्हार करते हैं। ताकि वो ज़्यादा दुरुस्ती से समझी जा सके। एक ज़माने में ये ख़याल किया जाता था। कि इस क़िस्म के बयानात बाइबल की शान के शायान नहीं हैं।

और जो लोग इल्हाम के मुताल्लिक़ मसाइल घड़ा करते थे। बग़ैर इस के कि उनका वाक़ियात की रू से इम्तिहान व आज़माईश कर लें। वो कहा करते थे कि बाइबल ख़ालिसन एक इलाही चीज़ है। और इन्सानी नवीस निदा (लिखने वाले) महज़ एक कल (मशीन) के तौर पर था। और उस की शख़्सियत को उस के काम में कुछ भी दख़ल नहीं। वो ख़ुदा के हाथों में महज़ एक क़लम के तौर पर था। जो वो लिखाता जाता था। ये लिखता जाता था। या वो रूह-उल-क़ुद्स के हाथों में बतौर एक साज़ मौसीक़ी के था। लेकिन जैसा हम ऊपर ज़िक्र कर चुके। जब ज़्यादा तवज्जोह से बाइबल का मुतालआ किया गया। तो ऐसे ऐसे उमूर ज़ाहिर हुए, जो इस क़िस्म के ख़यालात के बिल्कुल ख़िलाफ़ थे। तब ये दर्याफ़्त हुआ कि बहुत सी बातों में ये इल्हामी किताबें आम ग़ैर-इल्हामी किताबों की मानिंद हैं। उनकी ज़बान और इबारत हर हालत में आला दर्जे की नहीं। हर एक मुसन्निफ़ का तर्ज़-ए-तहरीर और तरीक़-ए-ख़याल अलग-अलग है। और इनमें से हर एक आम मुसन्निफ़ों की तरह अपने-अपने उयूब (नुक़्स) और ख़ूबियां रखता है। मोअर्रिख को अपनी किताब की तस्नीफ़ में वही तरीक़ इख़्तियार करना पड़ा होगा, जो आजकल के तारीख़ नवीसों को करना पड़ता है। उसे क़दीम नविश्तों से जो पहले से

मौजूद थे। अपना मज़्मून इकट्ठा करना पड़ा। और कुछ मसालिहा अपने मुशाहिदे और हाफ़िज़े से और अपने आस-पास के लोगों से हासिल किया। उनकी तहरीरात में उनके अहद के ख़यालात का रंग पाया जाता है। मुसन्निफ़ की इल्मी वाक़फ़ीयत भी उस के हमअस्रों- (ज़माना) के दायरे इल्म से महदूद (कम) मालूम होती है। बाअज़ नक़्क़ाद (तन्क़ीद करने वाले) तो ये कहने की भी जुर्अत करते हैं कि वो उनमें इन्सानी तअस्सुबात और जज़्बात के भी निशानात पाते हैं। मसलन जब मुक़द्दस पौलुस एक यूनानी शायर का क़ौल नक़्ल करते हुए। सारे अहले क्रीत को "झूटे और मूज़ी जानवर" (तितुस 1:12) क़रार दे देता है। या जब कि ज़बूर नवीस अपने ज़ालिमों के ख़िलाफ़ ग़ुस्से में आकर चिल्ला उठता है, "ऐ ख़ुदा उन के दाँत उनके मुँह में तोड़ डाल।" और फिर, इस के बच्चे सदा आवारा रहें और भीक मांगें। वो अपने वीरानों से ख़ुराक ढूंढते फिरें।" (ज़बूर 109:12)

इन बातों से क़त-ए-नज़र कर के भी बाइबल में इन्सानी अंसर बड़ी सफ़ाई के साथ नज़र आता है। इस के एक बड़े हिस्से में ऐसे ऐसे हसात और जज़्बात का ज़िक्र पाया जाता है, जो महज़ इन्सानी हैं। यानी तन्हाई और ग़म। ख़ौफ़ व रजा। शक और तल्ख़-कलामी। हम इस सबको कलाम-उल्लाह पुकारते हैं। और एक तरह से ये कहना सही भी है। क्यों कि ये सब ख़ुदा की तरफ़ से इल्हाम हुआ है। मगर हमको ये भी देखना चाहिए कि इस का बहुत बड़ा हिस्सा इन्सान का कलाम है जैसे कि बच्चा अपने बाप को पुकारता है। इमदाद के लिए दुआएं। शक व शुब्हात और अनदेखे ख़ुदा के लिए रूह की परवाज़। ये सब हसात हमारे फ़ित्रती हसात की मानिंद हैं। और हम इन्हें हमेशा महसूस करते रहते हैं। क्या ज़बूर की किताब की ख़ूबसूरती ज़्यादातर इस अम्र में नहीं है कि वो बड़ी दुरुस्ती के साथ उन्ही बातों को बयान करती है। जो हम ख़ुद बार-बार अपने अंदर महसूस करते रहते हैं? "इसलिए बाइबल के इन्सानी पहलू को नज़र-अंदाज करने की कोशिश करना महज़ इसलिए कि उस के कलाम होने का ख़याल आमेज़िश (मिलावट) से ख़ाली ना रहे। ऐसी ही बड़ी हमाक़त (बेवक़ूफ़ी) होगी, जैसे कि कोई शख़्स ये कहे कि बाप और बच्चे की गुफ़्तगु के लिखने का सबसे बेहतर तरीक़ ये है कि इस में से बच्चे के अक़्वाल व ख़यालात व हसात को बिल्कुल छोड़ दिया जाये।"

ख़ुदा इसी तरीक़ से रूह इंसानी को ताअलीम दिया करता है। अगर सही पहलू से देखें, तो मालूम होगा कि बाइबल में इन्सानी पहलू का होना बजाए। उस की इज़्ज़त को

कम करने के उसे और भी ज़्यादा बनी-आदम के लिए एक निहायत मुनासिब मज़्हबी किताब ठहराता है। लेकिन अगर ऐसा ना भी हो। तो भी इस अम्र के तस्लीम करने से चारा नहीं। जब कभी हम इस से क़त-ए-नज़र (नज़र चुराना) करने या मुन्किर (इंकारी) होने की कोशिश करते। या ख़ुदा की ताअलीम की सच्चाई को इस अम्र पर मुन्हसिर करते हैं कि इस में इन्सानी पहलू नहीं है। तो इस से हम अपने मज़्हब के मुख़ालिफ़ों को एक बहुत बड़ा मौक़ा हमला करने का देते हैं।

2. इन्सानी अंसर की क़द्रो-क़ीमत

हम जानते हैं कि ख़ुदा अगर चाहे तो बग़ैर वसीले इन्सानी ज़हन या हाथ के अपना इल्हाम अता कर सकता है। वो अगर चाहता तो हर रोज़ आस्मान से अपनी सच्चाईयां बयान कर देता या फ़रिश्तों के ज़रीये भेज देता। या आस्मान पर मोटे मोटे हर्फ़ों में मुन्क़िश (लिखना) कर देता। या पहाड़ों पर ऐसे तौर से लिख देता, जो कभी महव ना हो सकतें। इस तौर से वो हर एक तरह के बिगाड़ या ख़राबी से बिल्कुल महफ़ूज़ रहतीं। और इस तरह से वो सारी दुनिया में एक ही दफ़ाअ शाएअ की जा सकतीं। ख़ुदा के लिए इन बातों में से किसी बात को करना ऐसा ही आसान था। जैसा कि ये अम्र कि सच्चाई को रफ़्ता-रफ़्ता और बाज़ औक़ात धुँदले तौर से ना-कामिल इन्सानी ज़हनों के ज़रीये से ज़ाहिर करे।

मगर क्या इस क़िस्म का मुकाशफ़ा इन्सान की जरूरतों के लिए काफ़ी होता? अगरचे हम बहुत कुछ नहीं जानते। मगर यक़िनन इतना तो कह सकते हैं, कि बहर-सूरत ख़ुदा का मौजूदा तरीक़ अमल सबसे बेहतर है। फ़ील-वाक़ेअ का हम ये भी पूछ सकते हैं।

कि और कौन सी तज्वीज़ ऐसी है, जो मोअतरिज़ (एतराज़ करने वाला) पेश कर सकता है। हर एक पैग़ाम जो ख़ुदा की तरफ़ से इन्सान को मिले। ज़रूर है कि वो इन्सानी क़वा (ताक़त) के मुनासिब हाल हो। इलाही बातों को इन्सान तब ही समझ सकता है जब कि वो इन्सानी फ़ित्रत के क़वानीन के मुताबिक़ उस के सामने पेश की जाएं। इसलिए अगर एक पहले से घड़ा हुआ इल्हाम व मुकाशफ़ा एक पहले से घड़ी हुई ज़बान में आस्मान से नाज़िल किया जाये। तो हम इस को बनी इन्सान के साथ ख़त व

किताबत करने का एक मुनासिब और तबई ज़रीया नहीं कहेंगे। बहर-सूरत ये तो ज़ाहिर है कि ख़ुदा ने किसी ऐसे तरीक़ को इस्तिमाल नहीं किया है। उसने इन्सानी ज़हनों को अपनी सच्चाई के ज़ाहिर करने का वसीला ठहराया है। क्यों कि इसी तरीक़ से इन्सानी ज़हन जिनके लिए वो नाज़िल की गई। इसे बेहतर तौर से हासिल कर सकते थे। उसने उन आदमीयों को जो हर एक मुल्क और ज़माने से बहुत मुनासबत रखते थे। इस्तिमाल किया। उसने मुख़्तलिफ़ खासाइल (आदतें) और तबाइअ (तबइयत की जमा) वाले आदमीयों को इल्हाम किया। उसने मुख़्तलिफ़ ख़याल के आदमीयों को मुंतख़ब किया। ताकि अपनी सच्चाई के मुख़्तलिफ़ पहलूओं को लोगों पर ज़ाहिर करे। और इस तौर से एक दूसरे की दुरुस्ती और तक्मील करे। यूहन्ना जो तन्हाई पसंद और तफ़क्कुर व मराक़बा (दिल से ख़ुदा की तरफ़ ध्यान) का आदी था। वो दूसरे इन्जील नवीसों की निस्बत अश्या को मुख़्तलिफ़ रंग में देखता है। आतिश मिज़ाज और सरगर्म पतरस की तंग-ख़याली और नीम मुहज़्ज़ब व ना तर्बियत याफ्ता दिमाग़ की तक्मील के लिए एक वसीअ ख़याल और मन्तिक़ी (दलील देने वाला) पौलुस की ज़रूरत थी। जो मसीही दीन की आलमगीर क़ुद्रत व वुसअत (गहराई) का अंदाज़ा लगाने और इस क़ौल की हक़ीक़त समझने की कि सब लोग जो ईमान रखते हैं, ख़ुदा के नज़्दीक मक़्बूल हैं। क़ाबिलीयत रखता था। हालाँकि मुक़द्दस याक़ूब जो एक यहूदी तर्ज़ का मुक़द्दस आदमी था। और हमेशा ज़िंदगी के अमली पहलू पर नज़र रखता था। इस बात को ताड़ गया कि किस तरह नजात बिल-ईमान की ताअलीम के मुताल्लिक़ भी बाआसानी ग़लत-फ़हमी पैदा हो सकती है। और लोग ये समझने लग जाऐंगे कि गोया ईमान अमल से ज़्यादा अहम ज़रूरी है और इसलिए उसने यक दूसरे यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले की तरह दीन व मज़्हब की बुनियादी सच्चाई पर ज़ोर दिया। कि महज़ नेकोकारी ही में इन्सान की शराफ़त है।

इसी तरह इलाही रूह इन्सानों की ज़िंदगी के मुख़्तलिफ़ अहम मौक़ों पर उनके पास आई। वो उनके पास उनकी ख़ुशी और ग़म और रश्क व शुब्हा और मायूसी, ईमान की मज़बूती और आज़माईशों के जद्दो-जहद के मौक़े पर आई। और उस ने इन्सानी रूह के ज़रीये उस की मुख़्तलिफ़ हालतों में आलमगीर इन्सानी रूह के साथ कलाम किया जो उस के सिवा और किसी तरह हरगिज़ ना कर सकती। उसने यसअयाह के पुर जोश-ए-ग़ज़ब और यर्मियाह की ग़मनाक आह ज़ारी के ज़रीये जो वो अपनी शरीर क़ौम की निस्बत करते थे। कलाम किया उसी ने क़दीम ज़माने के ज़बूर नवीसों के दिल को छुआ।

और हम उनकी कश्मकश का हाल सुनते हैं। जो वो अपने ग़मों और अपने गुनाहों के साथ करते थे। और नीज़ उनकी बच्चों की फ़र्याद पुकार, जो उन के दिल से ज़िंदा ख़ुदा की तरफ़ उठती थी। उनके नविश्तों में सुनाई देती है। उसी ने होसेअ के दिल में अपना इल्हाम डाला। जो अपनी सबसे दर्द-नाक मुसीबत पर जो किसी इन्सान पर पढ़नी मुम्किन है। यानी अपनी बीवी की बेवफ़ाई पर नोहा ज़ारी (रोना, मातम करना) करता है। और उस के ग़म और इस गैर-तब्दील मुहब्बत को इस अम्र के ज़ाहिर करने का ज़रीया बना दिया, कि ख़ुदावंद यहोवा भी अपनी नाफ़रमांबरदार उम्मत के लिए इसी तरह अफ़्सोस करता है।

इसी लिए ख़ुदा ने इस तौर से बाइबल को इल्हाम किया। उस को अपने नबियों की इल्मीयत या सर्फ व नहव के (ग्रामर) क़ाईदों की पाबंदी की इतनी परवाह ना थी। उस के मक़्सद के लिए धड़कने वाला दिल, तेज़ आँख, और पुर अक़ीदत दिल, जो ख़ुदा और इन्सान की उल्फ़त व मुहब्बत से भरा हो। ज़्यादा कार-आमद थे बनिस्बत इस के तारीख़ी वाक़ियात की ज़रा ज़रा सी बारीकियों या इल्मी उमूर में सहू ग़लती से मुबर्रा (पाक) होने का ख़याल रखता। भला ये ज़रा ज़रा सी मुर्दा बातें क्या हक़ीक़त रखती थीं। बमुक़ाबला उस हम्दर्दी के जो एक इन्सान के दिल में दूसरे के साथ होती है। और जिससे एक शख़्स के कलाम से दूसरों के दिल में जोश व तहरीक पैदा हो जाती है।

ऐ मर्दो और औरतों! अगर तुम पाक नविश्तों को अच्छी तरह समझना चाहते हो। तो इस अम्र को यक़ीन जानो। ख़ुदा इन्सानी तमाशागाह के पीछे खड़ा हुआ पुतलीयों का नाच नहीं नचा रहा तुम बाइबल में इन्सानी अंसर का ज़िक्र करना पसंद नहीं करते। तुम नुक़्स और ना कामिलियत (ना-मुकम्मल) और महदुदीयत (कमी) के ख़याल से डरते हो। तुम इन्सानी जज़्बात और हसात के तस्लीम करने से ख़ौफ़ खाते हो। क्यों कि ये बातें तुम्हारे ज़हन के तसव्वुर से जो तुम इल्हाम की निस्बत रखते हो, टकराते हैं। मत डरो ख़ुदा का नूर अपनी आस्मानी पाकीज़गी को इन्सानी सूरतों में मुनअकिस (ज़ाहिर) होने से हरगिज़ नहीं खो बैठता। बर-ख़िलाफ़ इस के इन्सान एसी हमदर्दी को महसूस करने से जो उस के से जज़्बात और हसात की मौजूदगी को बताती है। बहुत कुछ फ़ायदा हासिल करता है। यक़ीनन ख़ुदा की तदाबीर हमारी तदाबीर से ज़्यादा माक़ूल (मुनासिब) हैं। भला इस से बढ़कर कौन सा क़ुदरती तरीक़ है। जिसके मुताबिक़ इन्सान आस्मान की

तरफ़ से ताअलीम हासिल करता? इस से बढ़कर और कौन सा तरीक़ है। जिससे बाइबल ऐसी किताब बन जाती जो सारे बनी इन्सान के लायक़ हो?

3. इन्सानी अंसर को फ़रामोश करने की ख़राबी

एक क़दीमी यहूदी रब्बी का क़ौल है, कि :-

□शरीअत बनी-इन्सान की ज़बान में बोलती है।□

और बाइबल के हक़ में बहुत बेहतर होता। अगर यहूदी रब्बी और उनके मसीही पैरौ इस बात को हमेशा मद्दे-नज़र रखते। क्यों कि इस क़िस्म के तराशे हुए मसअलों से जो अर्से से मुरव्वज (राइज) चले आते हैं बाइबल के फ़ित्रत-ए-इन्सानी के मुताबिक़ होने की ख़ूबी नज़रों से ओझल हो गई है।

इन्सानी रूह की आवाज़ उस की मुख़्तलिफ़ हालतों में जो बाइबल के सहीफ़ों में सुनाई देती है। अगर हम इसे फ़िल-हक़ीक़त अपनी ही जैसी रूह इन्सानी की आवाज़ समझें, तो वो कैसी ही दिल पर असर करने वाली होगी। और कैसी दिलचस्पी के साथ हम लोगों को अपनी आज़माईशों और इम्तहानों के साथ जद्दो-जहद करने या ज़िंदगी के इसरार की बाबत सवाल करते देखेंगे। अगर हमको ये मालूम होगा कि ये लोग ख़ास कर वह जिनका ज़िक्र हम अहद-ए-अतीक़ में पढ़ते हैं। हमारे जैसे मामूली नाकामिल इन्सान हैं। जिनमें ख़ुदा का बड़ा अज़ीमुश्शान काम जिससे वो लोग के चाल चलन और ख़साइल (आदतें) को दर्जा बदर्जा नश्वो नुमा देकर कमाल की तरफ़ ले जाता है। जारी हो रहा है। और ये कि आदमी रफ़्ता-रफ़्ता रूह-उल-क़ुद्स से नूर हासिल कर के शराफ़त के आला मदारिज की तरफ़ तरक़्क़ी कर रहे हैं। और इसी के असर के नीचे ये लोग अपने अपने ख़यालात और उमंगों का इज़्हार कर रहे हैं। ना ये कि फ़ोनोग्राफ़ (एक आला जिसके ज़रीये आवाज़ क़लम-बंद होती है) की तरह आलम-ए-बाला के सिखाए हुए अल्फ़ाज़ को दोहरा हैं।

जब दुनिया के तारीक ज़मानों में पेश्तर इस के कि कामिल (मुकम्मल) मुकाशफ़ा हासिल हुआ। एक ख़ुदा शनास आदमी एक मायूसी व इज़तिराब (बेचैनी) के दरिया में पड़ जाता है। और इस हालत में क़ब्र को सारी चीज़ों का अंजाम समझने लगता है। तो हमें

ये कोई ताज्जुब (हैरान) की बात मालूम नहीं होती। बल्कि ये बिल्कुल इन्सानी फ़ित्रत के तक़ाज़े के मुताबिक़ है। और अगर हमें इस बात पर ताज्जुब हो कि क्यों उस के इस क़िस्म के अल्फ़ाज़ काट नहीं डाले गए पेश्तर इस के कि उस की तहरीरात बाइबल में शामिल की गईं। तो हम कहेंगे कि बिला-शुब्हा ख़ुदा को यही मंज़ूर था। क्यों कि उस का मक़्सद इस तौर से अच्छी तरह पूरा होता। और जब हम और अल्फ़ाज़ देखते हैं। जो जंग व जदाल के ज़मानों में लिखे गए। जो मसीह की रूह के साथ मुहब्बत व मुलायम के लिहाज़ से मेल नहीं खाते। तो हमें याद रखना चाहिए कि वो लोग जिन्हों ने ये अल्फ़ाज़ इस्तिमाल किए आदमी ही थे। मगर ऐसे आदमी जो अगरचे इल्हाम याफ्ताह थे। ताहम उन्हें अभी तक पूरे तौर पर ताअलीम हासिल नहीं हुई थी। और ना उनके तबई जज़्बात अभी तक पूरे तौर पर रूह-उल-क़ुद्स की तासीर से मग़्लूब और पाक-साफ़ हुए थे। हमें तारीख़ के और वाक़ियात की तरह उनको भी उनकी तबई हैसियत के मुवाफ़िक़ समझना चाहिए। गो हम उनकी दुआओं को मसीही रूह के मुवाफ़िक़ नहीं समझते। मगर बावजूद इस के भी हम जानते हैं कि वो ख़ुदा-परस्त आदमी थे। और हम उनसे फ़राइज़ की बजा आवरी के मुताल्लिक़ उम्दा-उम्दा सबक़ सीख सकते हैं। वो इस मुआमले की पैरवी में जिसे वो दुरुस्त और ख़ुदा का मुआमला समझते थे। अपनी जान को हथेली पर रखे हुए थे।

हम अपनी हम्दर्दी के ज़रीये उनके हसात की तह तक पहुंच सकते हैं। क्यों कि हम उनकी तारीख़ को उस के तबई (फ़ित्री) माअनों के मुताबिक़ पढ़ते हैं। मगर जब हम तारीख-ए-बाइबल में कोई वाक़िया पढ़ते हैं। गोया कि वो दुनिया के तारीक ज़मानों में ही क्यों ना वाक़ेअ हुआ हो। तो हमारे पहले ही से ठाने हुए ख़यालात के सबब जो हम बाइबल की ठहरा चुके हैं। इस वाक़िये की तबई सूरत पहले ही से इस में ख़ारिज कर दी जाती है। सिर्फ इसलिए कि वो वाक़ेया बाइबल में है। हम उन लोगों को जिनका इस में ज़िक्र है। मामूली क़िस्म के हक़ीक़ी आदमी नहीं समझते। हम इस अम्र (फ़ेअल) को भूल जाते हैं कि ख़ुदा ने ना कामिल आदमीयों को अपनी ताअलीम का ज़रीया ठहराया। और वो आदमी एक ही दफ़ाअ छलांग मार कर अपनी रुहानी ताअलीम की चोटी तक नहीं पहुंच गए। और इसलिए बजाए इस के कि हम उनके ग़ज़बनाक हो कर इंतिक़ाम के लिए पुकार उठने के साथ हम्दर्दी करें। बजाए इस के कि हम उनकी इस फ़र्याद पूकार को ऐसा ही समझें जैसे कि एक बच्चा चोट खा कर चिल्ला उठता है। और अपने बाप के पास भागा जाता है। हम उस को "कलाम इलाही" पर एक धब्बा समझने लगते हैं।

हमारे लिए इस अम्र को समझना मुश्किल मालूम होता है कि किस तरह क़वी मिज़ाज और ग़ज़बनाक मुहिब-ए-वतन, जो ख़ुदा और वतन के लिए ख़ुशी से अपनी जान दे देते। अपनी चारों तरफ़ बेरहमी और ज़ुल्म का दौर दौरा देखकर सख़्त जोश व ग़ज़ब की हालत में इस क़िस्म की इंतिक़ाम व कीना आमेज़ दुआएं लिख गए। जैसी कि हम ज़बूर की किताब में पाते हैं? और इस की वजह ये है कि हमने बाइबल में से इन्सानी अंसर को बिल्कुल नज़रअंदाज- कर दिया है। हम-ख़याल करते हैं, कि ख़ुदा को चाहिए था कि इन आदमीयों में जोश व ग़ज़ब निकाल कर उन्हें महज़ पुतलीयों की तरह बना देता। पेश्तर इस के कि उसने उन्हें अपने हम-जिंसों को ताअलीम देने के लिए मुंतख़ब किया। हम इस तौर से तमाम इन्सानियत और तबई जज़्बात को उनमें से ख़ारिज कर देना चाहते हैं। फिर कहीं उनके इल्हामी होने पर यक़ीन करेंगे। हम चाहते हैं कि ख़ुदा इस क़िस्म की कलूं को इस्तिमाल करता ना ऐसे जोश व तहरीक से भरे हुए आदमीयों को। ख़ैर कुछ ही हो। मगर ख़ुदा ने ऐसा नहीं किया। ख़ुदा ने आदमीयों ही को इस्तिमाल किया। और जिस क़द्र जल्दी हम इस वाक़िये को तस्लीम कर लेंगे। इसी क़द्र सेहत व सफ़ाई के साथ हम बाइबल को पढ़ना और उस का सही मतलब समझना सीख लेंगे।

4. इलाही अंसर की इन्सानी अंसर के साथ आमिज़श

हमें ये ज़रूरी मालूम होता है कि बाइबल में इन्सानी अंसर की मौजूदगी पर खासतौर पर ज़ोर दिया जाये। ये पहलू इस वक़्त तक अक्सर मज़्हबी लोग फ़रामोश करते रहे हैं। और यही ग़फ़लत एक बड़ी हद तक मौजूदा बेचैनी के लिए जवाबदेह है। मगर दूसरी जानिब गुज़श्ता सदी के मुतालआ बाइबल से ये अम्र भी ज़्यादा ज़्यादा वाज़ेह होता रहा है कि ये इन्सानी अंसर बाइबल में लोगों के ख़याल की निस्बत कहीं ज़्यादा पाया जाता रहा है। और इस के मुसन्निफ़ों को अपने क़वा (क़ुव्वत) के इस्तिमाल में बहुत ज़्यादा आज़ादी रही है। इसलिए ये ज़रूरी मालूम होता है कि बाइबल की सही मार्फ़त के लिए इस पहलू को भी हमारी नज़रों के सामने खासतौर पर वक़अत (हैसियत) दी जाये।

इलावा बरीं चूँकि हमारे ज़माने में इल्हाम व मुकाशफ़ा के इन्सानी पहलू पर बहुत ही ज़ोर दिया जा रहा है। इसलिए और भी ज़रूरी मालूम होता है, कि हम इलाही पहलू को नज़रअंदाज- ना कर दें। इन्सानी ख़यालात की तारीख़ के मुतालए से हम ये सीखते हैं

कि इस का मीलान (रुझान) हमेशा इस तरफ़ रहता है, कि घड़ी के पन्डो लिम (घड़ी का लटकन) की तरह कभी एक जानिब को दूर तक चले जाएं। कभी उस की मुख़ालिफ़ सिम्त को। और जिस क़द्र एक तरफ़ ज़्यादा जाऐंगे, उसी क़द्र दूसरी सिम्त को और भी ज़्यादा दूर तक जा पहुँचेंगे। इसलिए हमको इस ख़तरे से अपनी हिफ़ाज़त करनी चाहिए। जब कि हम इस अम्र को पूरे तौर पर तस्लीम करते हैं कि ख़ुदा ने हमको ताअलीम देने के लिए इन्सानी वसीले को इस्तिमाल किया है। तो इस के साथ ये भी याद रखें कि वो फ़क़त एक वसीला ही है। और वो जो इस के पीछे और इस के अंदर और इस की तह में है। वो ख़ुदा की रूह की क़ुद्रत है।

हम इलाही और इन्सानी अंसर के दर्मियान एक ख़त फ़ाज़िल (ज़्यादा) नहीं खींच सकते। हम इस के किसी हिस्से की निस्बत नहीं कह सकते कि "ये इन्सानी है" वो इलाही है। बाअज़ हिस्सों में जैसे कि अनाजील में इलाही पहलू ज़्यादा दिखाई देता है। दूसरे हिस्सों में जैसे कि तवारीख़ की किताबों में इन्सानी पहलू ज़्यादा मालूम देता है। वो बतौर एक सोने की कान के है। जिसमें सोना मिट्टी और पत्थर से मिला हुआ पाया जाता है। और अगरचे कहीं सोने की मिक़दार कम है कहीं ज़्यादा। मगर सब का सब सोने की मौजूदगी के सबब दरख़शां (रोशन) मालूम होता है। या यूं कहो कि इस की मिसाल ऐसी है, जैसी सूरज की किरनें रंगीन शीशों वाली खिड़की में से गुज़र रही हों। शुवाएं इन शीशों में से गुज़रने के सबब रंगीन नज़र आयेंगी। हम ऐसी रोशनी किसी और तरह हासिल नहीं कर सकते। बाअज़ हिस्सों में तो ये तवसिल (वसीला) की चीज़ ज़रा मोटी और ना कामिल सी है। बाअज़ हिस्सों में रोशनी अपनी चमक धमक के सबब आँखों को चुन्धाए (रोशनी की ताब ना ला सके) देती है। मगर ये रोशनी इन रंगों से जुदा नहीं की जा सकती। और हर एक शुआ में नूर और रंग मिला-जुला नज़र आता है। मगर इस तोवसिल की मौजूदगी को नज़रअंदाज- कर देना सख़्त हमाक़त (बेवक़ूफ़ी) होगी। क्यों कि इस से ग़लत-फ़हमी और बेचैनी पैदा होती है। और आदमी ख़्वाह-मख़्वाह एक हैरत व ताज्जुब में पढ़ जाता है कि क्यों ख़ालिस रोशनी हमें नहीं मिलती। मगर इस से बढ़कर हमाक़त की ये बात होगी कि हम ख़ुद रोशनी ही को नज़रअंदाज- कर दें और ये समझ बैठें कि ये रंगीन गुम्बद बजा-ए-ख़ुद मुनव्वर है। और ये जिसे हम आस्मानी रोशनी समझे बैठे हैं। ख़ुर्दबीन से ही है। ख़ुदा की रूह के सिवा कोई आला ताअलीम नहीं मिल सकती। और ना-रवा इन्सानी के लिए कोई हक़ीक़ी नूर है। मगर वही "नूर जो दुनिया में आकर हर एक आदमी को रोशनी बख़्शता है।"

5. लिखा हुआ कलाम और कलाम जो ख़ुद मसीह है

बाइबल में इलाही और इन्सानी अंसर के यकजा मौजूद होने की सबसे उम्दा मिसाल ख़ुद हमारा ख़ुदावंद है। जिसमें दो तबीयतें। यानी इलाही और इन्सानी मुजतमा (जमा होना) थीं नहीं। बल्कि उसे महज़ मिसाल से पढ़ कर कहना चाहिए। क्या लिखा हुआ कलाम इलाही और कलाम जो ख़ुद मसीह है। ये दोनों मकाशफ़े ख़ुदा ने इन्सानियत ही के ज़रीये से इन्सान को अता नहीं किए। और क्या यही अम्र एक बड़ी हद तक इस एस मुताबिक़त को साबित नहीं करता? क्या ये लिखा हुआ कलाम उ'सी हस्ती की ना कामिल और इन्सानी तस्वीर नहीं। जो बातिनी माहीयत) असलियत (और फ़ित्रत के लिहाज़ से हमारे इल्म से बाहर है? और क्या बड़े अदब व इज़्ज़त के साथ इस अबदी "कलाम" की निस्बत भी यही बात नहीं कह सकते, जो "इब्तिदा में ख़ुदा के साथ और जो ख़ुद ख़ुदा था?"

इन दोनों में इलाही और इन्सानी अंसर का इत्तिहाद पाया जाता है। उस (मसीह) में इलाही फ़ित्रत कमज़ोर इन्सानियत का बुर्क़ा पहने हुए है। इस (लिखे) हुए कलाम में इलाही रवा ना कामिल इन्सानी ज़हनों और ना कामिल इन्सानी ज़बान के ज़रीये अपने को आश्कारा कर रही है। इस में उलूहियत अपने पर क़ुद्रत मोअजिज़े और ग़ैर मुरई (वो जो देखाई ना दे) आलम के मकाशफ़े जलवागर करती है। और साथ ही अपनी कमज़ोरी और थकान और भूक और दुख के ज़रीये ज़ाहिर हो रही है। इस में इलाही अंसर आला दर्जे की अख़्लाक़ी ताअलीम और नबुव्वत और मुकाशफ़ा में ज़ाहिर होता है। और इन्सानी अंसर जज़्बात और बेसब्री की हरारत और मायूसी और ख़ौफ़ की बुरूदत (सर्दी) में आश्कारा हो रहा है। इस में ख़ुदा के अज़ीमुश्शान कलिमात और रास्त बाज़ी और आने वाले आलम के राज़ रोज़मर्रा की मामूली बातों यानी खाने पीने और रहने सहने के मामूली फ़िक्रात के साथ मिले जुले सुनाई देते थे। इस में नबुव्वत और मुकाशफ़ा और नेकी और शराफ़त के इलाही सबक़ मामूली क़िस्से कहानीयों और कुर्सी नामों और तारीख़ी वाक़ियात के साथ जिनका बाज़ औक़ात आजकल की ज़िंदगी के साथ कुछ भी वास्ता व ताल्लुक़ नज़र नहीं आता मख़लूत (मिला जुला) पाए हैं।

इस (मसीह) में भी हिक्मत ने रफ़्ता-रफ़्ता नश्वो नुमा हासिल किया। अगरचे वो बचपन ही से हमा दान होता। तो वो कामिल इन्सान ना होता। इसी तरह कलाम में भी

हम ऐसा ही नश्वो नुमा। ऐसी ही अख़्लाक़ी और रुहानी ताअलीम में बतद्रीज तरक़्क़ी पाते हैं। जिसमें इलाही राज़ों का मुकाशफ़ा रफ़्ता-रफ़्ता ज़्यादा साफ़ और वाज़ेह होता जाता है। यहां तक कि जैसा कि ख़ुद ख़ुदावंद ने हमें ताअलीम दी है। अहद-ए-अतीक़ के ज़माने की ताअलीम अहद-ए-जदीद की ताअलीम से अदने दर्जे पर है नहीं बल्कि किसी क़िस्म की बे-अदबी के मुजरिम ठहरने के बग़ैर हम इस मुक़ाबले को और भी परे ले जा सकते हैं। इस (मसीह) में इस की ज़मीनी ज़िंदगी के ख़ातिमे तक भी इल्म के लिहाज़ से ख़ास हदूद पाई जाती थीं जो उस की इन्सानियत की वजह थीं। मसलन वो फ़रमाता है कि "उस दिन और उस घड़ी को कोई आदमी नहीं जानता।....बेटा भी नहीं बल्कि बाप" भला अगर ख़ुद इस कलाम का यानी मसीह का। ये हाल था, तो क्या ये कोई ताज्जुब की बात है कि लिखे हुए कलाम में लिखने वाले के इन्सानी जहल व बेइल्मी के निशान पाए जाएं। और वो लोग ऐसी बातों से जिनका आश्कारा होना ख़ुदा ने इन्सानी तहक़ीक़ातों और दर्याफ्तों के ज़रीये से ठहराया था नावाक़िफ़ पाए जाएं?

मगर हम इस मज़्मून पर एक अलेहदा) अलग (बाब में बहस करेंगे। लेकिन हम उम्मीद करते हैं कि नाज़रीन अपने तौर पर इस मुशाबहत और मुताबिक़त पर जो बाइबल और हमारे ख़ुदावंद की ज़ात के दर्मियान है। और जिसका हमने यहां महज़ इशारतन ही ज़िक्र किया है। ख़ूब गौर व फ़िक्र करेंगे हमें यक़ीन है कि इस तौर से बहुत से तअस्सुबात (तास्सुब की जमा, हिमायत) दूर हो जाऐंगे। जिनका दूर होना बाइबल की सही मार्फ़त के लिए निहायत ज़रूरी है। शायद इस अम्र पर ग़ौर करते करते किसी की तवज्जोह इस बात की तरफ़ भी फिर जाये कि किस तरह यहूदी किसी "आने वाले" का इंतिज़ार कर रहे थे। मगर वो एक शख़्स के बड़े जाह व जलाल के साथ आने का इंतिज़ार कर रहे थे। जो ग़लत था। और इसलिए जब एक ग़रीब मसीह ज़ाहिर हुआ। तो उसे बढ़ई का बेटा समझ कर उन्होंने रद्द कर दिया। शायद बाअज़ अपने दिल से ये सवाल भी पूछ बैठें कि "अगर ये ग़लत तसव्वुर उस ज़माने में मसीह को क़ुबूल करने में रुकावट का बाइस ठहरा। तो क्या मुम्किन नहीं कि ऐसा ही ग़लत तसव्वुर हमें बाइबल की क़बूलीयत से रोक रखे? अगर मसीह को ये कहना पड़ा। तो क्या बाइबल भी ज़बान-ए-हाल से नहीं कह सकती कि "मुबारक है वो जो मेरे में ठोकर का मौक़ा ना पाए।"

बाब चहारुम

बाइबल सहू ख़ता से मुबर्रा है

इन्सान के बनाए हुए मसअले क्या दाअवे करते हैं?

मैं इस किताब में बराबर इस अम्र का बयान करता चला आया हूँ कि बहुत सी मुश्किलात जो लोगों को जो बाइबल के मुताल्लिक़ पेश आती हैं। उनकी बिना ज़्यादातर उन के ग़लत ख़यालों पर है। क्यों कि वो उस के मुताल्लिक़ बाअज़ ऐसे दावे कर बैठते हैं। जिनके लिए उन के पास कोई सनद (तस्दीक़-नामा) नहीं। और फिर ये उम्मीद करते हैं कि बाइबल हमारे इन ख़यालात के बरअक्स साबित ना हो। इन सब में से दो ख़याल सबसे बड़े हैं। और बहुत सी बड़ीबड़ी- मुश्किलात इन्हीं से पैदा हुई हैं। इस बाब में हम इनमें से एक पर बहस करेंगे।

पहला ख़याल

ख़ुदा की अख़्लाक़ी और रुहानी सच्चाइयों की ताअलीम के लिए ये ज़रूर है कि वो अपने मुअल्लिमों (मुअल्लिम की जमा) को हर तरह की सहू व ख़ता (ग़लती व ख़ता) से महफ़ूज़ रखे।

या दूसरे लफ़्ज़ों में। अगर बाइबल इल्हामी किताब है, तो वो हर क़िस्म की लग़्ज़िश (डघमाने) से पाक होनी चाहिए। ख़्वाह मज़्हबी उमूर में ख़्वाह ग़ैर-मज़्हबी उमूर में जो इस में बयान हुए हैं। ज़रूर है कि इस के लिखने वाले हर एक तफ़्सीली अम्र में भी ग़लती से महफ़ूज़ हों। इस के तारीख़ या इल्म-उल-अर्ज़ (ज़मीन के बारे इल्म) या इल्म हेइयत के मुताल्लिक़ा बयानात को इल्मी लिहाज़ से बिल्कुल सही मानना चाहिए। और ये नहीं समझना चाहिए कि वो इस ज़माने के मुरवाज्जह व मुसल्लिमा ख़याल हैं।

जिस ज़माने में वो सहीफ़े लिखे गए। लिखने वालों की लाइल्मी या उन नविश्तों की ग़लत-बयानी से जिनसे वो वाक़ियात अख़ज़ (इख़्तियार) किए गए। किसी क़िस्म की ग़लत-बयानी या सहू व ख़ता (ग़लती व ख़ता) के वाक़ेअ होने का इम्कान नहीं है।

इस ख़याल से ख़्वाह-मख़्वाह ये नतीजा निकलता है कि अगर कोई शख़्स ये दिखादे कि उन तीन हज़ार साल के पुराने मुसन्निफ़ों ने कोई एक भी इल्मी या तारीख़ी बयान लिखा है। जिसका ग़लत होना पाईया सबूत को पहुंच गया है। तो हमें बाइबल के इल्हामी होने की निस्बत अपना एतिक़ाद तर्क (छोड़कर) देना चाहिए।

ये दाअवा वाक़ई ख़तरनाक है। मगर बावजूद इस के बहुत से दीनदार लोग सच्चे दिल से इसे माने बैठे हैं। डाक्टर ली साहब ने "इल्हाम" पर एक किताब लिखी है। जो अक्सर लोगों के नज़्दीक मुस्तनद (क़ाबिल-एए-तबार) समझी जाती है। इस में एक फ़िक़्रह लिखा है। जिसका मतलब ये है, कि जुग़राफ़िया या तारीख़ के मुताल्लिक़ तफ़्सीली बातों में और नीज़ इल्म तबईयात के मुताल्लिक़ जो बयानात बाइबल में पाए जाते हैं। वो हर एक किताब के हर एक हिस्से में हर तरह की सहू व खता (ग़लती व ख़ता) से मुबर्रा (पाक) और बिल्कुल सही मानने चाहिऐं। अब मैं हॉज साहब के इस क़ौल को भी नक़्ल करता हूँ :-

> "ख़ुदा मुक़द्दस नविश्तों के लिखने वालों के काम की निगहबानी करता था। और उस की ग़र्ज़ व मक़्सद ये था कि उनकी तहरीर ग़लती से बिल्कुल ख़ाली रहे।"

एक दूसरे साहब लिखते हैं कि :-

> "अगर इल्म तबइयात (चीज़ों की ख़ासियत का इल्म) के मुताल्लिक़ कोई गलतीयां बाइबल में नज़र आएं। तो बाइबल ख़ुदा की जानिब से नहीं हो सकती। मगर हम साबित किए देते हैं कि इस में ऐसी कोई ग़लती नहीं पाई जाती। और अपने मुख़ालिफ़ों से तहद्दी (ललकारना) करते हैं कि वो सारी बाइबल में से कोई ऐसी ग़लती निकाल दें।"

और एक और साहब लिखते हैं, कि :-

> ये मुस्तनद होना और सहू व ख़ता (ग़लती व ख़ता) से मुबर्रा होना सिर्फ मुकाशफ़ा ही से ताल्लुक़ नहीं रखता। बल्कि उन अल्फ़ाज़ से भी जिनमें वो मुकाशफ़ा दिया गया है। पाक नविश्तों में ग़लती का पाया जाना सिर्फ हमारी ताअलीम ही की तर्दीद (रद्द करना) नहीं कर देता। बल्कि बाइबल के दाअवे की भी। और इसलिए उस के इल्हाम की भी जिसने ये दाआवे किए।

लेकिन अगर फ़क़त यही बात ठीक हो कि एक ग़लती के साबित होने से इल्हाम से इन्कार करना लाज़िम ठहरता है। तो हमें हर तरह से इस बात पर ज़ोर देना चाहिए ताकि हमारे अक़ाइद (अक़ीदा की जमा) में फ़र्क़ ना आने पाए। लेकिन अगर ऐसा नहीं है। तो यक़ीनन वो लोग बिला ज़रूरत बाइबल को माअरिज़-ए-ख़तर (ख़तरे में आना) में डाल रहे हैं। और अपने शक्की भाईयों के रास्ते में रुकावटें पैदा कर रहे हैं। और मुल्हिदीन (काफ़िर) को ख़्वाह-मख़्वाह हमले का मौक़ा दे रहे हैं। इसलिए हम सवाल करते हैं। क्या ये बात दुरुस्त है? नहीं बल्कि ये सवाल करेंगे कि क्या इस बात के मानने के लिए कोई सनद (सबूत) भी है।

2. नविश्तों का दाअवा क्या है?

मैं यहां बिशप हिटलर के अल्फ़ाज़ को जिन का आगे भी हवाला दे चुका हूँ। फिर दोहराता हूँ :-

> हम पहले ही से हुक्म नहीं लगा सकते कि किस तरीक़ से और किस तनासुब से हमको इस में बालाई (सतही) फ़ित्रत और रोशनी और हिदायत के पाने की उम्मीद रखनी चाहिए। नविश्तों (पाक कलाम) के इख़्तियार के मुताल्लिक़ फ़क़त यही सवाल होना चाहिए कि आया वो ही हैं। जिसका दाअवा करते हैं। ना ये कि आया ये किताब फ़ुलां क़िस्म की है। या फ़ुलां तौर से शाएअ की गई है। जैसा कि बाअज़ कमज़ोर अक़्ल वाले आदमी ख़याल बांध बैठा करते हैं कि इलाही मुकाशफ़े वाली किताब को ऐसा और ऐसा होना चाहिए। और इसलिए ना तो इस की मुतशाबहात

> (शुब्हा में पड़ना) ना इबारत की ज़ाहिरी गलतीयां। ना इस के लिखने वालों की बाबत क़दीम ज़माने के झगड़े। ना इसी क़िस्म की कोई और बात। ख़्वाह वो मौजूदा सूरत से भी कहीं बढ़कर क्यों ना हो। पाक नविश्तों के इख़्तियार व सनद (सबूत) को ज़ाए कर सकती है। मगर इस सूरत में कि नबियों और रसूलों और हमारे ख़ुदावंद ने ये वाअदा दिया हो कि वो किताब जिसमें इलाही मुकाशफ़ा दर्ज हो। इन इन बातों से महफ़ूज़ व मुबर्रा (पाक) होनी चाहिए।

अब क्या रसूलों और नबियों और हमारे ख़ुदावंद ने कभी ये वाअदा दिया है कि किताब-ए-मुक़द्दस ऐसी बातों से बरी हुई (होनी) चाहिए? क्या बाइबल ने कहीं अपने लिखने वालों की निस्बत ऐसा आलमगीर (तमाम दुनिया का) दाअवा क्या है? क्या किसी बाइबल के सहीफ़े के लिखने वाले ने ये दाअवा किया है। या उस के कलाम से ये मस्तबत (चुना गया) हो सकता है कि उसे ख़ुदा की तरफ़ से ऐसी रहनुमाई हासिल थी कि वो अपनी किताब की छोटी छोटी तफ़्सीली बातों में भी ख़ता व ग़लती के इम्कान (मुम्किन) से महफ़ूत रहेगा। या क्या इनमें से बाअज़ मुसन्निफ़ों ने अपने से पहले मुसन्निफ़ों के हक़ में इस क़िस्म की शहादत (गवाही) दी है? या कोई मुसन्निफ़ इस क़िस्म की तहरीर छोड़ गया है कि उसे ख़ास इल्हाम के ज़रीये ये हुक्म मिला है, कि बाक़ीयों के सहू व ख़ता (ग़लती या ख़ता) से मुबर्रा (पाक) होने पर गवाही दे। यक़ीनन कोई इसी क़िस्म का बयान दिखाया नहीं जा सकता।

लेकिन शायद कोई कहे कि यक़ीनन फ़क़त इल्हाम का होना ही इस अम्र का काफ़ी सबूत है कि बाइबल में ज़रा सा सहू ख़ता होना भी ग़ैर-मुम्किन है। हरगिज़ नहीं। अगर ख़ुदा का मंशा मामूली सेहत व दुरुस्ती वाली तारीख़ों से जैसे कि हमारे आजकल की अंग्रेज़ी या हिन्दुस्तानी तारीखें हैं। ऐसा ही कामिल तौर पर सरअंजाम हो सकता है। तो हमको इस बात के फ़र्ज़ करने का कोई हक़ नहीं कि उसने बाइबल के मुसन्निफ़ों को इस क़द्र रोशनी बख़्शी कि वो ज़रा ज़रा सी तफ़्सीली बातों में भी जिनका किताब की असली ग़र्ज़ से कोई वास्ता नहीं, ग़लती ना खाएं। मसलन अहद-ए-अतीक़ (पुराना अहदनामा) में इल्हामी मुसन्निफ़ (इल्हाम लिखने वाला) हमें इत्तिला देता है कि उनकी तारीख़ का बहुत सा हिस्सा क़दीम गुम-शुदा ज़रीयों से मसलन जद और अद्दू ग़ैब बीन,

और इस्राईल और यहूदाह के दफ़्तरों में से अख़ज़ (निकालना) किया गया है। हमारे पास इन क़दीमी तूमारों के और लोगों की क़ौमी तारीख़ों के ग़लत मानने की कोई वजह नहीं मगर यक़ीनन हमें ये फ़र्ज़ कर लेने का भी हक़ नहीं है कि इनमें से किसी बात में भी मसलन लावियों के शिजरा नसब, या शाह सुलेमान के घोड़ों की तादाद के बयान करने में भी किसी क़िस्म की ग़लती को राह नहीं। और अगर ऐसी ग़लती हुई भी तो ख़ुदा ने एक मोअजिज़े के ज़रीये उसे दुरुस्त कर दिया। अगर बिलफ़र्ज़ ऐसी कामिल सेहत दुरुस्ती उस के असली मुद्दआ (अस्ल मक़्सद) के लिए ज़रूरी ठहरती थी। इस अम्र को हम ज़रा आगे चल कर अच्छी तरह से समझ सकेंगे।

अगर नाज़रीन मेरे उन तमाम दलाईल पर लिहाज़ करते आए हैं, जिनकी बिना पर मैंने लफ़्ज़ी इल्हाम के मसअले को रद्द किया है। तो उन्होंने मालूम कर लिया होगा कि जब तक उसे बराह-ए-रास्त बाइबल से इस अम्र (मुआमला) का सबूत ना मिले। उस का कोई हक़ नहीं कि बाइबल के किसी मुसन्निफ़ के हक़ में सहू ख़ता (ग़लती व खता) से मुबर्रा होने का दावा कर बैठे। अगर वो महज़ बतौर क़लम के या मुँह के होता। जिसे रूह-उल-क़ुद्स ने अपना पैग़ाम पहुंचाने के लिए इस्तिमाल किया तो हम कह सकते थे कि उस की तहरीर ग़लती से ख़ाली होनी चाहिए। लेकिन अगर ये बात सच्च नहीं है कि बाइबल की तारीख़ी किताबों के लिखने वाले बग़ैर इमदाद क़दीमी नविश्तों के लिखने पर क़ादिर (क़ुद्रत वाले) थे। और क़दीमी तारीख़ों के सनेन (सन की जमा) और वाक़ियात इन क़दीमी नविश्तों के देखे, बग़ैर सही तौर पर मालूम कर सकते थे। अगर उन्हें भी हमारे ज़माने के मोअर्रिखों (लिखने वाले) की तरह अम्बिया जमाअतों की तहरीरों और या शर या जंग नामा यहूदाह जैसी क़दीमी किताबों और पुरानी रिवायतों और गांव और शहरों और सरकारी दफ़्तरों से अपने हाफ़िज़ा और अपने हम-अस्रों (हम ज़माना) की शहादतों के ज़रीये से अपनी किताबों का मसालिहा जमा करना पड़ता था। तो इस सूरत में इस क़िस्म का दाअवा करना यक़ीनन हद से बाहर जाना है कि उनकी तारीख़ी या इल्मी मालूमात या बयानात की तमाम तफ़्सीली बातें भी सहू ख़ता (ग़लती व ख़ता) के इम्कान से बरी हैं

और मैं फिर कहे देता हूँ कि इस क़िस्म का दाअवा (मुतालिबा) किताबमुक़द्दस-ए- में कहीं नहीं किया गया। लिखने वाले कभी इस अम्र के दावेदार नहीं हुए कि उनकी तहरीर ग़लती से मुबर्रा (पाक) है। अगर हम उनके हक़ में इस क़िस्म के दाअवा करने

लग जाएं तो यक़ीनन इस में उनका कुछ क़सूर नहीं है। क्यों कि ज़ाहिरन तो ऐसा मालूम होता है कि गोया बाइबल ख़ासकर अहद-ए-अतीक़ हमको इस क़िस्म के दाअवा करने से दूर रखने की कोशिश करता है। क्यों कि इल्हामी तारीख़ नवीस बार-बार ये बताने को अपना क़ताअ कलाम (बात काटना) करते हैं कि उनकी तारीखें बराह-ए-रास्त ख़ुदा की तरफ़ से नहीं हैं। बल्कि उन्होंने अपना मसालिहा (मवाद) क़ौम के दूसरे ग़ैर-इल्हामी नविश्तों से जमा किया है। सलातीन और तवारीख़ की किताबों के मुसन्निफ़ एक ही वाक़िये की मुतवाज़ी (बराबर) तारीखें लिखते हैं। जो तफ़्सीली उमूर में एक दूसरे से हरगिज़ इत्तिफ़ाक़ नहीं करतीं। और बाज़ औक़ात ऐसे इख़्तिलाफ़ात भी पाए जाते हैं। जिन्हें बाहम तत्बीक़ (मुताबिक़ करना) देना इम्कान से बाहर है। मगर वो इसी क़िस्म के इख़्तिलाफ़ात हैं। जैसे कि उम्दा क़ाबिल-एए-तिबार तारीख़ों के बाहमी मुक़ाबले से दर्याफ़्त होते हैं। ऐसे इख़्तिलाफ़ात जिनकी ग़ैर-मौजूदगी इस अम्र की दलील समझी जाएगी कि उन्होंने बाहम सलाह कर के इन तवारीख़ को लिखा है। या एक ने दूसरे को नक़्ल किया है। मगर मुम्किन है कि इन इख़्तिलाफ़ात में भी तत्बीक़ हो सकती। अगर हमें सारे वाक़ियात का इल्म होता। मगर ये भी मुम्किन है कि ना हो सकती। लेकिन जो शख़्स बाइबल की हक़ीक़त से वाक़िफ़ है उसे इस अम्र की कुछ भी परवाह नहीं करनी कि ऐसा मुम्किन है या नहीं। मगर इन इख़्तिलाफ़ात की मौजूदगी उस शख़्स को झुटला रही है। जो बाइबल के इल्हाम को ऐसी छोटी-छोटी तफ़्सीली बातों की सेहत व दुरुस्ती पर मौक़ूफ़ (ठहराया गया) करता है।

3. आम अक़्ल व तमीज़ क्या चाहती है?

तो ख़ुदा ने कहीं भी नहीं कहा कि इल्हाम के लिए हर मज़्मून मर्क़ूमा (लिखा गया) की सेहत व दुरुस्ती एक लाज़िमी अम्र है। मगर तो भी यही दाअवा किया जाता है। और इस क़िस्म के तमाम मसअलों की बुनियाद भी इसी ख़याल पर है, कि "अगर बाइबल में किसी क़िस्म की ग़लती की गुंजाइश हो। ख़्वाह इस बात का ताल्लुक़ अख़्लाक़ी या मज़्हबी उमूर से ना भी हो। तो बाइबल क़ाबिल-एए-तिबार ना ठहरेगी। और इन्सान की रहनुमा (राह दिखाने वाला) बनने के लायक़ ना होगी। अगर वह हर बात में ग़ैर-मतज़लल यानी लग़्ज़िश (डघमगाना) और सहू व ख़ता (ग़लती या व खता) से मुबर्रा नहीं। तो हमको कैसे यक़ीन आए, कि वो उनकी सच्चाइयों की निस्बत भी जो निहायत ही अहम व ज़रूरी हैं, सहू ख़ता से पाक है?"

लेकिन क्या बाइबल पर इस तौर से हुक्म लगाना क़रीन-ए-अक़्ल (वो बात जिसे अक़्ल क़ुबूल करे) बात है? क्या हम दूसरी बातों के इल्म पर इसी तौर से हुक्म लगाया करते हैं? क्या ये ज़रूर है कि एक आदमी हर एक बात में ग़लती से मुबर्रा (पाक) हो। जब कहीं वो किसी एक अम्र में हमारा रहनुमा बनने के लायक़ ठहर सकता है? क्या ये ज़रूर है कि एक तबीब काश्तकारी और कान खोदने और क़ानूनदानी और जहाज़रानी वग़ैरह उलूम में ताक़ (माहिर) हो तब कहीं वो हमारी सेहत व तंदरुस्ती के मुआमलात में राय देने के लायक़ ठहरेगा? क्या हम किसी वाइज़ के अक़ाइद की दुरुस्ती पर शक करने लगते हैं। अगर बिलफ़र्ज़ वो किसी के क़ौल को नक़्ल करते हुए उस के मुसन्निफ़ के नाम में ग़लती कर बैठे?

नहीं बल्कि जब हम ख़ुदा के तरीक़ों पर जिनसे वो हमें मामूली इल्म अता करता है। ग़ौर करते हैं। तो क्या हमको ये अम्र साफ़ नज़र नहीं आता कि उस के मज़्हबी मुअल्लिमों (मुअल्लिम की जमा) के लिए हर अम्र में लग़्ज़िश (डघमाना) से आज़ाद और महफ़ूज़ होना ज़रूरी अम्र नहीं? हम देखते हैं कि उस का मामूली क़ायदा ये है कि वो एक शख़्स को इस क़िस्म के क़वाए (क़ुव्वत) और मुलकात (ख़ूबियां) अता करता है। जिनकी मदद से वो एक ख़ास क़िस्म के उलूम को मुतालआ कर सके। गो कि दूसरे उलूम के लिहाज़ से वो निस्बतन जाहिल रहता है। मसलन शायरी या मुसव्विरी या मौसीक़ी या रियाज़ी में जो मशहूर व माअरूफ़ उलमा व फ़ुज़ला (आलिम फ़ाज़िल) गुज़रे हैं। वो अपने दायरा इल्म से बाहर की बातों से कुछ ऐसे वाक़िफ़ कार नहीं थे। अगर ऐसे उमूर में ख़ुदा का ये आम क़ायदा है। तो क्या इस से ये क़ियास करना (अंदाज़ा) नामुनासिब है, कि मज़्हबी ताअलीम के बारे में भी उसने यही वतीरा (तरीक़ा) इख़्तियार किया होगा।

अलबत्ता ये तो मुम्किन है कि अगर ख़ुदा की मर्ज़ी हो तो वो हर एक इल्हामी शख़्स को आलम के तमाम इसरारों और राज़ों (पोशीदा बातें) के मुताल्लिक़ कामिल (मुकम्मल) तौर पर ग़ैर ख़ाती (ना ख़ताकार) और आलम-ए-कुल कर देता। मगर सवाल ये नहीं है सवाल ये है कि क्या हमारे पास ऐसा यक़ीन करने की वजूहात हैं कि उसने ऐसा किया है? और क्या उस के मक़्सद व मुद्दआ के लिए ये ज़रूरी था कि वो ऐसा करता।

हमें हमेशा ख़ुदा के ग़ैर-मालूम कामों का उस के मालूम कामों की निस्बत व शबाहत (मुताबिक़त) के मुवाफ़िक़ तस्फ़ीया (वाज़ेह) करना चाहिए। और यहां हम देखते हैं कि **"वो हर बात में किफ़ायत (हस्ब-ए-ज़रूरत) का लिहाज़ रखता है। ना कामिलियत का। यानी ये देखता है, कि उस के मुद्दआ के हुसूल के लिए कौन सी बात काफ़ी हो सकती है। ना ये कि वो कामिलियत के ज़हनी तसव्वुर के मुताबिक़ हो।"** अब हम देखेंगे कि आया इस बारे में इसी उसूल पर अमल हुआ है, या नहीं। सबसे पहले हमें इस अम्र को तहक़ीक़ करना चाहिए कि ख़ुदा का मुद्दआ (मक़्सद) हमें बाइबल का देने में क्या था। तब हम इस अम्र का फ़ैसला कर सकेंगे कि आया कामिल तौर पर सहू व ख़ता (ग़लती या ख़ता) से मुबर्रा (पाक) होना इस मुद्दआ (मक़्सद) के हुसूल के लिए ज़रूरीयात से था।

4. पाक नविश्तों का मक़्सद

इस सवाल का जवाब देने को इल्हाम से ख़ुदा की ग़र्ज़ और मुद्दआ (मक़्सद) क्या है। सब लोग आमादा हैं। और इस बारे में इख़्तिलाफ़ राय भी बहुत कम है। लेकिन फिर भी ये निहायत ही अहम सवाल है। क्यों कि इस जवाब को बड़ी एहतियात से बराबर मद्द-ए-नज़र रखने से हम अच्छी तरह देख सकेंगे कि बहुत सी मुतनाज़ाअ फिया (जिसमें झगड़ा हो) बातें जो सारी मौजूदा बेचैनी का बाइस हैं। कैसी ग़ैर-अहम और हल्की हैं।

तो इल्हाम की ग़र्ज़ व मुद्दआ क्या है? क्या इस की ग़र्ज़ ये है, कि हमको इल्म-ए-अर्ज़ या इल्म हेइयत के मसाइल के मुताल्लिक़ साफ़ और बे-ख़ता इल्म हासिल हो जाये। या ये कि वो हमें बताए कि ख़ुदा ने ज़मीन को किस तरह ख़ल्क़ (पैदा) किया। क्या उस का ये मंशा (मर्ज़ी) है कि हम बनी-इस्राईल की तारीख़ के मुताल्लिक़ ग़लती खाने से महफ़ूज़ रहें। या ये कि हमें उस के तमाम बादशाहों के अहद-ए-हुकूमत का सही सही ज़माना बताए और ये कि फ़िलिस्तीन के बाशिंदों की बाहमी ख़ाना जंगों में ठीक ठीक कितने आदमी काम आए?

यक़ीनन इस का मंशा (मर्ज़ी) हरगिज़ इस क़िस्म की बातें बताना नहीं है। ख़ुदा का हरगिज़ ये मक़्सद ना था कि बाइबल में हमारे लिए इल्मी तहक़ीक़ात का एक मबसूत (वसीअ) साईकलोपीडिया या मख़ज़न-उल-उलूम (इल्म का ख़ज़ाना) मुहय्या कर दे जिससे इल्म हासिल करने के लिए मामूली तहक़ीक़ात व जुस्तजू की ज़रूरत ना रहे।

रूह-उल-क़ुद्स जिसने बाइबल का इल्हाम दिया। ख़ूब जानता था कि बनी-इस्राईल के कुर्सी नामे (नसब नामा) और लड़ाईयां और इसी क़िस्म के दीगर उमूर की तफ़्सीली बातें हमारे लिए हिन्दुस्तान या किसी दूसरे मुल्क की तारीख़ से कुछ भी बढ़कर वक़अत (हैसियत) नहीं रखतीं। बाइबल को बराह-ए-रास्त इन बातों से कुछ भी वास्ता नहीं। अलबत्ता ज़िमनी तौर पर इस में उनका ज़िक्र आ जाता है।

मगर इल्हाम का ताल्लुक़ दीगर उमूर से है। जो हमारे लिए निहायत ही ज़रूरी और अहम हैं। वो हमें ख़ुदा की तरफ़ से इसलिए अता हुआ है कि हमारे चाल-चलन का रहनुमा हो। और हमारी तहज़ीब अख़्लाक़ की इमारत की तामीर में मुमिद (मददगार) हो। किसी ने ख़ूब कहा है कि ख़सलत या चाल चलन इन्सानी ज़िंदगी का तीन चौथाई है। और इसी तीन चौथाई हिस्से के साथ इन इल्हामी तहरीरों का ताल्लुक़ व वास्ता है। इसलिए बाइबल का इल्हाम इस अम्र में नहीं कि वो इल्मी या तारीख़ी उमूर के मुताल्लिक़ बे-ख़ता ताअलीम दे। बल्कि ये कि लोगों को बताए कि ख़ुदा की मर्ज़ी क्या है। और इन्सान और ख़ुदा के दर्मियान क्या रिश्ता है। इन्ही में से एक इल्हामी आदमी हम पर बाइबल की अग़राज़ को ज़ाहिर करता है। वो बताता है कि ये सब सहीफ़े ख़ुदा के इल्हाम से लिखे गए हैं। और फ़ाइदेमंद हैं। मगर किस काम के लिए? क्या इसलिए कि ये मूसवी बयानात ख़ल्क़त आलम की निस्बत और इब्रानी क़ौम की तारीखें हमें बताए? इनमें से कोई भी नहीं बल्कि ताअलीम और इल्ज़ाम और इस्लाह और रास्तबाज़ी में तर्बीयत करने के लिए फ़ाइदेमंद हैं।

पाक नविश्ते इन्सान के लिए ख़ुदा की दुरुस्ती किताबें हैं। इनके लिखने वाले बड़े-बड़े मुअल्लिम हैं जो दुनिया की ताअलीम के लिए मुक़र्रर हुए हैं। अगर कोई शख़्स शायरी या मुसव्विरी या संग तराशी (पत्थर तराशना) का फ़न सीखना चाहता है। तो वो बड़े-बड़े उस्तादों और बड़ीबड़ी- क़ौमों और बड़ीबड़ी- किताबों से जो इन फ़नून (फ़न की जमा) में कामिल महारत (माहिर) व दस्तगाह (ताक़त) रखते हैं। वाक़फ़ीयत पैदा करता है। अगर कोई शख़्स अपने को रास्तबाज़ी और ख़ुदा की राहों के लिए तैयार रहना चाहता है। तो उसे उन उस्तादों और क़ौमों और किताबों से वाक़फ़ीयत हासिल करनी चाहिए जो इस मक़्सद के वास्ते मुलहम व मुक़र्रर व तहरीर (बज़रीया इल्हाम) क़ायम होना हुई हैं।

ये तहरीरें बड़े-बड़े अख़्लाक़ी और रुहानी वाक़ियात और फ़राइज़ और अश्ख़ास का और अख़्लाक़ी ज़िम्मेदारीयों और उस ख़ुशी व मसर्रत का जो रज़ाइलाही-ए- के साथ मुवाफ़िक़त पैदा करने से हासिल होती है ज़िक्र करती है। उनका मुद्दआ (मक़्सद) ये है कि इस अबदी इख़्तिलाफ़ को जो रास्ती और ना-रास्ती (से पैदा होती है दिखाए।)

इताअत (ताबेदारी) और ना-फ़र्मानी, ख़ुदग़र्ज़ी और क़ुर्बानी, पाकीज़गी और शहवत परस्ती (अय्याशी) में पाया जाता है। बताएं और ज़हन नशीन कर दें। वो इस अम्र की ताअलीम देती हैं कि ख़ुदा तक़द्दुस और नेकी को चाहता है। वो उन लोगों का जो आज़माईशों से सख़्त जंग करते हैं। मददगार है। बल्कि जब कि आदमी लड़ाई में हार जाये और उस की ज़िंदगी नापाक हो जाये। तो उस वक़्त भी पाकीज़गी को फिर हासिल करने और ख़ुदा की तरफ़ लौटने की राह मौजूद है। बशर्ते के आदमी सर-गर्मी से इस की करे।

5. इस का तरीक़ ताअलीम

इसी क़िस्म की सच्चाइयों के मुकाशफ़े के लिए बाइबल दी गई थी। मगर इन बातों के मुताल्लिक़ कांटे-छांटे और तराशे हुए मसाइल बने बनाए आस्मान से नाज़िल नहीं हुए मसलन ये कि :-

ख़ुदा इन्सानों से हम्दर्दी रखता है।

ख़ुदा नापाकी और दग़ाबाज़ी (धोका बाज़ी) से नफ़रत करता है।

ख़ुदा सच्चे ताइब (तौबा करने वाले) को माफ़ कर देता है।

अगर ऐसा होता तो शायद हम पाक नविश्तों के हर नुक़्ते और हर शोशे में लफ़्ज़ी तौर पर सेहत व दुरुस्ती होने और इस के हर तरह की सहू व ग़लती से मुबर्रा (पाक) होने की उम्मीद कर सकते हैं। मगर नहीं ना सुनहरी उसूलों के ज़रीये ना काटे छांटे अक़ाइद नामों के ज़रीये। बल्कि तवारीख़ और मक़ालात और अशआर और नाटकों के ज़रीये ख़ुदा अपना मुकाशफ़ा अता करता है। यहूदी क़ौम के बुज़ुर्गों के हालात में, उनके बादशाहों के कारनामों में। अम्बिया के जलते हुए अक़्वाल में। और उस शख़्स की गुफ़्तगु

में जो एक गलीली बढ़ई के भेस में अपने इलाही अज़मत व जलाल को छुपा कर जलवागर हुआ। हाँ उस शख़्स की देहाती लोगों के साथ बातचीत में। हाँ उन सब मुतफ़र्रिक़ (मुख़्तलिफ़) बातों में हम उनके ख़यालात को जो वो ख़ुदा की निस्बत रखते थे। और ख़ुदा के इरादों को जो वो इन्सान के साथ रखता है। मालूम करते हैं बाइबल की किताबें और अम्र की तहरीर करती हैं कि किस तरह ख़ुदा बतदरीज (आहिस्ता-आहिस्ता) बनी-इस्राईल की अख़्लाक़ी और रुहानी ताअलीम व तर्बीयत करता रहा। और किस तरह उसने उनके ज़रीये से बाक़ी दुनिया को अपना मुकाशफ़ा अता किया।

मसलन बाइबल में से क़ाज़ीयों की तारीख़ को लो। यहां भी हम बार-बार इसी सबक़ को दोहराया जाते देखते हैं। पहले हम देखते हैं कि किस तरह लोगों ने गुनाह किया और ख़ुदा को भूल गए। फिर उनकी सज़ा का ज़िक्र पढ़ते हैं कि किस तरह वो ख़ुदा के मुक़र्रर किए हुए ज़ालिम के ज़रीये जिसके वसीले उसने अपनी मर्ज़ी को पूरा होने दिया। उन पर वारिद (वाक़्य) हुई। फिर वो बेचारे मुसीबत या फ़तह लोग अपने इस दुख और ग़म की हालत में ताइब (तौबा) हो कर ख़ुदा को जिसे उन्होंने रंजीदा किया था। पुकारते हैं और फ़ील-फ़ौर उनकी इमदाद के लिए एक नजात देने वाला पैदा हो जाता है। लेकिन थोड़े ही अर्से के बाद वो फिर अपनी शरारतों की तरफ़ ऊद (वापिस) कर आते हैं। फिर वही सारी बात दुहराई जाती है। और फिर हम वही चक्कर गुनाह और सज़ा और तौबा और रिहाई का और फिर गुनाह और सज़ा और तौबा और रिहाई को बार-बार घूमता देखते हैं। और इन सारे वाक़ियात में ख़ुदा का हाथ साफ़-साफ़ नज़र आता है।

हम इस किताब के ख़ास सबक़ को फ़ील-फ़ौर (फ़ौरन) मालूम कर लेते हैं। वो हमारी ताअलीम के लिए एक सच्चा बयान है, कि ख़ुदा इन्सान के साथ कैसा सुलूक करता है। ख़ुदा के इल्हाम ने इस मुअर्रिख़ (तारीख़ लिखने वाला) को तारीख़ का सच्चा फ़ल्सफ़ा सिखा दिया है कि ख़ुदा सारी इन्सानी ज़िंदगी के पीछे काम कर रहा है। अगरचे ज़ाहिरन ऐसा मालूम हो रहा है कि गोया सब कुछ महज़ इत्तिफ़ाक़ी तौर पर वाक़ेअ हो रहा है। वो गुनाह से नफ़रत रखता है। और अफ़राद को और अक़्वाम (क़ौम) की जगह को भी उनके गुनाहों के लिए सज़ा देता है। अगरचे बाअज़ वक़्त लोग ये समझ बैठते हैं कि जो चाहें कर सकते हैं। और ये सज़ा महज़ इत्तिफ़ाक़ी तौर पर नहीं। बल्कि ख़ुदा के क़वानीन के अमल से वाक़ेअ होती है। और जब कि गुनेहगार तक्लीफ़ और दुख से तंग आकर और अपने गुनाहों से पशेमान) शर्मिंदा (हो कर ख़ुदा के हुज़ूर में सच्चे दिल से

ताइब होता है। तो वो उस वक़्त अपने को "ख़ुदावंद ख़ुदा, रहीम और मेहरबान, बदी और शरारत और गुनाह को माफ़ करने वाला" भी साबित करता है।

6. ख़ता और ग़लती से किस क़िस्म की बर्रियत की ज़रूरत है।

हम देखते हैं कि बाइबल का मक़्सद ये है कि वो ख़ुदा को और उस रिश्ते को जो वो इन्सान से रखता है। ज़ाहिर कर दे इस में बाअज़ तारीख़ी वाक़ियात को बयान किया गया है। और उनकी तश्रीह की गई है। और हमारे लिए इन वाक़ियात और उनकी तश्रीह की क़द्र व क़ीमत सिर्फ इस अम्र (काम) में है कि इन का इल्म हासिल करने से ख़ुदा की ज़ात और उस की मर्ज़ी उस के ताल्लुक़ात और रिश्ते की जो वो हमारे साथ रखता है मार्फ़त हासिल करें। यही ख़ुदा का सबसे बड़ा मक़्सद इन्सान के लिए है **"हमेशा की ज़िंदगी ये है कि वो तुझे अकेले सच्चे ख़ुदा को और येसू मसीह को जिसे तू ने भेजा है पहचानें।"**

तो इल्हामी नविश्तों में बड़ी अहम बात ये है कि वो इस मुआमले में जिसमें हम उनकी ताअलीम के हाजतमंद (ज़रूरतमंद) हैं। मुस्तनद मुअल्लिम ठहरें। यानी हमें बताएं कि ख़ुदा और इन्सान के दर्मियान क्या रिश्ता है। और ख़ुदा इंसान से क्या सुलूक करता रहा है? इस ग़र्ज़ के लिए ये ज़रूरी है कि तारीख़ क़ाबिल-एए-तिबार तारीख़ हो। और वाक़ियात का तज़्किरा काफ़ी तौर सही व दुरुस्त हो। और वो इन उमूर की ताअलीम देने के वास्ते जो अपने हुस्न-ए-सुलूक के मुताल्लिक़ ख़ुदा हमें बताना चाहता है, काफ़ी हों मगर इस अम्र (काम) के लिए क्या ये ज़रूरी अम्र है कि अफ़्वाज की तादाद को बड़ी सेहत से बयान करे या जहां कहीं इल्म हेइयत या इल्म-उल-अर्ज़ के मुताल्लिक़ किसी अम्र की तरफ़ इशारतन ज़िक्र हुआ हो। वो भी उसूल इल्म के मुताबिक़ सही हो? क्या ये अम्र दीनी ताअलीम के लिए ख़ौफ़नाक होगा। अगर बाइबल के किसी सहीफ़े का लिखने वाला अपने ज़माने के निहायत दाना और अक़्लमंद अश्ख़ास के साथ ये यक़ीन रखता था कि सूरज ज़मीन के गिर्दागिर्द घूमता है। या अगर उसने दो मुतज़ाद बयानात (फ़र्क़ बयानात) में से कि [13]अरूना की खुलियां के लिए क्या क़ीमत अदा की गई थी। एक

[13] देखो 2 समूएल 24:24 और तवारीख़ 21:25

बयान को लेकर अपनी किताब में दर्ज कर दिया। हम इस शख़्स के हक़ में क्या कहेंगे। जो किसी मुल्क की तारीख़ की बाबत इस क़िस्म के ख़याल रखे। मसलन ये कहे कि तारीख़ इंग्लिस्तान से जो सबक़ हासिल होते हैं। वो इस अम्र (काम) के सबब बिल्कुल नाक़िस ठहरते हैं कि जंग क्रेसी के मुख़्तलिफ़ बयानात अफ़्वाज की सफ़ बंदी के मुताल्लिक़ एक दूसरे से बिल्कुल मेल नहीं खाते। या ये कि क़ुरून वसती का एक मुअर्रिख़ सहरो अफ़्सून और चुड़ेलों और डाईयनों की हस्ती का मुअतक़िद) अक़ीदतमंद ((एतिक़ाद रखने वाला) था?

हमें अपनी बाइबलों को ऐसे ही अक़्ल व होश से मुतालआ करना चाहिए। जैसे दूसरी तारीख़ों को हमें ये देखना चाहिए कि ख़ुदा के मक़्सद के लिए ये ज़रूरी ना था कि हर एक इल्हामी आदमी हर एक अम्र में सहू (ग़लती) व ख़ता से बरी हो। अगर बिल-फ़र्ज़ कोई आस्मानी आवाज़ कल को हमें बता भी दे कि उनके इल्मी और तारीख़ी मसाइल का हर एक नुक़्ता और शोशा बिल्कुल सही व दुरुस्त है। तो इस से इल्हामी किताबों की क़द्रो-क़ीमत एक ज़र्रा भर भी ज़्यादा नहीं हो जाएगी।

7. क्या बाइबल सहू व ख़ता (गलती) से मुबर्रा है?

तो इस सवाल का कि क्या बाइबल सहू व खता (ग़लती व खता) से मुबर्रा (पाक) है। हमारा ये जवाब है, हाँ बाइबल सहू ख़ता से मुबर्रा है। मगर इस अम्र (काम, फ़ेअल) में कि वो ख़ुदा को हम पर ज़ाहिर करती है। और हमें वो इस अम्र में सहू ख़ता से मुबर्रा है कि वो लोगों को मसीह की तरफ़ बख़्शती है। और आला और रुहानी ज़िंदगी की तरफ़ उनकी रहनुमाई करती है। वो अपने इस ख़ास पैग़ाम के लिहाज़ से। और इस वजह से जो कुछ होने का और जो कुछ करने का दाअवा (मुतालिबा) करती है। सहू ख़ता से मुबर्रा (पाक) है। **वो तमाम बातें जो वो ख़ुदा और मसीह और सच्चाई और रास्तबाज़ी अख़्लाक़ी मुहब्बत और ख़ुदा के ख़ौफ़ व मुहब्बत में ज़िंदगी बसर करने की दानाई के मुताल्लिक़ सिखाती है। उनसे कामिल (मुकम्मल) तौर पर क़ाबिल-एए-तिबार होना साबित हो चुका है। और ऐसे ही क़ाबिल-एए-तिबार उस की वो ताअलीमात हैं जो वो ऐसे उमूर (कामों, अम्र की जमा) के मुताल्लिक़ देती है, कि इन्सानी ज़िंदगी कहाँ गुमराही में पड़ती है। चाल चलन के लिए सब उमूर में सीधा रास्ता कौन सा है। रास्त-बाज़ाना**

ज़िंदगी हासिल करने का क्या तरीक़ है। और किस तरह इन्सानी ज़िंदगी ख़ुदा के नमूने और शबाहत में कामिलियत को पहुंच सकती है।□ (टॉमस साहब)

इन उमूर में बाइबल हर तरह की सहू व ख़ता से मुबर्रा है। और हमको याद रहे कि यही बेख़ताई (बेगुनाही) है। जिसकी इस से उम्मीद रखनी चाहिए। और अम्र कि आया वो इल्मी या तारीख़ी मसाइल के बारे में भी ऐसी ही बे-ख़ता है? ये एक ऐसा सवाल है जिससे हमारा बहुत कम वास्ता है। ये बात महज़ इंशा-ए-परदाज़ी (मज़मून निगारी) से ताल्लुक़ रखती है। और इसलिए इस पर आज़ादगी के साथ बहस व मुबाहसा करने में कुछ हर्ज नहीं।

8. बाइबल के सहू ख़ता से पाक होने के मुताल्लिक़ आम तसव्वुरात की ख़तरनाक हालत

अब एक क़दम आगे बढ़ो, पाक नविश्तों के हर एक तरह के तफ़्सीली उमूर में कामिल तौर पर बे-ख़ता (बेगुनाह) होने पर इसरार करना। फ़क़त एक ग़ैर-ज़रूरी और बे सनद बात ही नहीं है। बल्कि इस का मानना इल्हाम के अक़ीदे को सख़्त माअरिज़-ए-ख़तर (खतरे) में डालता है। भला बताओ तो फ़्रांस के मशहूर मुसन्निफ़ और फ़सीहुल-बयान (ख़ुश-बयान) रेनान को किसी चीज़ ने मुल्हिद (काफ़िर) बना दिया? यही बात कि इल्हाम का अक़ीदा सहू (ग़लती) व ख़ता से बरीयत के अक़ीदे के साथ जकड़ा हुआ था। चार्ल्स बरेडला को किस चीज़ ने बाइबल का दुश्मन बना दिया? ये कि पादरी जिसने उसे मुस्तक़ीम (दुरुस्त) होने के लिए तैयार किया। उसने इस ज़ी फ़हम (अक़्लमंद) लड़के के सवालात को जो वो इल्हाम के मसअले पर करता था। अपनी तंग ख़याली की वजह से ज़जर व तोबीख़ (झड़की, मलामत) के साथ रद्द कर दिया। और उनका कुछ तसल्ली बख़्श जवाब ना दिया। नाज़रीन आप भी कई लोगों से वाक़िफ़ होंगे। जिनका ईमान इसी क़िस्म की ताअलीमात के सबब से ज़ाइल (ज़ाए) हो गया है। चंद माह हुए ख़ुद मेरे ज़ाती तजुर्बे में भी ये अम्र (काम) आया। और मैंने देखा कि मेरे एक बड़े गाढ़े दोस्त के ईमान पर इसी क़िस्म की ग़लत ताअलीम ने पानी फेर दिया।

यक़ीन जानो वो लोग बाइबल के नादान दोस्त हैं। जो इल्हाम को इस क़िस्म के सवालात के साथ वाबस्ता कर रहे हैं। जब मज़्हबी मुअल्लिमों की जमाअत में ऐसे

अश्ख़ास मौजूद हों। जो ये कहें कि एक ज़रा सी ग़लती के साबित होने से बाइबल का इल्हामी होना मर्दूद (रद्द किया हुआ) ठहरेगा। जब कि लफ़्ज़ों के साफ़-साफ़ माअनों को खींच-तान कर ज़रा-ज़रा से इख़्तिलाफ़ात को तत्बीक़ (मुताबिक़ करना) देने की कोशिश की जाती है। या उस के इल्मी उमूर की मुताल्लिक़ा बातों को ज़माना-ए-हाल की तहक़ीक़ातों और दर्याफ्तों से मिलाया जाता है। तो इस से बाइबल को कुछ नफ़ा नहीं हासिल होता। बल्कि उल्टा उस की जान अज़ाब में फंसती है। ऐसी किताबों को पढ़ कर तो ख़्वाह-मख़्वाह ये ख़याल पैदा होगा कि गोया हमारी नजात का मदारा इस्राईलियों की अदना इल्मी वाक़फ़ीयत की सेहत पर मौक़ूफ़ है। या ये कि हमारा मज़्हब माअरिज़-ए-ख़तर में है। अगर हम क़ाबिले इत्मीनान तौर पर ये साबित कर ना सकें कि बनी-इस्राईल के पहलौटों की तादाद ठीक (22273) थी। जब तक लोग इल्हाम के मुताल्लिक़ इस क़िस्म के झूटे ख़यालों को छोड़ नहीं देंगे। जब तक वो ये नहीं सीखेंगे कि रास्तबाज़ी के अबदी शरीअत की निस्बत ख़ुदा का ऐलान इन बातों से बिल्कुल आज़ाद है। तब तक बाइबल की हक़ीक़त ठीक तौर पर समझ नहीं आएगी। और ना दुश्मनों के बेहूदा हमलों से चेन मिलेगा।

हम इस क़िस्म के तसव्वुरात के हरगिज़ पाबंद ना हों। हम सच्चाई के तालिब हों और सच्चाई हमें आज़ाद कर देगी। इस से हमारे ईमान को तक़वियत (बढ़ोती) मिलेगी। और मुम्किन है कि हमारे सिवा और भी बहुत से लोग इस से फ़ायदा उठाएं। क्या ऐसी उम्मीद रखना बेजा (फ़ुज़ूल) है कि अगर हम अपने बेसनद (बग़ैर तस्दीक़) मसाइल को रद्द कर दें। तो बाइबल की मुख़ालिफ़त और अदावत (दुश्मनी) का बहुत बड़ा हिस्सा रफ़्ता-रफ़्ता ज़ाइल (ज़ाए) हो जाएगा। लोग ख़्वाह-मख़्वाह ये नहीं चाहते कि वो मुल्हिद (काफ़िर) या दहरिया (ख़ुदा का मुन्किर) बन जाएं ये हम ही हैं जिन्हों ने अपने अहमक़ाना (बेवकूफ़ाना) ख़यालात से बेईमानी पर मज्बूर कर दिया है। जब उन्हें ये यक़ीन हो जाएगा कि ईसाई होना ना माक़ूल या मुतअस्सिब (बेजा हिमायत) करने वाला बनना नहीं है। और कलीसिया जो तिजारत में दग़ा व फ़रेब की मुमानिअत (मना करना) करती है। वो शहादतों और तहक़ीक़ातों में भी ऐसा करने को वैसा ही मअयूब (बुरा) समझती है। जब वो देखेंगे कि हम फ़क़त सच्चाई ही की तलब और जुस्तजू में हैं। और सच्चाई की तहक़ीक़ात में हम बिल्कुल बे-ख़ौफ़ और हर क़िस्म के तास्सुब (हिमायत) से आज़ाद हैं। तो यक़ीनन बहुत से लोग जिनकी बे एतिक़ादी नेक नीयती और सिदक़ दिली पर मौक़ूफ़ (ठहराना) है। ऐसी रुकावटों से छूट कर मज़्हब की तरफ़ रुजू लाएँगे।

9. एक एहतियात

मगर आख़िर में हमें चंद अल्फ़ाज़ बतौर एहतियात के कहने ज़रूरी हैं। चूँकि हमने पाक नविश्तों की इल्मी और तारीख़ी ग़लतीयों के इम्कान पर इस क़द्र ज़ोर से बहस की है। शायद इस से नाज़रीन के दिल में ये ख़याल पैदा हो जाये कि शायद ये अम्र निहायत अहम है। मगर उन्हें मुफ़स्सिला (तफ़्सील) ज़ेल चंद बातें याद रखनी चाहियें कि :-

1. सिर्फ चंद ही सूरतें हैं। और वो भी निहायत ख़फ़ीफ़ (मामूली) हैं। जिनकी बाबत सेहत व दुरुस्ती का सवाल उठाया गया है।

2. और उनमें से भी बाअज़ तो महज़ नाक़लों (नक़्ल करने वाले) की गलतीयां हैं ना अस्ल नविश्तों की।

3. और इस के साथ ही इस अम्र का भी ख़याल रखना चाहिए कि वाक़ियात के बाक़ी हिस्सों से जो तहरीर नहीं की गई। और जो तक्मील के लिए ज़रूरी हैं। हम नावाक़िफ़ हैं। और नीज़ ये भी कि जब एक ही वाक़िये के कोई एक सही बयान बड़े इख़्तिसार (ख़ुलासा) के साथ यकजा जमा किए जाते हैं। तो नाज़िर के दिल में ग़लती या इख़्तिलाफ़ का ख़याल पैदा होना मुम्किन है। हालाँकि दरअस्ल ऐसा नहीं होता दीगर तवारीख़ से इस क़िस्म की मिसालें लेकर उन पर ग़ौर करना फ़ायदे से ख़ाली ना होगा।

इसलिए जब कि हम बाइबल के इल्मी और तारीख़ी मसाइल के कामिल तौर पर सहू व ख़ता (ग़लती व खता) से मुबर्रा (पाक) होने पर इसरार नहीं करना चाहिए। इस के साथ ये भी याद रखना चाहिए कि ये अम्र कोई बहुत बड़ी वक़अत (इज़्ज़त) और एहमीय्यत के क़ाबिल नहीं है। साथ ही येह भी कहे देता हूँ कि ऐसे छोटे-छोटे नुक़्सों का जो इन मिट्टी के बर्तनों में जिनमें ख़ुदा के खज़ाने भरे हैं। पाए जाते हैं। बहुत कुछ लिहाज़ करना बिल्कुल फ़ुज़ूल है। अलबत्ता अगर बेचैन दिलों की तसल्ली के लिए हो तो कुछ मज़ाइक़ा (हर्ज) नहीं। ख़ुदा के वसीअ और पुर समर (फलदार) हरे भरे मुर्ग़-ज़ार (सब्ज़ा ज़ार) में इस क़िस्म की मुश्किलात और इख़्तिलाफ़ात को छुपाए रहना ग़ैर-ज़रूरी है। अगर हम रुहानी ख़ुराक के लिए बाइबल को मुतालआ नहीं करते। तो इस क़िस्म के दूसरे मुतालओं से किसी क़िस्म का फ़ायदा और क़ुव्वत हासिल नहीं होगी। जैसा कि फिलर साहब लिखते हैं, कि :-

"अगर लोग कलाम-उल्लाह की सादा ख़ुराक को नहीं खाएँगे। तो अगर उस की हड्डियां उनका गला घोंट दें। तो उनके लिए गिले व शिकवे का (एतराज़) मुक़ाम नहीं।"

बाब पंजुम

ख़ुदा की ताअलीम की बतद्रीज तरक़्क़ी

1. अहद-ए-अतीक़ की अख़्लाक़ी मुश्किलात

इस से पहले बाब में मैंने दो आम ख़यालों का ज़िक्र किया है। जो सब बातों से बढ़कर लोगों के दिलों में शक व शुब्हा पैदा करने और ज़्यादा टार इस तमाम बेचैनी का बाइस हैं। इनमें से पहला जिसका हम पहले ही ज़िक्र कर चुके हैं। ज़्यादातर बाइबल के मुताल्लिक़ ज़हनी मुश्किलात पैदा करता है। मगर अब हम इस दूसरे ख़याल पर बहस करते हैं।

दूसरा ख़याल

इल्हाम के लिए ये शर्त है कि अख़्लाक़ी और रुहानी सच्चाइयों के मुताल्लिक़ ख़ुदा की ताअलीम जो उस के ज़रीये से दी जाती है। वो अदना और ना कामिल सूरतों से तरक़्क़ी कर के आला सूरतों तक ना पहुंचे। बल्कि इब्तिदा ही से इसे अपनी सारी कमालियत (महारत) के साथ जलवागर (ज़ाहिर) होना चाहिए।

ये ख़याल दोनों ख़यालों में से ज़्यादा ख़तरनाक है। बहुत से अश्ख़ास के नज़्दीक पाक नविश्तों के मुताल्लिक़ ज़हनी मुश्किलात कुछ बहुत वज़न नहीं रखतीं। आम अक़्ल-ए-इंसानी की मदद से वो बहुत जल्द देख लेते हैं कि ख़ुदा के लिए ये ज़रूरी ना था कि इल्हामी नवीस निदा को इन्शाई (इबारत आराई) और इल्मी उमूर में सहू ख़ता (ग़लती व ख़ता) से मुबर्रा (पाक) कर देता कि वो लोगों को हुस्ने तक़द्दुस की ताअलीम देने के क़ाबिल हो। मगर जो मुश्किलात दर-हक़ीक़त ख़ौफ़नाक हैं। वो इस अम्र (काम) से पैदा होती हैं कि अहद-ए-अतीक़ (पुराना अहदनामा) के बाअज़ अक़्वाल मुनव्वर शूदा मसीही ज़मीर व आगाही के मुवाज़ना में बहुत अदना तरक़्क़ी हैं। इस से ये सवाल पैदा होता है कि किस तरह मुम्किन है कि इस क़िस्म की बातें भी रूह-उल-क़ुद्स के इल्हाम से लिखी गई हों?

मसलन हम इब्तिदाई ज़माने में ख़ुदा की निस्बत बहुत ही अदना (नीचा) और बे ढंगे ख़याल पाते हैं। गोया कि वो महज़ एक क़ौमी देवता था। जिसे फ़क़त इस्राईल ही की हिफ़ाज़त व बहबूदी मक़्सूद (इरादा किया गया) थी। और दूसरी अक़्वाम की तरफ़ से अदावत (दुश्मनी) नहीं तो बेपर्वाई तो ज़रूर करता था। हम देखते हैं कि बाइबल में ग़ुलामी, और कस्रत इज़्दवाजी (एक से ज़्यादा शादियां) की इजाज़त दी गई है। और आदमी फ़क़त एक तलाक़ नामा लिख कर अपनी जोरू (बीवी) को अलग कर सकता था। हम नफ़रत भरे दिल के साथ इस दग़ा बाज़ी (धोका देना) का ज़िक्र भी पढ़ते हैं। जिसे दबूरा नबिया ने बड़ी ख़ुशी से सुना। और उस पर ऐसे बरकत के कलिमे फ़रमाए जैसे मुक़द्दस कुँवारी के हक़ में कहे गए कि :-

□हरकीनी की बीवी सब औरतों से मुबारक ठहरेगी।□ (क़ुज़ात 5:24)

बाअज़ निहायत ही हम्द व सताइश से मामूर ज़बूरों में हम बाअज़ वक़्त ऐसी दुआओं को सुनकर हैरान रह जाते हैं। जिनमें ख़ुदा से दुआ व इल्तिजा (फ़र्याद) की जाती है कि गुनेहगारों पर या इस से भी बढ़कर ज़बूर नवीस (ज़बूर लिखने वाला) के दुश्मनों पर अपना ग़ज़ब और अज़ाब नाज़िल करे। हम नहीं ख़याल कर सकते कि येसू मसीह इस क़िस्म की आरज़ुओं (मिन्नत इल्तिजा) को पसंद करता। बल्कि हम महसूस करते हैं कि ख़ुद हमारे दिल भी इस अम्र को गवारा करते नज़र नहीं आते।

2. ताअलीम एक माक़ूल तरीक़ा

ये तो सच्च है कि इस क़िस्म की मुश्किलात बाइबल की अख़्लाक़ी ताअलीम के ख़ूबसूरत चेहरे पर बतौर बे मालूम धब्बों के हैं। लेकिन अगर हम सच्चे दिल से मसअला इल्हाम की हक़ीक़त तक पहुंचने की कोशिश कर रहे हैं। तो इस क़िस्म की मुश्किलात से हरगिज़ पहलूतिही (किनारा-कशी) नहीं करनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि बाअज़ अस्हाब (दोस्त) जिनके दिल में पाक नविश्तों के अदब व इज़्ज़त में अक़्ल व दानिश को बहुत दख़ल नहीं है। इस क़िस्म के वाक़ियात की अख़्लाक़ी हैसियत पर बहस करना गुनाह समझते हैं। और कहते हैं कि □तुम कौन हो कि अपने ज़मीर को बाइबल की बातों पर हुक्म लगाने के लिए जज मुक़र्रर करो।□ कोलर्ज साहब अपने इक़रारात में एक आलिम

ख़ादिम उद्दीन का ज़िक्र करते हैं। कि जब उस के सामने याऐल के फ़ेअल के क़ाबिल-ए-तारीफ़ होने पर एतराज़ किया गया। तो ये कह कर बहस का ख़ातिमा कर दिया कि :-

> "मैं तो बाइबल से बेहतर कोई अख़्लाक़ी ताअलीम नहीं चाहता और किसी चीज़ के क़ाबिल-ए-तारीफ़ होने का सबूत इस से बढ़कर और क्या हो सकता है कि बाइबल ने उसे तारीफ़ के क़ाबिल बयान किया है।"

ऐसे अस्हाब बाइबल के लिए निहायत बड़े ख़तरे और मुश्किलात पैदा करते हैं। मुझे ख़ौफ़ है कि इस वक़्त भी ऐसे कई शख़्स मौजूद होंगे। और इसलिए मैं यहां इस अम्र पर बड़े इसरार (ताकीद) के साथ ज़ोर देता हूँ कि जब तुम बाइबल का मुतालआ करो तो बिला ख़ौफ़ व अंदेशा किसी आयत के ऐसे माअनों को जो आलमगीर मसीही ज़मीर के ख़िलाफ़[14] हैं रद्द करते जाओ। ख़ुदा ही ने तुम्हें ज़मीर भी दिया है। और बाइबल भी ज़मीर ही के ज़रीये से रूह इलाही रूह इन्सानी के साथ गुफ़्तगु करता है। और इसलिए किसी फ़िक्रह का मज़्मून जो इन्सान के हक़ और रास्ती के सब से आला मिक़्यास (आला पैमाना) के ख़िलाफ़ हो। इस को हमेशा बे-एतिबारी और शुब्हा (शक) की नज़र से देखना चाहिए।

ये ख़याल करते हुए अफ़्सोस मालूम होता है कि इस बीसवीं सदी के शुरू में इस क़िस्म के अलफ़ाज़ लिखने की हाजत (ज़रूरत) पड़ी। मगर हम इस अम्र (काम) से अपनी आँखें हरगिज़ बंद नहीं कर सकते कि इस क़िस्म के अलफ़ाज़ की हाजत (ज़रूरत) है। और कि आगे ही मज़्हब के मुक़द्दमे का कलाम-उल्लाह की शरह व तफ़्सीर में इस ख़ुदा दाद ज़मीर के ना इस्तिमाल करने के सबब बहुत ही ज़रर व नुक़्सान पहुंच चूका है।

---

14 ये याद रहे कि मैंने ये नहीं कहा। कि जो कुछ मेरे या तुम्हारे ज़मीर के फ़र्दा फिर दिन मुख़ालिफ़ हो। क्यों कि हो सकता है, कि मेरा या तुम्हारा ज़मीर किसी अम्र में ख़राब या ग़लती पर हो। मगर ताअलीम-याफ़्ता मसीहियों के मजमूई ज़मीर की निस्बत हम कह सकते हैं कि, ज़बान-ए-ख़ल्क़ को नक़्क़ारा ख़ुदा समझो।

अक्सर औक़ात ये कहा जाता है कि हमें हक़ व बातिल के महज़ इन्सानी ख़यालात की बिना पर इस क़द्र हौसला नहीं करना चाहिए। और अगर हमको ये कहा जाये। जैसा कि अक्सर कहा गया है कि पाक नविश्तों का फ़ुलां मसअला इन्सान के आला ख़यालात व हसात से जो वो दुरुस्ती और मुनासबत और फ़य्याज़ी की निस्बत रखता है। मुख़ालिफ़ नज़र आता है। तो भी हमें अपनी इस अख़्लाक़ी नफ़रत का ज़रा भर भी ख़याल नहीं करना चाहिए। क्यों कि सच्चा और बच्चों के जैसा ईमान हर एक बात को बिला ताअम्मुल (बग़ैर सोचे समझे) क़ुबूल करने पर आमादा होगा।

मगर यक़ीन जानो कि सच्चा बच्चों के जैसा ईमान हरगिज़ ऐसा नहीं करेगा। और ये एक निहायत ही मअयूब) एब वाला (अम्र है। और इस से सच्चे मज़्हब की बुनियादों को ज़रर (नुक़्सान) पहुंचता है। जब कि ईमान का इस तौर से ज़िक्र किया जाता है। ख़ुदा पर ईमान लाना एक शख़्स पर ईमान लाना है। एक साहिबे ख़सलत (मिज़ाज) शख़्स पर जो लामहदूद अदद और मुहब्बत और तक़द्दुस और शराफ़त और फ़य्याज़ी की सिफ़ात से मौसूफ़ (जिसकी तारीफ़ की जाए) है। वो ऐसा ख़ुदा है जो अगर ऐसा कहना बे-अदबी में दाख़िल ना हो। अपनी उलूहियत से क़त-ए-तअल्लुक़ करना बेहतर समझेगा। बजाए इस के कि किसी आदमी के साथ नामुनासिब सुलूक करे। या बेमुरव्वती या बेमहरी से पेश आए। यही ईमान है, जिसके लिए बाइबल का मुतालआ करते वक़्त तुम्हें दुआ करनी मांगनी चाहिए। तुम्हें पुर मुहब्बत, वफ़ादार, और बाएतिमाद बच्चे की तरह होना चाहिए। जो हमेशा अपने बाप का बावफ़ा फ़र्ज़न्द बना रहता है। और उस की ख़सलत व इज़्ज़त के लिए ग़ैरत मंद होता है। और अगर कोई शख़्स ऐसी बात कहे जो उस की शान के शायां ना हो तो उस पर कभी यक़ीन नहीं करता। ख़्वाह वो लोग ये भी क्यों ना कहा करें कि ऐसी बातें ख़ुद इस बाप की तहरीरी कलाम में लिखी हुई हैं।

अगर मेरे नाज़रीन में से कोई शख़्स अपने दिल में ये ठान बैठा है कि ज़मीर को बाइबल की अख़्लाक़ी ताअलीम पर हुक्म लगाने का कोई हक़ हासिल नहीं है। तो उसे इस किताब को आगे नहीं पढ़ना चाहिए। लेकिन अगर ऐसा नहीं तो मैं जहां तक हो सकेगा। इस की इमदाद के लिए हाज़िर हूँ। उस के लिए मेरी ये तज्वीज़ है कि बिल-फ़अल उसे इन मुश्किलात से अलग हटा ले जाऊंगा। और इस फ़स्ल के ख़ातिमे पर फिर

उसे इनकी तरफ़ मुतवज्जोह करूँगा। इस वक़्त मैं इसे उनके फ़ैसला के बेहतर तौर पर लायक़ बनाने की कोशिश करूँगा।

मैं ये अम्र जता देना चाहता हूँ कि इन मुश्किलात के पैदा होने का ये बाइस है कि लोग बहस ग़लत मुक़द्दमात से शुरू करते हैं। वो कहते हैं, कि "अगर ख़ुदा और रूह-उल-क़ुद्स अहद-ए-अतीक़ (पुराना अहदनामा) की ताअलीम देने वाला था। तो ज़रूर है कि हर ज़माने में वो एक ही क़िस्म के आली पाया (अज़ीम) और शरीफ़ फ़राइज़ व अहकाम की ताअलीम दे किसी क़िस्म की ना कामिलियत या नघड़पन, या अदना (नीचा) अख़्लाक़ी ताअलीम किसी ज़माने में भी ऐसी ताअलीम के जो ख़ुदा के तरफ़ से होने के दाअवेदार है, शायान-ए-शान नहीं है।" मगर इस दाअवे को हरगिज़ क़ुबूल करने को तैयार नहीं हूँ। बल्कि मैं कहता हूँ कि तुम्हें इस क़िस्म का दाअवा (मुतालिबा) करने का कोई हक़ हासिल नहीं है। मैं तुम्हारे ही तरीक़ से जो तुम अपने बच्चों की ताअलीम के लिए इस्तिमाल करते हो। तुम्हें ये दिखाऊँगा कि जिस बात की तुम बाइबल से उम्मीद करते हो। वो बिल्कुल खिलाफ-ए-अक़्ल और खिलाफ-ए-फ़ित्रत है। बल्कि तुम्हें इस में से इसी क़िस्म का उम्मीदवार होना चाहिए। जिसका इस में पाया जाना मुम्किन है। यानी अदना और सहल (आसान) ताअलीम व रफ़्ता-रफ़्ता और क़दम ब क़दम तरक़्क़ी करती जाती है। और जो आख़िरकार येसू मसीह की ताअलीम में अपने कमाल को है।

3. पहली मिसाल

हम अपने तमाम तालीमी उमूर में बिला ताम्मुल इस क़ानून को कि हर एक चीज़ बतद्रीज व ब-तर्तीब (आहिस्ता-आहिस्ता) तर्तीब से नश्वो नुमा पाती है। तस्लीम कर लेते हैं कि हमें निहायत ही अदना (छोटी) और इब्तिदाई बातों से शुरू करना चाहिए। और कि शुरू में निहायत ही मोटे-मोटे और ना-मुकम्मल ख़यालों पर इक्तिफ़ा (काफ़ी समझना) करनी ज़रूर है। बल्कि अम्र वाक़ई तो ये है कि जब तक आला मसाइल के समझने के लिए ज़हन काफ़ी तौर पर तैयार ना हो। तो आला उलूम की ताअलीम ना सिर्फ नाकारा होगी बल्कि इस से इन्सान ख़्वाह-मख़्वाह धोका खाएगा।

इल्म-ए-हिंदिसा का माहिर जो आलम की निहायत ही पेचीदा इशकाल व सवालात के हल करने में उस्ताद है। उस पर भी एक ज़माना गुज़र चुका है। जब कि वो तिफ़्ल

अबजद जान (बचपन से हुरूफ़-ए-तहज्जी को जानने वाला) था। इस वक़्त उस के लिए इस क़िस्म के दक़ीक़ (मुश्किल) सवालात बिल्कुल अक़्दह ला युख़ल (हल ना होने वाले मुश्किल सवाल) होते। और वो उनकी हक़ीक़त के समझने से बिल्कुल आरी (मजबूर) होता। उस के दिल में कभी ख़याल भी नहीं आएगा कि अपने लड़के से जिसने भी अक़्लीदस (रियाज़ी का इल्म) के मक़ाला (तहरीर) अव्वल को शुरू किया है। अभी से इस क़िस्म के आला मुतालों की उम्मीद करे। वो जानता है कि एक तूल तवील (बहुत लंबा) और बतद्रीज (आहिस्ता-आहिस्ता) ताअलीम व तर्बीयत की ज़रूरत है। पेश्तर इस के कि उस का बच्चा इस अम्र (काम, फ़ेअल) को समझने के क़ाबिल होगा कि मुसल्लस क़ायम अल-ज़ाविया (तकव्वुन 90 डिग्री का ज़ावीया) के वित्र (मुसल्लस क़ायम अल-ज़ाविया का सबसे बड़ा ज़िला) पर जो मुरब्बा बनाया जाये। वो उस के दूसरे दोनों ज़िलों के मुरब्बों के मजमूए के बराबर होगा। और इस से भी ज़्यादा ताअलीम हासिल करने के बाद वो इस अम्र को मालूम करेगा कि ये रियाज़ी का मसअला तमाम आलम के क़ायम अल-ज़ाविया मुसल्लसों के हक़ में सही ठहरता है। बाप को मुश्किल से वो वक़्त याद होगा। जब कि इस क़िस्म की दरयाफ्तें उस के लिए बिल्कुल नई बातें थीं। वो उन बेशुमार ज़ीनों (सीढ़ीयों) को भी देख सकता है। जो अभी इस के और उस के बेटे की इल्मी वाक़फ़ीयत के दर्मियान वाक़ेअ हैं। और जिस पर उस के बेटे को क़दम ब-क़दम चढ़ना है। लेकिन अगर वो दाना (अक़्लमंद) है। तो वो इस अम्र में हरगिज़ जल्द-बाज़ी नहीं करेगा। वो ये नहीं कहेगा कि "मैं जानता हूँ कि मेरा ये आला इल्म सच्चा और क़ीमती है। और इस से मुझे बहुत ही ज़हनी ख़ुशी और मसर्रत हासिल होती है। इसलिए मैं अपने बेटे को भी इसी वक़्त उस के सिखाने की कोशिश करूँगा। क्या ज़रूर है कि मैं इन अदना उलूम की ताअलीम पर अपना वक़्त ज़ाए करूँ। जब कि दूसरा इल्म ऐसा आला और अज़ीमुश्शान और ख़ूबसूरत है।" नहीं। हरगिज़ नहीं। क्यों कि वो जानता है कि उस के बेटे का ज़हन उस वक़्त इस के लायक़ नहीं। और इसलिए वो अक़्लमंदी से उस के ज़हनी नश्वो नुमा के बतद्रीज (आहिस्ता-आहिस्ता) तरक़्क़ी पाने का सब्र से इंतिज़ार करता है।

4. दूसरी मिसाल

और क्या यही उसूल हमारी अख़्लाक़ी और मज़्हबी ताअलीम व तर्बीयत पर भी हावी (भारी) नहीं है? एक दाना और समझदार आदमी को वसती अफ़्रीक़ा में ग़ुलामों के दर्मियान मिशनरी मुक़र्रर करके भेजो। जो अभी-अभी ग़ुलामाना और वहशयाना ज़िंदगी से

निकल रहे हैं। और जिनकी पुरानी आदतें अभी तक उन पर क़ाबू रखती हैं। और शराबनोशी और नापाकी और क़त्ल और लूट मार उन के लिए मामूली बातें हैं। क्या वो उनकी इस्लाह इस तौर से शुरू करेगा कि उनके तमाम नुक़्सों और बेहूदा आदतों पर यक-क़लम (फ़ौरन) पानी फेर दे। और आला दर्जे के चाल चलन और आदत व ख़सलत (फ़ित्रत) के मुताल्लिक़ सख़्त क़वाइद मुक़र्रर कर दे। जिनके हुस्न व ख़ूबी की क़द्र करने की वो बिल्कुल क़ाबिलीयत नहीं रखते। और जिन पर ज़ोर देने से उनके बग़ावत (सरकशी) पर आमादा हो जाने का अंदेशा (डर) है? क्या उस की इब्तिदाई ताअलीम ये होगी कि उन्हें ख़ुद-इंकारी और दुश्मनों से मुहब्बत रखने। औरतों के साथ उम्दा सुलूक करने। आला ईमान और पुर मुहब्बत इबादत। और ख़ुदा के लिए अपनी जान को तस्लीम कर देने के फ़राइज़ सिखाए? क्या वो यक-क़लम (फ़ौरन) उनसे ये उम्मीद रखेगा, कि वो अपने चाल-चलन में वो आला तक़द्दुस व नेको कारी ज़ाहिर करें। जो आला से आला मसीही वलीयों (ख़ुदा के क़रीबी लोग) में नज़र आती है?

यक़ीनन नहीं, अगर वो दाना और फ़हीम (अक़्लमंद) होगा। तो वो इब्तिदा में बहुत सी बातों से जो उसे नापसंद होंगी। चश्मपोशी (नजर-अंदाज़) करेगा। बहुत सी बातें जिन्हें देखकर उसे अफ़्सोस और नाख़ुशी होगी। दर-गुज़र (बर्दाश्त) करेगा। क्यों कि उसे बतद्रीज (आहिस्ता-आहिस्ता) नश्वो नुमा हासिल होने का क़ानून ख़ूब याद है। वो आसान आसान और सादा-सादा अहकाम जारी करेगा। वो छोटी-छोटी इब्तिदाई बातों की ताअलीम देगा। वो हर एक ऐसी अलामत को देखकर जिससे ये मालूम हो कि वो दर-हक़ीक़त नेकी की तरफ़ तरक़्क़ी कर रहे हैं ख़ुश होगा। अगरचे उस के साथ बहुत कुछ बदी की आमेज़श (मिलावट) भी क्यों ना हो। दुआ और उम्मीद और मुहब्बत के साथ वो अपने लोगों को निगाह रखेगा। और अपनी ताअलीम के सिलसिले को बड़े सब्र और इस्तिक़लाल (मज़बूती) से जारी रखेगा। उसे उनके मिज़ाज व ख़सलत में हक़ीक़ी तरक़्क़ी देखकर अगरचे वो थोड़ी ही क्यों ना हो। ज़्यादा ख़ुशी होगी। बनिस्बत इस के कि उनसे किसी बैरूनी क़वाइद की सख़्ती से पाबंदी कराए। वो आहिस्ता-आहिस्ता तरक़्क़ी करने पर क़ानेअ (क़नाअत करना) होगा। और रफ़्ता-रफ़्ता बे मालूम मदारिज (मामूली दर्जा) से अपने मुद्दआ को हासिल करता जाएगा। वो ऐसे छोटे-छोटे कामों को जो गो बाहर के लोगों के नज़्दीक तारीफ़ की निस्बत ज़्यादातर क़ाबिल ज़जरू तोबीख़ (मलामत व तंज) ठहरें। मगर उस की नज़र में इन बेचारे वहशियों की तरक़्क़ी के आला ज़ीनों पर चढ़ने की अलामत हैं। बड़ी शादमानी से मुलाहिज़ा (देखना) करेगा। वो कुछ अर्से तक इस अम्र

पर क़नाअत (जो मिल जाए उस पर राज़ी होना) करेगा कि उनके दिल में ख़ुदा और मज़्हब के मुताल्लिक़ ना-कामिल और मोटे सोटे ख़यालात जागज़ीन (बेदार) रहें। वो अपने को इस बेचारे पुर-ख़ता आदमी की जगह पर रखकर जो आला ज़िंदगी के हासिल करने के लिए हाथ पांव मार रहा है। उस के साथ हम्दर्दी करेगा। और उस के ख़यालात को समझने की कोशिश करेगा। क्यों कि उसे सच्चे दिल से इस अम्र पर एतक़ाद (यक़ीन) है कि ये लोग आख़िरकार ज़रूर तरक़्क़ी करके आला ज़िंदगी को हासिल कर लेंगे।

वो रास्त बाज़ आदमी हमेशा ख़ुदा से इन बेचारे वहशियों के हक़ में दुआ करेगा। कि "अपने रूह-उल-क़ुद्स के इल्हाम से उनके दिल के ख़यालों को पाक करे।" मगर उसे इस अम्र (फ़ेअल) का भी यक़ीन है, कि ख़ुदा रूह-उल-क़ुद्स की हुज़ूरी से ये लाज़िम नहीं आता कि हर क़िस्म की ग़लती और बदकारी मादूम (ख़त्म) हो जाये। बल्कि इस के ये मअनी हैं कि इन लोगों में कुछ-कुछ सच्चाई और कुछ रुहानी ज़िंदगी मौजूद है। अगरचे उस की मिक़दार बहुत ही क़लील (कम) क्यों ना हो। और इस यक़ीन के साथ वो सब्र के साथ इंतिज़ार करता है। और बराबर उन्हें ताअलीम देता, और उनके हक़ में दुआ मांगता रहता है और उम्मीद को हाथ से जाने नहीं देता।

रफ़्ता-रफ़्ता जब कि इन लोगों में से बाअज़ एक आला शरीफ़ मिज़ाज मसीही के दर्जे को हासिल कर लेते हैं। और मस्लूब के रास्ते पर क़दम-बा-क़दम चलने की कोशिश करते हैं। तो क्या वो अपनी इब्तिदाई ताअलीम व तर्बीयत और इब्तिदाई ख़यालात पर पीछे को नज़र नहीं डालेंगे। और इसे एक इब्तिदाई मंज़िल नहीं समझेंगे। जिससे वो अब बहुत दूर निकल आए हैं। मगर क्या साथ ही वो ये इक़रार ना करेंगे कि ये अदना मंज़िल उनकी इस आला ज़िंदगी के हुसूल के लिए एक लाज़िमी तैयारी थी।

5. ब्रह्मन का नश्थो नुमा, एक मिसाल

हम ग़ैर-अक़्वाम की ज़िंदगी से भी एक मिसाल पेश करते हैं। प्रोफ़ैसर मैक्स मार साहब ब्रह्मणों की मज़्हबी ताअलीम का ज़िक्र करते हुए लिखते हैं, कि :-

> "शागिर्द को मज़्हबी नश्थो नुमा के तीन मदारिज में से गुज़रना पड़ता है। यानी तालिबे इल्मी (इल्म हासिल करना) ख़ाना-दारी

(घर का काम) और ज्ञान ध्यान (सोच व फ़िक्र) की ज़िंदगी में से तालिब-ए-इल्मों को पहले वेदों (हिन्दुओं की मुक़द्दस किताब) को बरज़बान (ज़बानी याद) करना पड़ता है। और जब वो ख़ानादार होता है। तो इसी के मुताबिक़ वो अपने सब कारोबार और पूजापाट करता है। मगर जब वो तीसरे दर्जे को पहुंचता है। और उस के बच्चे बड़े हो जाते हैं। और उस के बाल सफ़ैद हो जाते हैं। तो वो इन तमाम अदना बातों से आज़ाद हो जाता है। और अपने सारे ख़यालों को ब्रहम (ख़ुदा) पर लगा देता है।

वेद अब उस के लिए इल्म के लिहाज़ से गोया एक अदना चीज़ हो जाते हैं। और रागनी और अंदर (बातिन) का अब नाम ही नाम रह जाता है। हज़ार-हा साल से ऐसे ब्रह्मणों के ख़ानदान चले आते हैं। जिनमें बेटा रोज़ बरोज़ वेदों के श्लोक (हम्द, क़सीदा) बरज़बान करता है। और बाप दिन-ब-दिन पूजापाट में मशग़ूल रहता है। और दादा इन सब रीत व रसूम (रस्मो-रिवाज) को महज़ बुतलान (झूट) समझता है। बल्कि वेदों के देवताओं को भी नहीं मानता। बल्कि उनको उस की सारी तवज्जोह उस आला ज्ञान और मार्फ़त (ख़ुदा का इल्म) पर लगी है। मगर दादा बावजूद उस के अपने बेटे और पोते को हिक़ारत (कमतर) की नज़र से नहीं देखता। और ना अगरचे ज़ाहिरी रीत व रस्म के क़वाइद की पूरी पाबंदी करते हैं। उस को बुरा-भला कहते हैं। क्यों कि वो जानते हैं कि वो इस तंग दरवाज़े से गुज़र चुका है। और इसलिए उस की इस आज़ादी और आला ख़यालात के आला दर्जे के लिए जिसको उसने हासिल कर लिया है उस को नहीं सताते।

6. क़ौम की ताअलीम

अब हम इस अम्र को देखेंगे, कि जो उसूल अफ़राद के हक़ में सही है। वही उसूल अक़्वाम के हक़ में भी सही है। आदमी गहवारे (पंगोड़ा) से लेकर क़ब्र तक बराबर तरक़्क़ी किए जाता है। और यही हाल अक़्वाम का भी है उनमें भी बराबर नश्वो नुमा हासिल करते रहने की क़ाबिलीयत (ख़ूबी) है। हर एक नस्ल गुज़श्ता नस्ल की नश्वो नुमा के नताइज को अपनी ज़ात में शामिल कर लेती है। और आगे क़दम बढ़ाती जाती है।

इस ताक़त के लिहाज़ से जिसके मुताबिक़ ज़माना-ए-माज़ी के नताइज को अपने अंदर जमा कर लेता है। बनी-इन्सान को अगर एक अज़ीम इन्सान कहें तो बजा है। जिसकी उम्र हज़ार-हा साल की है। मुख़्तलिफ़ ज़मानों की ईजादें और दरयाफ्तें सब इसी का काम हैं। और अक़ाइद और मसाइल और राएं और उसूल सब इसी के ख़याल हैं। मुख़्तलिफ़ ज़मानों की सोसाईटियों की हालत उस के तौर व तरीक़ हैं। वो हमारी ही तरह इल्म और ख़ुद्दारी और ज़ाहिरी जसामत में बराबर बढ़ता चला जाता है। और उस की ताअलीम भी इसी तरीक़ और इन्हीं वजूहात के लिहाज़ से हमारी ही तरह होती है।

इसलिए क़ौम के हक़ बचपन और जवानी और कुहूलत (बुढापे के आग़ाज़) के अलफ़ात का इस्तिमाल करना बर-महल (मुनासिब) है। निहायत क़दीम ज़मानों के इन्सान हमारे मुक़ाबले में महज़ बच्चे ही थे। उनके लिए अदना और इब्तिदाई क़िस्म की ताअलीम की ज़रूरत थी। उनमें ऐसी ख़ुद्दारी ना थी। और उनके नुक़्सों और गुनाहों से बहुत कुछ दरगुज़र (बर्दाश्त) करनी मुनासिब है। वो ख़ुदा के इस अज़ीमुश्शान मदरिसा की अदना जमाअतों में ताअलीम पाते थे।

7. ख़ुदा का मदरिसा

अगर मुझे अपने मक़्सद में कामयाबी हुई है। तो उम्मीद है कि नाज़रीन ने अब इस उसूल को कि ख़ुदा बनी-इन्सान को रफ़्ता-रफ़्ता और दर्जा बदर्जा ताअलीम देता है ख़ूब जान लिया है। और अब वो बाइबल की अख़्लाक़ी ताअलीम के मुताल्लिक़ सही ख़याल को क़ुबूल कर सकेंगे।

बाइबल या यूं कहो कि अहद-ए-अतीक़ को अब ये नहीं समझना चाहिए कि वो अहकाम या हिदायात या मसालात का मजमूआ है। जो हर ज़माने और हर हालत के लोगों के लिए क़ाबिले तामील व पैरवी हैं। बल्कि हमारे नज़्दीक तो इस को इस शराफ़त और मज़्हबी उमूर की ताअलीम में बतद्रीज तरक़्क़ी करने की कहानी समझना चाहिए कि किस तरह वो आहिस्ता-आहिस्ता ख़ुदा की मार्फ़त को हासिल करते गए। अहद-ए-अतीक़ ये बताता है कि किस तरह एक ख़ास क़ौम इस तौर पर तर्बीयत की गई। और किस तरह एक बेचारी क़ौम ने जो ग़ुलामी की हालत में मिस्र से निकली थी। रुकावट और हिदायात और सरज़निश (बुरा भला) और मलामत के ज़रीये बड़ी सहूलत और तद्रीज

(दर्जा ब दर्जा) के साथ आला हालत की तरफ़ तरक़्क़ी की। किस तरह ख़ुदा उनकी निगहबानी करता रहता था। जैसे सुनार चांदी सोने को कठाली में साफ़ करता है। और इस से रफ़्ता-रफ़्ता सारी मेल मिलावट को ख़ारिज (निकाल) कर देता है।

इस में इस बतद्रीज तरीक़ ताअलीम का ज़िक्र है। जिसका हम ऊपर अपनी मिसाल में ज़िक्र कर चुके हैं। हम देखते हैं कि कितनी बातें थीं जो इस इब्तिदाई ज़माने में दर-गुज़र की गई थीं। या जैसा कि (आमाल 17:30) में लिखा है, □चश्मपोशी□ की गई किस तरह ग़ुलामी यक-लख्त (एक दम) दूर नहीं कर दी गई। बल्कि इस की बेरहमियों की मुमानिअत की गई। और इस की बद-अमलियों (बुरे काम) को रोका गया। किस तरह औरतों की तलाक़ की बिल्कुल मुमानिअत (मना करना) की गई। मगर इस पर सख़्त क़ैदें लगा दीं गईं। ताकि लोग बेपर्वाई से इस पर अमल दरआमद ना करें। किस तरह कीना (दुश्मनी) और इंतिक़ाम (बदला) के वहशयाना क़ौमी दस्तूर पनाह के लिए शहर मुक़र्रर करने के ज़रीये हल्के कर दीए गए। ताकि मुंतक़िम (इंतिक़ाम लेने वाला) का ग़ेय्ज़) गुस्सा (व ग़ज़ब (सख़्त ग़ुस्सा) अनकज़ाए ज़माना (वक़्त गुज़रने के साथ) से सर्द (ठंडे) हो जाये।

वो दिखाता है कि किस तरह मुलायम और तहम्मुल और बुर्दबारी और दूसरों की यही ख़्वाही की ताअलीम रूह-उल-क़ुद्स के इल्हाम से रफ़्ता-रफ़्ता उनके क़वानीन में दाख़िल होती गई। वो ये भी दिखाता है कि उनका ख़ुदा का तसव्वुर कैसा ना-कामिल और मन घड़त था। जैसा कि उन बच्चों का होता है, जिनकी ताअलीम अभी शुरू हुई हो। वो ये दिखाता है कि कैसी हक़ीक़ी दीनदारी और अख़्लाक़ी उमूर में गर्म-जोशी के साथ एतिक़ाद (यक़ीन) की ना-कामिल और नामुनासिब सूरतों और ख़ुदा की रज़ा के मुताल्लिक़ ग़लत ख़यालात भी मिले हुए हैं। वो ये दिखाता है कि हर एक ज़माने में इस ज़माना की हैसियत और हालत के मुताबिक़ ताअलीम मिलती रही। ना तो इस में बहुत जल्दी थी। ना सुस्ती वो हर ज़माने के हालात और सवालात के साथ अपने बोरबत देती थी। अगरचे हमेशा इस से कुछ ना कुछ बढ़ी हुई नज़र आती थी। मगर ऐसी नहीं कि लोग इस की पैरवी करते डर जाएं अल-क़िस्सा (मुख़्तसर) ये कि हर एक समझदार शख़्स जो ग़ौर से इस का मुतालआ करेगा वो ये देख लेगा कि इस में मज़्हबी ख़यालात ने बतद्रीज (आहिस्ता-आहिस्ता) नश्वो नुमा हासिल किया। और ख़ुदा और रास्ती और फ़र्ज़ की निस्बत इब्तिदाई नाक़िस ख़याल रफ़्ता-रफ़्ता तरक़्क़ी करते गए। यहां तक कि

इस अख़्लाक़ी ख़ूबसूरती को हासिल कर लिया जो हम येसू मसीह की ताअलीम में देखते हैं।

अगर किसी को अब भी इलाही ताअलीम की इस नश्वो नुमा के मुताल्लिक़ शुब्हा (शक) बाक़ी रहे। तो उसे हमारे ख़ुदावंद के इन अक़्वाल को पढ़ कर इस में कुछ हुज्जत (बहस) बाक़ी नहीं रहेगी। मसलन "तुम सुन चुके हो कि अगलों से कहा गया था कि अपने पड़ोसी से मुहब्बत रखना और अपने दुश्मन से अदावत (दुश्मनी) लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि अपने दुश्मनों से मुहब्बत रखो। और अपने सताने वालों के लिए दुआ माँगो।" "मूसा ने तुम्हारे दिल की सख़्ती के सबब" बाअज़ आसान शराइत पर तलाक़ की इजाज़त दी "मगर मैं तुमसे कहता हूँ, कि जो कोई अपनी बीवी को ज़िनाकारी के सिवा किसी और सबब से छोड़ दे और दूसरी से ब्याह करे वो ज़िना करता है।" और फिर दूसरे मौक़े पर जब कि ग़ज़बनाक (सख़्त ग़ुस्सा) शागिर्द अपने उस्ताद के दुख देने वालों पर आस्मान से आग बरसाना चाहते थे। जैसा कि एलियाह ने किया। तो उस ने उन्हें बता दिया कि मसीह की रूह एलियाह की रूह नहीं है। और कि वो रुहानी ताअलीम के एक आला दर्जा (दर्जा) से ताल्लुक़ रखते हैं।

हमें याद रखना चाहिए कि ये बाइबल ही है, जो हमें सिखाती है कि हमें क़दीमी (पुरानी) ताअलीम की अख़्लाक़ी हालत पर किस तरह हुक्म लगाना चाहिए। "ख़ुद यही अम्र कि हम अहद-ए-अतीक़ के नुक़्सों (गलतीयां) और मुक़ीतों पर एक ज़्यादा आला मिक़्यास (उम्दा पैमाना) के मुताबिक़ हुक्म लगा सकते हैं। इस बात को साबित कर रहा है कि किस तरह बड़े सब्र के साथ रूहे हक़ अपने काम को सरअंजाम देता आया है। और इन वाक़ियात की बिना पर हम बिला-ताम्मुल (बग़ैर सोचे समझे) ये कह सकते हैं कि मुकाशफ़ा के इस इलाही इंतिज़ाम व तरीक़ में बिल्कुल कामयाबी हुई है।" मुक़द्दस ख़िरद सस्तम लिखता है :-

> "ये मत पूछो कि अहद-ए-अतीक़ के अहकाम इस वक़्त किस तरह नेक ठहर सकते हैं। जब कि उनकी ज़रूरत जाती रही बल्कि ये पूछो कि जब ज़माने को उनकी ज़रूरत थी। तो उस वक़्त वो कैसे अच्छे थे। उनकी सबसे बड़ी तारीफ़ ये है, कि हम अब उन पर नज़र कर के उन्हें नाक़िस (ख़राब) ख़याल करते हैं। क्यों कि

अगर वो ऐसी अच्छी तरह से हमारी तर्बीयत ना करते। यहां तक कि हम ज़्यादा आला (अज़ीम) चीज़ों के हुसूल के क़ाबिल हो जाएं। तो हम कभी उनके नुक़्सों (गलतीयां) को इस वक़्त ना देख सकते।

8 .अख़्लाक़ी मुश्किलात पर बहस

मैंने ऊपर ये कहा था कि जब नाज़रीन इन उमूर (अम्र की जमा) पर हुक्म लगाने के लिए सही ख़याल हासिल कर लेंगे। तो मैं फिर उनको उन मुश्किलात पर बहस करने के लिए मदऊ करूँगा। मैंने इस से पहले इस अम्र पर ज़ोर दिया है कि इन्सानी ज़मीर को बाइबल के अश्ख़ास के अल्फ़ाज़ और हालात पर नुक्ता-चीनी करने का हक़ हासिल है। लेकिन मैंने जो कुछ ऊपर बयान किया है। इस से ज़ाहिर हो गया होगा कि उनकी नुक्ता-चीनी (बुराई निकालना) करते वक़्त हमें किस क़द्र चश्मपोशी (नज़रअंदाज-) और दर-गुज़र करनी चाहिए। इस वक़्त हम याईल या दबूरह या समुएल या एलियाह कि निस्बत ख़ुदा की इस अख़्लाक़ी ताअलीम के बड़े मदरिसे की आला जमाअतों में ताअलीम पा रहे हैं। हम इस बड़ी आलमगीर क़ुर्बान गाह की ज़रा ऊँची सीढ़ीयों पर हैं। जो तारीकी (अंधेरा) में से ख़ुदा के नूर की तरफ़ चढ़ती जाती हैं।

इसलिए अदना मंज़िलों वाले लोगों के कलाम और अफ़आल पर नुक्ता-चीनी (बुराई निकालना) करते वक़्त हमें चाहिए कि उन पर उनके मदारिज (दर्जे) के मुवाफ़िक़ हुक्म लगा दें। उनके अदना दर्जे पर होने से ये लाज़िम नहीं आता कि वो रूह-उल-क़ुद्स के इल्हाम से बे-बहरा (महरूम) थे। अगर नाज़रीन (देखने वाले) ने मेरे इस ख़याल को बख़ूबी ज़हन नशीन (ज़हन में बिठाना) कर लिया है कि मज़्हब बनी-इन्सान की एक जारी ताअलीम का नाम है। वो बतद्रीज (आहिस्ता-आहिस्ता) आगे बढ़ता चले जाना है। या यूं कहूं कि इन्सान एक मख़्फ़ी (छिपा हुआ) रूह-उल-क़ुद्स की ताक़त से जो उस के अंदर सुकूनत (ठहरना) करता है। दर्जा बदर्जा उस की तरफ़ बढ़ता चला जाता है। तो वो ये देख लेगा कि आज से तीन हज़ार बरस पहले ख़ुदा और रास्ती और फ़र्ज़ की निस्बत अदना (नीचा) दर्जे का ख़याल होना। इलाही इल्हाम की मौजूदगी के साथ बिल्कुल बेरब्त (बे-तर्तीब) नहीं है। वो ये समझ जाएगा कि मुम्किन है कि ख़ुद मूसा और समुएल नबी और दाऊद बाअज़ बातों में हमारे आजकल के संडे स्कूल के बच्चों से भी अदना रुहानी

ख़याल रखें। मगर बावजूद इस के उनके तसव्वुरात उनके ज़माने के लोगों के ख़यालात से इस क़द्र बुलंद व (बाला ऊंचा) थे कि सिर्फ इलाही इल्हाम की मौजूदगी की बिना पर हम इस फ़र्क़ की तसल्ली बख़्श वजह बता सकते हैं।

अलबत्ता इस का ये तो मतलब नहीं कि ख़ुदा की नेकी और बदी के क़वानीन किसी दर्जे तक बदल गए हैं। क्योंकि वो ऐसे अटल (ना टलने वाला) हैं। जैसे वो क़वानीन जो तमाम आलम की हरकात पर हावी (भारी) हैं। इस का सिर्फ ये मतलब है कि जैसा कि क़वानीन तबई, वैसे ही अख़्लाक़ी क़वानीन भी दर्जा बदर्जा लोगों पर ज़ाहिर किए गए। जूं जूं वो उनके समझने के क़ाबिल होते गए।

> बक़ौल हर्डर अहद-ए-अतीक़ के नुक़्स मुअल्लिम के नहीं। बल्कि मुतअल्लिम के नुक़्स (ग़लती) हैं। अख़्लाक़ी ताअलीम के सिलसिले में उनका होना ज़रूरीयात से है। वो जुज़वी (ख़ास) और बतद्रीज (आहिस्ता-आहिस्ता) हासिल होने वाले मुकाशफे के लाज़िमी हदूद के सबब से हैं। अगर ख़ुदा मुख़्तलिफ़ ज़मानों में तारीख़ी तौर पर मुकाशफ़ा अता करना पसंद करता है। तो ज़रूर है कि ये मुकाशफ़ा हर ज़माने के लोगों की जरूरतों और ज़हनी और अख़्लाक़ी क़ाबलियतों के साथ वाबस्ता हो।

(न्यूमैन समाईथ)

अगर बतद्रीज तरक़्क़ी पाने का क़ानून हमेशा मद्द-ए-नज़र रहे। तो अहद-ए-अतीक़ की अख़्लाक़ी मुश्किलात बहुत कुछ रफ़ा (ख़त्म) हो जाएँगी। अब हम उन मिसालों को जिन का हमने इस फ़स्ल के शुरू में ज़िक्र किया था लेते हैं और देखते हैं कि हमारे मौजूदा नुक़्तह-ए-नज़र से वो कैसे नज़र आते हैं।

1. हम देखते हैं कि क़दीम ज़माने (पुराना ज़माना) में लोगों के ज़हन में ख़ुदा का ऐसा तसव्वुर जागज़ीन (बेदारी) था। जिसे कामिल (मुकम्मल) नहीं कह सकते। उनके नज़्दीक ख़ुदा और बुज़ुर्ग और ताक़तवर है। वो सब ख़ुदाओं से बड़ा है। रास्तबाज़ी को चाहता है। बदकारी से नफ़रत रखता है। मगर अक्सर उस की निस्बत ऐसे ख़याल ज़ाहिर किए जाते हैं कि गोया वो फ़क़त क़ौम इस्राईल का ही ख़ुदा है। और उसे दुनिया की और

अक़्वाम की कुछ पर्वा नहीं। मगर कहीं-कहीं आला (अज़ीम) सच्चाई की शुवाएं भी नज़र आती हैं। मसलन वो नैनवा की परवाह करता है। अरबी अय्यूब से अच्छा सुलूक करता है। ख़ास कर उस का ये कलाम कि मौजूदा नस्ल के ज़रीये ज़मीन की सारी कौमें बरकत पाएँगी।" क़ाबिल लिहाज़ है रफ़्ता-रफ़्ता अम्बिया की हद्द-ए-निगाह व मुबल्लिग़ होती जाती है। मगर मसीह की आमद के बाद ये क़दीम ना-कामिलियत आख़िरकार दूर हो गई। और यहोवा सब इन्सानों का ख़ुदा ज़ाहिर हुआ। ऐसा ख़ुदा जो चाहता है कि सब आदमी नजात पाएं।"

2. हम ज़बूर में आला अख़्लाक़ी ताअलीम पाते हैं। और ज़बूर नवीस ख़ुदा और तक़द्दुस के लिए बड़ी सरगर्मी और आरज़ू (ख़्वाहिश) का इज़्हार करता है। मगर साथ ही कहीं हम ऐसे कलिमात भी पाते हैं। जिनमें ख़ुदा के नाफ़रमानों के हक़ में और बाअज़ ज़बूर नवीस के दुश्मनों के हक़ में सख़्त बद-दुआ की गई है। लेकिन अगर हम क़ानून नश्वो नुमा को मद्द-ए-नज़र रखें। तो इस में कोई भी मुश्किल नज़र नहीं आती। ये दुआएं मह्ज़ ज़ाती इंतिक़ाम का इज़्हार नहीं हैं। बल्कि उस दाअवे का जो इस्राईल ख़ुदा पर रखते है कि वो अपने अदल (इन्साफ़) को क़ायम करेगा। मगर ये सब उस ज़माने की बातें हैं। जब कि ये समझा जाता था कि यही दुनियावी ज़िंदगी ही है जिसमें आख़िरकार ख़ुदा को अपने अदल का तक़ाज़ा पूरा करना चाहिए। ये वो ज़माना था जब कि लोग गुनाह और गुनेहगार के दर्मियान इम्तियाज़ (फ़र्क़) नहीं करते थे। जब कि अख़्लाक़ी उमूर (अम्र जमा) के मुताल्लिक़ ग़ज़ब और शरारत से नफ़रत की भर-मार की जाती थी। हम देखते हैं कि इस सूरत में हम ऐसे आदमीयों पर हुक्म लगा रहे हैं जो ख़ुदा की सल्तनत (हुकूमत) की इमारत के इब्तिदाई ज़मानों के साथ ताल्लुक़ रखते हैं। हम ये भी देखते हैं कि बाइबल में इन्सानी अंसर भी मौजूद है। और कच्ची धात अगरचे सोने से मामूर है। तो भी वो बिल्कुल ख़ालिस सोना नहीं है।

3. फिर हम इस में ग़ुलामी और कसीर-उल-अज़दवाजी (ज़्यादा शादियां) और तलाक़ भी पाते हैं जिनकी (ये याद रहे) अगरचे इजाज़त नहीं दी गई। और ना उनके लिए किसी क़िस्म की तर्ग़ीब व तहरीस (लालच देना या हिर्स दिलाना) की गई है। बल्कि फ़क़त उनकी बर्दाश्त की गई। और उन पर क़ैदें लगाई गई और रफ़्ता-रफ़्ता आलम-ए-बाला की बढ़ती हुई तासीरात से उन्हें ज़्यादा-ज़्यादा पाक व साफ़ कर दिया गया है।

4. फिर हम देखते हैं कि इस में बाअज़ कारनामों की तारीफ़ की गई है। या उनका बिला किसी क़िस्म की ज़ज्र (धमकी) व इल्ज़ाम के ज़िक्र हुआ है। जिन्हें हम मसीही दीन की ज़्यादा साफ़ रोशनी हासिल होने के सबब क़ाबिले इल्ज़ाम समझते हैं। मसलन इसी वाक़िये को लो जिसका ज़िक्र ऊपर हो चुका है कि इस्राईल के बहादुर नबिया याईल की फ़ेअल की बहुत तारीफ़ की गई है। इस के बारे में लोगों ने तरह-तरह की दिलचस्प तशरीहें की हैं। मसलन ये कि सिसरा ने याईल के साथ बदसुलूकी की होगी। जिसका बदला उसने इस तौर से लिया। या ये कि दबूरह नबिया ने ये कलिमात इल्हाम से नहीं कहे होंगे। या ये कि पाक नविश्तों के साफ़ बयानात में याईल के इस फ़ेअल को हरगिज़ क़ाबिल-ए-तारीफ़ नहीं ठहराया गया वग़ैरहवग़ैरह-। मगर मुझे इस क़िस्म की मफ़रूज़ात के लिए कोई वजह मालूम नहीं होती। और अगर नाज़रीन मेरे तरीक़ इस्तिदलाल (दलील लाना) पर जिसका ऊपर ज़िक्र किया हुआ है। ग़ौर करेंगे। तो इस क़िस्म की तशरीहों की ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती ज़बूरा ने नबिया होने की हैसियत में कलाम किया। मगर उस को इस इलाही नूर का फ़क़त थोड़ा सा हिस्सा मिला था। जो उस के बाद रफ़्ता-रफ़्ता बढ़ता गया। यहां तक कि आख़िरकार रोज़-ए-रौशन के दर्जे को पहुंच गया।

5. "तुम मैरोज़ पर लानत करो। ख़ुदावंद का फ़रिश्ता बोला। उस के बाशिंदों पर बड़ी लानत करो।" ये दबूरा का गीत था। मगर क्या उसने ये अल्फ़ाज़ किसी ज़ाती ग़र्ज़ को पूरा करने के लिए या कोई ज़ाती इंतिक़ाम लेने के वास्ते कहे थे? हरगिज़ नहीं।

6. वो इस्राईल की माँ थी और वो एक माँ के दिल की गर्म-जोशी और एक हुब्बुल-वतन (वतन से प्यार करने वाला) की सरगर्मी से कलाम कर रही थी। और वो उन लोगों को जिन्हों ने ज़ालिमों के मुक़ाबले में अपनी जानों को हथेली पर रख लिया था। मुहब्बत भरी नज़रों से देख रही थी। और मुहब्बत भरे दिल से उनको बरकत दे रही थी। और इसी मुहब्बत से जो ग़ज़ब (ग़ुस्सा) और इंतिक़ाम (बदला) की आग उस के दिल में उस के दुश्मनों के मुक़ाबिल में भड़क रही थी। इस को भी उसने उन बुज़दिल और ख़ुद-ग़रज़ लोगों पर लानतें करने में ज़ाहिर कर दिया। जो ऐसे ज़रूरी मौक़े पर "ख़ुदावंद की इमदाद के लिए हाँ क़ुव्वत वालों के ख़िलाफ़ ख़ुदावंद की इमदाद के लिए ना आए।" जब तक दबूरा की तस्वीर मेरी आँखों के सामने रहती है। और मैं इस दूर दराज़ ज़माने और मुल्क और इस इब्रानी जंगजू औरत के हालत पर नज़र करता हूँ। जो अभी

तक रुहानी ख़ल्क़त (फ़ित्रत) की इस इब्तिदाई हालत में थी। जब तक कि मैं इस पर जोश उलुल-अज़्म (आली हौसला) और बहादुर औरत पर ग़ौर करता रहता हूँ। और उस के इरादे और ख़सलत (फ़ित्रत) के ज़ोर व क़ुव्वत पर नज़र करता हूँ। तो मैं वहां एक गहरी उल्फ़त व मुहब्बत का इब्तिदाई जोश व ख़ुरोश देखता हूँ। इस तौर पर तो सब कुछ दुरुस्त नज़र आता है। और मैं इस के हिदायत व नमूना से सबक़ हासिल कर सकता हूँ। इस बत्तर (बहुत नाक़िस) और ग़ैर-मामूली जोश को देखकर मैं उस ज़्यादा साफ़ व शफ़्फ़ाफ़ रोशनी को जो मसीही के रास्ते पर पड़ती है पहचानता हूँ। और इस के लिए ख़ुदा का शुक्र करता हूँ। और साथ ही इस के ये देखकर कि अहद-ए-अतीक़ के उलूल-अज़्म (आली हौसला) और बहादुर किस तरह बिल्कुल अपने आपको भुला देते थे। और अपने अदना ज़ाती अग़राज़ व मक़ासिद से ऊपर उठाए जाते थे। और सबसे बढ़कर ये कि अपने इलाही आक़ा की ख़िदमत में वो अपने सारे जिस्म व जान को क़ुर्बान कर देते थे। मुझे इन्किसार फिरूँती (आजिज़ी ख़ाकसारी) का एक सबक़ हासिल होता है। और मैं शर्मसार हो कर उनकी मिसाल व नमूने की पैरवी के लिए अपने को उकसाने पर मज्बूर करता हूँ।[15]

और दबूरा को छोड़कर याईल की तरफ़ मुतवज्जोह हों तो हमें इन मुश्किलात के हल करने के लिए भी इसी किलीद (कुंजी) से काम लेना चाहिए। और इस अम्र का ख़याल रखना चाहिए कि दुनिया की ताअलीम व तर्बीयत के इब्तिदाई ज़माने में लोगों के तसव्वुरात अख़्लाक़ी उमूर के मुताल्लिक़ बहुत अदना और ना-कामिल थे।

इस सूरत में भी हम निहायत बहादुराना मगर नाक़िस फ़ेअल को देखते हैं। (कोलर्ज साहब)

जो ऐसे पुर आशूब (फ़ित्ना व फ़साद) ज़मानों में बहुत ही क़ाबिल-ए-तारीफ़ समझे जाते हैं। अगरचे उनमें नेकी और बदी दोनों की आमेज़श (मिलावट) पाई जाती है। वो दिलेरी और जाँबाज़ी और जाँनिसारी जो इस्राईल को ज़ालिम के पंजे से छुड़ाने के लिए सब कुछ करने को तैयार थी। हाँ ये सब ख़ुदा की तरफ़ से अता हुई थी। अगरचे इस में ऐसी दग़ा बाज़ी भी मिली हुई थी। जो कि आला दर्जे (अज़ीम दर्जा) की अख़्लाक़ी ताअलीम क़ाबिल इल्ज़ाम ठहराए बग़ैर नहीं रह सकती। अगर हमें इस क़िस्से के तमाम

15 कोलर्ज साहब

वाक़ियात मालूम होते और अगर ये कहानी पाक नविश्तों में नहीं, बल्कि किसी दूसरी तवारीख़ (तारीख़ की जमा) में दर्ज होती तो बड़ी आसानी से हम भी इस की ज़मीन में तर ज़बान होते। हम ममालिक की तवारीख़ में बहुत से बहादुरी और उलुल-अज़मी (जुर्आत, इस्तिक़लाल) के कामों को बड़ी हसीन व तारीफ़ की नज़र से देखा करते हैं। हालाँकि कि अख़्लाक़ी मिक़्यास (पैमाने) में वो हरगिज़ पूरे नहीं उतरते। तो अगर यहूदीयों की तारीख़ में इसी क़िस्म के वाक़ियात हमारी नज़र के सामने आएं। तो कोई वजह नहीं कि हम उन्हें भी इसी नज़र से ना देखें। (देखो संनेली साहब की यहूदी कलीसिया की तारीख़)

डाक्टर अर्नाल्ड साहब ने याईल के मुक़द्दमे में निहायत बरजस्ता अल्फ़ाज़ लिखे हैं। जिनका यहां नक़्ल करना फ़ायदे से ख़ाली ना होगा।

> याईल की तारीफ़ से जो हक़ीक़त मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर) होती है। सो ये है कि ख़ुदा जहां कहीं रास्ती और सिदक़ दिली (सच्चे दिल) को देखता है। वहां जहालत के बारे में बहुत कुछ आग़माज़ (रू गरदानी) करता है। और वो जो सच्चे दिल से अपने इल्म के अंदाज़े के मुवाफ़िक़ उस की ख़िदमत करते हैं। और वो उस के इंतिज़ाम व क़ुद्रत के आम सिलसिले के मुवाफ़िक़ उस से बरकत और आफ़रीन (शाबाश) हासिल करते हैं। और वो लोग जिनकी आँखें और दिल अपनी ज़ात पर नहीं बल्कि अपने फ़राइज़ की बजा आवरी पर लगे हैं। वो इस धुआँ उठते हुए सन (रस्सी) की मानिंद हैं। जिन्हें वो बुझाता नहीं। बल्कि उन्हें महफ़ूज़ रखता है। ताकि शोला-ज़न (शोला निकालने वाला) हो। जब हम इन अफ़्सोसनाक मगर शानदार शहादतों का हाल पढ़ते हैं। जहां कि ज़ालिमों और मज़लूमों दोनों की जमाअतों के दर्मियान नेक लोग पाए जाते थे। तो गो हम ये उम्मीद व यक़ीन नहीं कर सकते कि ये सितमगर लोग (ज़ालिम लोग) भी एक ऐसी ही दीनी सरगर्मी से तहरीक दिलाए गए थे। अगरचे उनकी ये सरगर्मी जहालत और ग़लती पर मबनी थी। और वो भी याईल की तरह ख़ुदा को ख़ुश करना चाहते थे। अगरचे उसी की तरह उन्होंने भी ऐसे वसाइल

(ज़राए) इख़्तियार किए जिन्हें मसीह रूह क़ाबिल इल्ज़ाम ठहराती है?

ये बाब बिल्कुल रास्त और बेमहल (नामुनासिब) है कि हम बहुत से अश्ख़ास के कामों को जिनकी अहद-ए-अतीक़ (पुराना अहदनामा) में तारीफ़ हुई है। क़ाबिले इल्ज़ाम ठहराएँ। क्यों कि हमने वो बातें देखीं हैं। जो अम्बिया और सिद्दीक़ीन (रास्तबाज़ लोग) को ज़मानों तक देखनी नसीब नहीं होनी थीं। मगर फिर भी ये बात इस से कुछ कम रास्त और ज़रूरी नहीं है कि हमको चाहिए कि उनकी इस ना डरने वाली सरगर्मी की पैरवी (पीछा) करने की कोशिश करें। जिनसे ख़ाली रहने के लिए हमारी मौजूदा इल्म व मार्फ़त की हालत में हमारे पास कोई माक़ूल उज़्र (मुनासिब बहाना) नहीं है। और जिस सरगर्मी के बाइस बावजूद जहालत और कम इल्मी के अपने बुरे कामों के लिए भी उन्होंने बरकत हासिल की।

9. ताअलीम में बतद्रीज तरक़्क़ी के उसूल से क़त-ए-नज़र करने के नुक़्सान

बाइबल पर इस तारीख़ी क़ायदे से नज़र करना और ये समझना कि वो ऐसे कामिल हिदायात का मजमूआ (जमा किया हुआ) नहीं है। जो हर हाल और हर ज़माने से यकसाँ ताल्लुक़ रखते हों। बल्कि वो ख़ुदा के इन्सान को बतद्रीज (आहिस्ता-आहिस्ता) ताअलीम व तर्बीयत करने की कहानी है। उस शख़्स के लिए जो उस की ताअलीम को समझना चाहता है। निहायत ज़रूरी और लाबदी (लाज़िमी) है। गुज़श्ता ज़माने में इस उसूल की तरफ़ से बहुत कुछ बेपर्वाई की गई जिसके सबब से मज़्हब के बारे में निहायत अफ़्सोसनाक नताइज पैदा हो गए।

इस बात को याद कर के अफ़्सोस आता है कि तारीख़ के कितने ख़ून-आलूदा सहीफ़े इस बर्बादी और जान-कनी से ख़ाली नज़र आते। अगर लोग इस अम्र को याद रखते कि अहद-ए-अतीक़ (पुराना अहदनामा) की शरीअत अभी तक एक ना-कामिल शरीअत थी। और अह्देअतीक़- (पुराना अहदनामा) की अख़्लाक़ी ताअलीम ने पूरी रोशनी और हिदायात के दर्जे को हासिल नहीं किया था। जब मसाइल के ख़ून-ख्वार हिमायती अपनी इन सख़्तियों के सबूत में तौरात के हवालों से सनद (सबूत) लाते थे। जब

बादशाहों का क़त्ल एहूद और याईल के नमूनों से जायज़ क़रार दिया जाता था। जब सलीबी[16] लड़ाईयां लड़ने वाले "काफ़िरों" के ख़ून दरिया बहा देना ख़ुदा की आला (अज़ीम) ख़िदमत में समझते थे। क्यों कि वो इस अम्र की ताईद में क़ाज़ीयों के सहीफे का हवाला दे सकते थे। जहां क़ौमों की क़ौमों को तबाह व हलाक कर दिए जाने का ज़िक्र है। जब कि उनको ज़ीशन[17] की बेरहमियों और अज़ाबों की ताईद में जो बिद्अतीयों और ग़ैर-मज़्हब वालों पर रवा रखे जाते थे। समुएल और एलियाह नबी का नमूना पेश किया जाता था। जब कि कसीर-उल-अज़दवाजी (ज़्यादा औरतों से शादियां) और ग़ुलामी की बर्बाद कुन रस्म के जवाज़ (इजाज़त) में क़दीम बुज़ुर्गों मिस्ल इब्राहिम और याक़ूब की मिसालें दी जाती थीं। जब कि आयात के मज़ामीन को खींच-तान कर उनसे ख़िलाफे अख़्लाक़ ज़ुल्म व सितम का जवाज़ साबित किया जाता था। जब कि बेगुनाह ग़रीब औरतों को अहबार की आयात के हवाले से जादूगरनियां और चुड़ैलें समझ कर जलाया जाता था। जब कि ऐसे ऐसे जराइम और बेरहमियों पर (जैसे कि मुक़द्दस[18] बारतों के दिन का क़त्ल) पोप और कलीसिया के आला अफ़्सर ख़ुशी की नारे बुलंद करते थे। और उनके करने वालों को ख़ुदा के क़दीम बहादुरों के बराबर समझते थे।[19]

ये सब हमाक़तें और बेरहमियाँ कभी वाक़ेअ ना होतीं। अगर लोग बाइबल को इस तौर से मुतालआ करते जो उस का हक़ था। और अगर वो मसीह की ताअलीम को दुरुस्ती से समझते कि ख़ुदा का मुकाशफ़ा तरक़्क़ी पज़ीर है। और कि अहद-ए-अतीक़ के

---

16 ये वो लड़ाईयां थीं। जो अहले-यूरोप ने मुसलमानों के साथ शहर यरूशलम (बैतुल-मुक़द्दस) पर क़ाबिज़ होने के लिए कीं। और जो कई साल तक जारी रहीं। (देखो मुहारिबात सलीबी मतबूअह पंजाब रिलीजियस सोसाइटी)

17 रूमी कलीसिया की एक अदालत का नाम है जो मुल्हिदों और बिद्अतीयों की तहक़ीक़ात व सज़ा के लिए क़ायम की गई थी। जिसके ज़रहई-ए-सई क़रीबन सवा दो सौ साल के अर्से में 32 हज़ार आदमी क़त्ल किए गए और क़रीबन 3 लाख और तरह से सज़ायाब हुए। ये अदालत हसपानीया में 1480 ई॰ में क़ायम हुई थी। और 1820 ई॰ में सरकारी तौर पर मन्सूख़ की गई।

18 24 अगस्त का रोज़ मुक़द्दस बारतों रसूल की यादगार के लिए मुक़र्रर किया गया था। मगर अब ख़ासकर इसलिए मशहूर है कि इसी रोज़ की पहली शाम को 1572 में हेयिगो नाट लोग जो प्रोटेस्टेंट थे। शाही हुक्म से आम तौर पर फ़्रांस में क़त्ल कर दे गए थे।

19 मन्क़ूल अज़ फेरर साहब दीबाचा पुलपिट कमैंटरी यानी तफ़्सीर-उल-वाइज़ीन।

इल्हाम याफ्ताह मुक़द्दसों और उलुल-अज़्म लोगों के अख़्लाक़ी तसव्वुरात भी अहद-ए-जदीद के मुक़ाबले में फ़क़त ऐसे हैं। जैसे धूप के मुक़ाबले में चांदनी और मेय अंगूरी के मुक़ाबले में पानी।

मगर इस बात पर ज़माना-ए-हाल में भी पूरा-पूरा लिहाज़ नहीं किया जाता। जिसका नतीजा सच्चाई के मुक़द्दमे में ऐसा ही दर्द-नाक है बहुत से सोच समझ वाले मसीही हैं जिनका ईमान उन्हें अहद-ए-अतीक़ की मुश्किलात के बाइस रफ़्ता-रफ़्ता ख़ुदा और बाइबल पर से उठता जाता है। बहुत लोग इस ख़याल से कि ग़ुलामी और कसीर-उल-अज़दवाजी (एक से ज्यादा बीवी) की ख़ुदा की तरफ़ से इजाज़त है। बे-ख़ौफ़ हो कर सवाल करते हैं। बहुत लोग उस ख़ुदा में जिसने जहान से ऐसी मुहब्बत रखी कि उसने अपना इकलौता बेटा बख़्श दिया। और अहद-ए-अतीक़ के इस क़ौमी ख़ुदा में जो फ़क़त एक ख़ास क़ौम पर नज़र रहमत रखता था। नुमायां फ़र्क़ देखकर हैरत-ज़दा हो रहे हैं। लोगों को ये बताना चाहिए कि ख़ुदा के तसव्वुरात (ख़यालात) और अख़्लाक़ के तसव्वुरात (ख़यालात) ने रफ़्ता-रफ़्ता नश्वो नुमा हासिल किया। इब्तिदाई ख़यालात को बाद के ख़यालात से वही निस्बत (ताल्लुक़) है। जो बच्चे के ख़यालात को एक फ़ैलसूफ़ (आलिम फ़ाज़िल) के ख़याल से होती है। बच्चे के ख़यालात बच्चे की हालत के मुनासिब होते हैं। मगर वो एक फ़ैलसूफ़ के पूरे नश्वो नुमा पर पहुंचे हुए ज़हन के लिए बिल्कुल नामुनासिब होते हैं।

बाइबल को उस के मक़ासिद और मआनी के तारीख़ी मुद्दआ (मक़्सद) को मद्द-ए-नज़र रखकर मुतालआ करो। और तुम रोज़ बरोज़ इस हिक्मत और सब्र का जो ख़ुदा दुनिया की ताअलीम में काम में लाया ज़्यादा-ज़्यादा इल्म हासिल करते जाओगे। लेकिन जैसा कि बहुत से लोग करते हैं। उसे इस तारीख़ी किलीद के बग़ैर मुतालआ करो। और इल्हाम बाइबल को महज़ एक सतह मुसत्तह (खुला मैदान) समझो। जिसमें ना तो फ़ासिला है ना गहराई। तो तुम्हें इलाही हिक्मत का कुछ-कुछ इसी क़िस्म का तसव्वुर हासिल होगा। जैसे कि कोई शख़्स आस्मान को एक चपनी सतह समझे। जिसमें तमाम सितारे जड़े हुए हैं। और उन इंतिहा फ़ासलों को जो उलमा इन सितारों के दर्मियान बताते हैं। और इस तमाम यगानगत (एक होना) और इत्तिहाद को जिसके मुताबिक़ ये सब हरकत कर रहे हैं। बिल्कुल फ़रामोश (भुला देना) कर दे। भला ऐसा शख़्स ख़ुदा की इस

क़ुद्रत व जलाल का जो आसमानों की सनअत में नज़र आता है। क्या अंदाज़ा लगा सकेगा।"

इसलिए जब कोई मुल्हिद (काफ़िर) अहद-ए-अतीक़ के मुताल्लिक़ किसी अख़्लाक़ी मुश्किल का ज़िक्र कर के हम पर तानाज़नी (तंज़ करना) करने लगे। और यही कहे कि "मसीही दीन ख़ुदा और चाल चलन वग़ैरह की निस्बत इस इस क़िस्म की ताअलीम देता है। और ये बात सही है। क्यों कि मैं उसे बाइबल में लिखा पाता हूँ।" तो हमें उस के इस बयान को तस्लीम करने में एहतियात करनी चाहिए। चूँकि बाइबल की ताअलीम एक तरक़्क़ी पज़ीर मुकाशफ़ा है। तो इस सूरत में ये हरगिज़ दुरुस्त नहीं है कि कोई शख़्स इब्तिदाई मदारिज (दर्जे) का कलाम लेकर हमसे कहे कि "देखो ये तुम्हारा ख़ुदा है। देखो ये तुम्हारा मज़्हब है।" जैसे कि हम अपने को मसीह के हुज़ूर में लाते हैं। हम उनकी ताअलीम का मसीह की ताअलीम से मुवाज़ना (मुक़ाबला) करते हैं। और जहां कहीं हमें ये ताअलीम उस की ताअलीम से गिरी हुई मालूम होती है। हम उस को अपने मज़्हब का सही नक़्शा तस्लीम करने से इन्कार करते हैं।

10. एतराज़ और उन के जवाब

अब मैं अपने नाज़रीन की जगह रखकर और मुख़्तलिफ़ तबीयत व मिज़ाज के आदमीयों से इस मुआमले पर बह्स व गुफ़्तगु कर के बाअज़ मुश्किलात को जो इस बात के मुतालए से उनके दिल में पैदा होनी मुम्किन हैं। बयान करता हूँ।

पहला एतराज़

"ज़मीर को बाइबल के मुख़्तलिफ़ हिस्सों की क़द्रो-क़ीमत की निस्बत हुक्म लगाने की इजाज़त देना एक ख़ौफ़नाक अम्र (काम) है। और गोया अपने मुँह मियां मिट्ठू बनना (अपनी तारीफ़ आप करना) है। हम कौन हैं कि इल्हामी अल्फ़ाज़ में से चुनने और इंतिख़ाब करने का हौसला करें।"

जो कुछ हम पहले ही इस मज़्मून पर बयान कर चुके हैं। अगर इस से मोअतरिज़ की तसल्ली नहीं हुई। तो मैं उस को फ़क़त इतना और याद दिलाऊँगा कि

ख़्वाह ये मियां मिट्ठू बनना हो या ना हो। ठीक यही बात है जो वो और दूसरे समझदार इन्सान बाइबल के मुताल्लिक़ कर रहे हैं। जब वो ज़बूर का मुतालआ करके उठता है। तो वो अपने दिल में महसूस करता है, कि उसे भी गर्म-जोशी (सर गर्मी) के साथ ज़बूर नवीसों की तरह ख़ुदा से मुहब्बत रखनी चाहिए। और उस पर एतिमाद रखना और उस की हम्द व तारीफ़ करनी चाहिए। वो ये कभी ख़याल नहीं करता कि उसे भी उनकी तरह ख़ुदा से दुआ मांगनी चाहिए। उस का ग़ुस्सा उन लोगों के ख़िलाफ़ जो उस से बाग़ी (बग़ावत करे वाला) हैं भड़क उठे। वो इस में ये दो रिवायत पढ़ता है। "कि छोटे लड़को, एक दूसरे से मुहब्बत रखो।" और कि "वो ख़ून और गला घोंटे हुए जानवरों से अपने आपको बचाए रखें।" वो इनमें से एक को तो आलमगीर (पूरी दुनिया) समझता है। मगर दूसरे की तरफ़ से बे-एतिनाई (लापरवाही) करने में उसे कुछ ताम्मुल (सोच बिचार) नहीं होता।

ज़रूर है कि ज़मीर इन उमूर में इम्तियाज़ (फ़र्क़) करे। बाइबल के मुतालआ से हम कुछ फ़ायदा नहीं उठा सकते। जब तक कि ख़ुदा की रूह हमारे शामिल-ए-हाल ना हो और ये रूह इन्सानी ज़मीर के ज़रीये से काम करती है। यही वजह है कि हम बाइबल के मुतालए के साथ रूह-उल-क़ुद्स की इमदाद की दुआ को लाज़िमी ठहराते हैं। ज़रूर है कि वो कामिल सच्चाई की तरफ़ हमारे रहनुमाई करे। रूह-उल-क़ुद्स का काम लिखने वालों को इल्हाम देने के साथ ही ख़त्म नहीं हो गया। वो अब भी अपनी कलीसिया और उस के अफ़राद के अंदर क़ुव्वत बख़्शने वाली ताक़त की मानिंद सुकूनत पज़ीर (रहना) है। और "मसीह की चीज़ों को लेकर उन्हें हम पर ज़ाहिर करता है।"

दूसरा एतराज़

"अगर अहद-ए-अतीक़ का कुछ हिस्सा नाक़िस (कमज़ोर) और नश्वो नुमा की बिल्कुल इब्तिदाई हालत में समझा जाये। और इस सबब से आजकल के मसीहियों की हिदायत के क़ाबिल ना माना जाये। तो क्या रफ़्ता-रफ़्ता लोग अहद-ए-जदीद की निस्बत भी ऐसा ही कहने लग जाऐंगे। और इस की ताअलीम की निस्बत (ताल्लुक़) भी ऐसा ख़याल करने ना लगें कि वो भी रुहानी ताअलीम के अदना मंज़िलों के साथ मुनासबत रखती थी?"

ख़ैर, नाज़रीन, अहद-ए-अतीक़ की बाअज़ ताअलीमात के मुताल्लिक़ तो किसी अगर मगर की हाजत (ज़रूरत) नहीं है। हमारा ख़ुदावंद ख़ुद हमें बता चुके हैं, कि वो मुक़ाबला इस आला मिक़्यास (उम्दा पैमाना) के जो वो ज़मीन पर लाया। हरगिज़ कामिल नहीं है। लेकिन इस एतराज़ की बाबत कि लोग रफ़्ता-रफ़्ता अहदे जदीद की निस्बत भी इस क़िस्म की बातें कहने लग जाऐंगे। मैं सिर्फ ये कहूँगा कि इस अम्र पर सोचने के लिए अभी बहुत वक़्त है। जब मसीही इस आला मिक़्यास के किसी क़द्र क़रीब-क़रीब पहुंचने के जो मसीह दीन पेश करता है क़ाबिल हो जाएगी। तो ये भी ग़नीमत (काफ़ी) समझा जाएगा। इस मिक़्यास (पैमाना) से परे निकल जाना तो एक दूसरी बात है। ये मिक़्यास अब क़रीबन उन्नीस सौ बीस बरस से हमारे सामने रखता है। रसूलों के ज़माने से लेकर किसी ज़माने की निस्बत ज़्यादा क़रीब मालूम होते हैं। मगर तो भी क्या कोई क़ौम और कोई फ़र्दो बशर (इन्सान) ये कह सकता है कि इसने क़रीबन इसे हासिल कर लिया है? इस मिक़्यास से बढ़ कर कोई चीज़ हमारे ज़हन में नहीं आ सकती। हम अभी तक बराबर इस की तरफ़ दौड़े चले जाते हैं। मगर फिर भी वो हमसे परे और बुलंद नज़र आता है।

अहद-ए-अतीक़ का अहद-ए-जदीद से मुक़ाबला करने में इस अम्र को हमेशा याद रखना चाहिए कि इन दोनों के दर्मियान वो वाक़िया हाइल (बीच में आना) है। जो तारीख़ इल्म का मर्कज़ है। यानी मसीह का जिस्म इन्सानी इख़्तियार करना। जो कुछ इस से पहले हुआ वो सब उस के लिए तैयारी के तौर पर था और जो कुछ इस के बाद वाक़ेअ हुआ वो सब वाक़िये की तश्रीह और तफ़्सील और इसी के नताइज को अमली सूरत में ज़ाहिर करने के लिए है।

अहद-ए-अतीक़ तैयारी के तौर पर था। अहद-ए-जदीद ख़ातिमा है। अहद-ए-अतीक़ की ताअलीम अगरचे आला (अज़ीम) और ख़ूबसूरत है ताहम कामिल (मुकम्मल) नहीं। वो बहुत सदीयों में रफ़्ता-रफ़्ता तरक़्क़ी पाती रही है। और बहुत अर्से तक रफ़्ता-रफ़्ता रोज़-ए-रौशन की तरफ़ बढ़ती चली गई है। यहां तक कि वक़्त पूरा होने पर ख़ुदा ने अपना फ़र्ज़न्द (बेटा) भेज दिया। अब अहद-ए-जदीद की ताअलीम शुरू हुई बतद्रीज नहीं और ना फ़क़त अहद-ए-अतीक़ की ताअलीम के लिहाज़ से बतौर एक क़दम आगे बढ़ने के बल्कि वो दफ़अतन और एक ही बार अपनी सारी आब व ताब (शान व शौकत) में जलवागर हुई। और इसलिए उस ज़माने की हालत से जिसमें वो राइज हुई इस क़द्र बुलंद

व बाला थी कि इस वक़्त भी हालाँकि इसे उन्नीस सदीयां गुज़र चुकी हैं और लोग बराबर इस के हिस्सों के लिए जद्दो-जहद (कोशिश) करते रहे हैं। तो भी इस क़द्र बुलंद मालूम होती है जैसे कि सूरज आस्मान में हमसे बुलंद नज़र आता है। गेटी का क़ोल है कि :-

> "ज़हनी तहज़ीब व तर्बीयत ख़्वाह कितनी ही तरक़्क़ी क्यों ना कर जाये। उलूम तबइयह गहराई और चौड़ाई में कितनी ही फ़राख़ी (वुसअत) हासिल क्यों ना कर लें। ज़हन इन्सानी ख़्वाह कितना ही वसीअ (कुशादा) क्यों ना हो जाये। तो भी वो कभी मसीही ताअलीम की अज़मत और इस की अख़्लाक़ी तहज़ीब के परे नहीं जा सकता।

जैसे कि मसीह की इन्जील में दरख़शां (रोशन) नज़र आती है।

तीसरा एतराज़

अगर अहद-ए-अतीक़ (पुराना अहदनामा) की ताअलीम ऐसी नाक़िस और इब्तिदाई है। तो हमें इस के मुतालआ करने की ज़रूरत ही क्या पड़ी है। क्या ये बेहतर नहीं कि हम उसे बिल्कुल तर्क कर दें। और फ़क़त अहद-ए-जदीद (नया अहदनामा) के मुतालआ को काफ़ी समझें?

जो शख़्स इस क़िस्म के एतराज़ करता है। मालूम होता है कि उसने अहद-ए-अतीक़ की बाबत (निस्बत) और नीज़ इस ताल्लुक़ की बाबत जो वो अहद-ए-जदीद से रखता है सही ख़याल नहीं बाँधा। और साफ़ ज़ाहिर है कि इस का ख़याल इस ख़याल की निस्बत बहुत मुख़्तलिफ़ है। जो हमारा ख़ुदावंद और उस के रसूल अहद-ए-अतीक़ की निस्बत रखते थे। और जिसका सबूत इस तरीक़ से मिलता है। जिसके मुताबिक़ वो अहद-ए-अतीक़ के सहीफ़ों को इस्तिमाल करते थे। ये तो सच्च है कि अहद-ए-अतीक़ को अहदे जदीद के लिए रास्ता तैयार करने वाला समझना चाहिए। मगर ये तैयारी ऐसी नहीं, जैसे कि इमारत के लिए पाड़ (मचान) बाँधी जाती है। कि जब इमारत ख़त्म हो जाये। तो हटा दी जाये बल्कि वो बतौर बुनियादों के है जो हमेशा क़ायम रहती हैं।

अहद-ए-जदीद की ताअलीम अहद-ए-अतीक़ की ताअलीम को हटा देने वाली मन्सूख़ (रद्द) कर देने वाली नहीं है। बल्कि वो अहद-ए-अतीक़ की इब्तिदाई ताअलीम के लिए बतौर नश्थो नुमा और तरक़्क़ी के है। मसलन अहद-ए-अतीक़ की शरीअत जो क़त्ल और ज़िना के बैरूनी अफ़आल के लिए थी। वो अहद-ए-अतीक़ में एक आला हालत को पहुंचा दी गई है कि आदमी को नहीं चाहिए कि अपने भाई से दुश्मनी रखे। और कि उसे अपने दिल में भी बुरी बातों का ख़याल नहीं आने देना चाहिए। अहद-ए-जदीद की तारीख़ एक नई तारीख़ नहीं है। बल्कि अहद-ए-अतीक़ की तारीख़ का तत्मिया (बक़ीया) है। वो इस अम्र की कहानी है कि वो मुआमला जिसके लिए अहद-ए-अतीक़ तैयार कर रहा था और जिसका वो मुंतज़िर था अब तक्मील को पहुंच गया।

इसलिए अहद-ए-जदीद कामिल तौर पर समझा नहीं जा सकता जब तक कि उसे अहद-ए-अतीक़ के साथ रखकर ना देखा जाये। इस में जो पैशन गोइयों के पूरा होने का तज़्किरा है इस के मुतालए के लिए इन पैशन गोइयों का इल्म एक लाबदी (लाज़िमी) अम्र है कि किस तरह बतद्रीज तवील (लंबा) अर्से तक इस ताअलीम के लिए तैयारी होती रही। और जब हम इस ख़याल पर लिहाज़ करते हैं कि किस तरह इन्सान ने तवील ज़मानों में दर्जा बदर्जा रुहानी उमूर की ताअलीम हासिल की तो हम इन सारे ज़मानों में एक इलाही मक़्सद व मुद्दआ (ग़र्ज़) का अमल नज़र आता है। और इस से हम ख़ुदा की हिक्मत और सब्र को मालूम करना सीखते हैं।

अहद-ए-अतीक़ और जदीद एक दूसरे से जुदा-जुदा नहीं किए जा सकते। दोनों हमेशा के लिए मसीह में मुत्तहिद (इकट्ठे) हैं। वो गोया इन दोनों के दर्मियान में खड़ा है। और इन दोनों के सर पर अपना हाथ रखे हुए है। वो तस्लीम करता है कि अहद-ए-अतीक़ ना-कामिल (ना-मुकम्मल) और बतौर तैयारी के है। मगर वो हरगिज़ इस अम्र की इजाज़त नहीं देता कि हम उस की कम क़द्री करें। और ऐसे अलग डाल दें। "ये मत समझो कि मैं तौरेत और नबियों की किताबों को मन्सूख़ करने आया हूँ। मन्सूख़ (रद्द) करने नहीं बल्कि पूरा करने आया हूँ।" वो इस क़दीमी और इब्तिदाई ताअलीम को लेकर और उसे एक ज़्यादा अमीक़ (गहरा) और रुहानी और आला सूरत में तब्दील कर के हमें वापिस देता है। वो क़दीम नबुव्वतों को लेता है और हमें बताता है कि "ये वो हैं जो मेरे हक़ में गवाही देती हैं" वो ये दिखाता है कि तमाम अहद-ए-अतीक़ उस की तरफ़ रहनुमाई करता है। और फिर उसे मुकम्मल बना कर हमारे हाथों में दे देता है। पुराना

तालीमी क़ायदा फेंक नहीं दिया जाता। और ना बतौर एक क़दीमी चीज़ों की यादगार के लिए रखा जाता है। बल्कि हमें मसीह की ज़िंदगी और ताअलीम और काम के पूरे मकाशफ़े की रोशनी में उसे अज़ सर-ए-नौ मुतालआ करना चाहिए।

हाँ बाइबल एक ही है और इस के तमाम अजज़ा कुल की तक्मील और कामिलियत के वास्ते ज़रूरी हैं। बाअज़ लोग इसे एक बड़ी जमाअत या गिरजाघर से तश्बीह दिया करते हैं। जिसकी तामीर में पंद्रह सौ साल का अर्सा ख़र्च हुआ हो। अहद-ए-अतीक़ को इस गिरजा या मंदिर का बैरूनी हिस्सा समझना चाहिए। ज़बूर और अम्बिया बतौर इस के दोनों पहलूओं के हैं। और अनाजील इमाम के खड़े होने की जगह और चौथी इन्जील को गोया बतौर क़ुद्दुस-उल-क़दास के या अंदरूनी मुक़ाम के समझना चाहिए। और इस के गिर्दागिर्द और पीछे रसूलों के ख़ुतूत और मुकाशफ़ात की किताब है। जिनमें से हर एक गोया बजा-ए-ख़ुद एक ख़ूबसूरत होती है। और इनमें से हर एक इस आलीशान इमारत की हुस्न की ख़ूबसूरती को तरक़्क़ी देने में मदद देती है।[20]

11. ख़ातिमा

इस बाब में ये निहायत ज़रूरी था कि ख़ुदा की ताअलीम को बतद्रीज (आहिस्ता-आहिस्ता) तरक़्क़ी पाने और नीज़ इस अम्र का कि अहद-ए-अतीक़ अहद-ए-जदीद की निस्बत से अदना है बयान किया जाये। और ताहम जब मैं इन आलीशान (बलंद मर्तबा) और रूह के हिला देने वाले अलफ़ात का जो अहद-ए-अतीक़ के इब्तिदाई हिस्से में भी नज़र आते हैं ख़याल करता हूँ तो मुझे ख़्वाह-मख़्वाह उनके हक़ में इस क़िस्म के माअज़िरत नामा लिखने से शर्म आती है। कुल कोई दस बारह मिसालों की अदना अख़्लाक़ी हालत की बाबत जो अहद-ए-अतीक़ में पाई जाती हैं। लिखते हुए मुझे ऐसे तौर पर लिखना पड़ा है कि गोया अहद-ए-अतीक़ में कोई भी ऐसी शान और ख़ूबसूरती और जलाल नहीं है। जिसकी वजह से वो उस ज़माने के लिहाज़ से जिसमें लिखा गया। तारीख़ का आलीशान (बलंद मर्तबा) मोअजिज़ा मालूम होता है।

---

20 अज़ कैनन लड्डन साहब मन्क़ूल अज़ □अहदेअतीक़- का इलाही कुतुब ख़ाना□ मुसन्निफ़ा कर्क पैट्रिक साहब।

जब मैं कहानी को पढ़ना शुरू करता हूँ कि किस तरह ख़ुदा ने बनी-इन्सान को रफ़्ता-रफ़्ता रुहानी उमूर में ताअलीम व तर्बीयत किया तो ये कैसी अजीब कहानी मालूम होती है। ये कितनी बड़ी दलील (सबूत) इस के इल्हामी किताब होने के हक़ में है।

और जब मैं इस के साथ ये देखता हूँ, कि ये लोग इस ताअलीम के हासिल करने के लिए किस क़द्र ना-रज़ामंद थे। तो मुझे और भी ज़्यादा ताज्जुब (हैरान) होता है।

जब मैं उस ज़माने की जब कि ज़बूर लिखे गए। दुनियावी तारीख़ पर नज़र डालता हूँ ख़्वाहाँ की तारीख़ को कितना ही ज़माना माबाअ्द में क्यों ना ठहराव। और जब मैं उस ज़माने की गंदगी और नापाकी को मुलाहिज़ा करता हूँ और ये भी देखता हूँ कि वो लोग ख़ुदा और फ़र्ज़ के मुताल्लिक़ कैसे अदना ख़याल रखते थे। और लकड़ी और पत्थर के बुतों की परस्तिश पर किस क़द्र शैदा (शौक़ीन) थे। और जब मैं इस तारीख़ को अपनी बाइबल खोल कर ज़बूर की किताब के मुक़ाबले में रखता हूँ तो मुझे ऐसा मालूम होता है कि सख़्त से सख़्त मुल्हिद (काफ़िर) भी इस इख़्तिलाफ़ को देखकर एक नुमायां फ़र्क़ का क़ाइल हो जाएगा। इस के अल्फ़ाज़ पर ग़ौर करो तो सही किस तरह गुनाहों से पशेमानी (शर्मिंदगी) ज़ाहिर करके तौबा और माफ़ी की इल्तिजा (दरख़्वास्त) की जाती है। किस तरह ख़ुदा की मक़बूलियत, ज़िंदगी की पाकीज़गी और इफ़्फ़त (परहेज़गारी) के लिए आर्ज़ूमंदी (ख़्वाहिश) ज़ाहिर की जाती है। किस तरह यहोवा की नेकी और भलाई के ख़याल से ख़ुशी व ख़ुर्रमी का इज़्हार किया जाता है। वो उनके एतिक़ाद (यक़ीन) में □इस्राईल का क़ुद्दूस□ और वो बाप है। जो अपने बच्चों पर तरस खाता है। वो ख़ुदा, ख़ुदा ए रहीम व करीम और बर्दाश्त करने वाला है। जो शफ़क़त और वफ़ा में बढ़कर है। वो जानता है कि हम किस चीज़ से बने हैं। वो याद रखता है कि हम मिट्टी ही तो हैं।"

भला इन्सान अलफ़ात के तहरीक (तर्ग़ीब देना) देने वाले असर से किस तरह बच सकता है? और फिर ये ख़याल कर के कि वो किस ज़माने में लिखे गए उसे मोअजिज़े से कम क्या समझेगा? भला इन्सान ख़ुद ख़ुदा के जलाल के हुज़ूर में किस तरह ऐसी सर्दमहरी (बेवफ़ाई) से नुक्ता-चीनी (बुराई निकालना) कर सकते हैं। जैसा कि कोलर्ज साहब एक शख़्स की तस्वीर खींचते हैं और लिखते हैं, कि :-

> □जब मैं अपनी रूह की ख़ुशी और मुहब्बत का इज़्हार कर रहा था। और बाइबल की किताबें यके बाद दीगरे मेरे हाफ़िज़े की

आँखों के सामने गुज़र रही थीं। और मैं शरीअत और सच्चाई और नेक नमूनों। नबुव्वतों और दिलचस्प गीतों और हज़ार-हा हज़ार आवाज़ों के नग़मों और मुक़द्दसों और अम्बिया की मक़्बूल (मशहूर) शूदा दुआओं का ज़िक्र कर रहा था। जो गोया आस्मान से हमारे पास आते हैं। और ऐसे मालूम होते हैं कि गोया फ़ाख़ता रुहानी ख़ुशीयों और ग़मों और ज़रूरीयात के बोझों से लदे हुए चले आते हैं। तो वो जूं ही मैं अपने बयान को ख़त्म कर चुकता हूँ। तो बड़ी सर्द-मेहरी के साथ मेरी तरफ़ मुतवज्जोह हो कर कहता है, कि क्या तुम्हें दबूरा के बरकत के कलिमात और ज़बूरों की वो आयात जिनमें दुश्मनों पर लानत की गई है, याद हैं?

बाब शश्म

इल्हाम और तन्क़ीद आला

1. तन्क़ीद आला

तन्क़ीद आला यानी हाइर कृटिसिज्म (Higher Cariticisim) उस तन्क़ीद व तहक़ीक़ात का नाम है। जो बाइबल के सहीफ़ों के मुसन्निफ़ तारीख़ तस्नीफ़ ज़राए देना बैअ और तर्तीब व तर्कीब और उन ख़ास हालात के मुताल्लिक़ जिनकी वजह से वो तस्नीफ़ व तालीफ़ (मज़्मून बनाना और जमा करना) हुइ की जाती है। मुतालआ बाइबल के मुताल्लिक़ ये एक निस्बतन नई शाख़ इल्म है। इस का नाम आला या नई तन्क़ीद (नुक्ता-चीनी) इसलिए रखा गया है ताकि उसे अदना या पुरानी तन्क़ीद से जिसका ताल्लुक़ फ़क़त मतन की सेहत और उन वसाइल से था। जिनके ज़रीये से इस क़िस्म की सहू व इग़लात (ख़ता व ग़लतियां) दर्याफ़्त की जाती और दुरुस्त हो सकती थीं।

शायद बाअज़ नाज़रीन को मालूम होगा कि कुछ अर्से से इंग्लिस्तान में इस अम्र पर बहस मुबाहिसा हो रहा है कि आया जो नज़्में और नाटक इंग्लिस्तान के मशहूर व मारूफ़ शायर शेक्सपियर की तरफ़ मन्सूब (निस्बत किया हुआ) किए जाते हैं। वो फ़िल-हक़ीक़त उसी शख़्स के लिखे हुए हैं या किसी और के बाअज़ लोग इस अम्र पर ज़ोर देते हैं कि वो लार्ड बेकन के लिखे हुए हैं। महज़ इस बिना पर कि उस की इबारत और बाअज़ ख़यालात उस से मिलते या मुशाबहत (मिसाल देना) रखते हैं। इस अम्साल से कुछ-कुछ ये अम्र (फ़ेअल) समझ में आ सकता है कि तन्क़ीद अगर इल्मी और तारीख़ी पहलू को छोड़ बैठे। तो भटकती भटकती कहाँ तक पहुंच जाती है। मगर तो भी इस तन्क़ीद ने शेक्सपियर के मुतालआ और दीगर उमूर (मुआमलात) की तहक़ीक़ात के

मुताल्लिक़ बहुत कुछ दिलचस्प और मुफ़ीद बातें दर्याफ़्त (मालूम) की हैं। मसलन अंदरूनी और तारीख़ी शहादत (गवाही) की बिना पर ये साबित किया गया है कि बाअज़ नाटक जो उस वक़्त शेक्सपियर की जिल्द में शामिल हैं। दरहक़ीक़त शेक्सपियर के नहीं हैं। बल्कि किसी और गुमनाम मुसन्निफ़ के लिखे हुए हैं। उनकी तर्ज़-ए-कलाम और ख़यालात को बड़ी इमआन-ए-नज़र (गहरी नज़र) से परखा गया है। और इस के मुसद्दिक़ा (तस्दीक़ शूदा) नाटकों से उनका बैन (साफ़) इख़्तिलाफ़ दिखाया गया है। इस के इलावा दीगर सूरतों में इस अम्र के मुताल्लिक़ निहायत दिलचस्प तहक़ीक़ातें की गई हैं कि शेक्सपियर के नाटकों का मंबा (बुनियाद) क्या था। उसने कौन-कौन सी तारीख़ी किताबों या क़िस्से कहानीयों से उनका ढांचा तैयार किया था। और फिर उस के हमअस्र- (हम ज़माना) मुसन्निफ़ों की तहरीरों से मदद लेकर बहुत से दक़ीक़ (मुश्किल) और मुश्तबा (जिस पर शक हो) मज़ामीन की तश्रीह के मुताल्लिक़ ज़रूरी इत्तिला हासिल की गई है। इस में कुछ शुब्हा (शक) नहीं कि बाज़ औक़ात लोग महज़ बेहूदा मफ़रूज़ात (फ़र्ज़ की हुई बातें) की बिना पर ऐसे ऐसे नताइज निकाल बैठे हैं। जिन्हें पढ़ कर हंसी आती है। मगर अल-जुमला इस क़िस्म की तहक़ीक़ात इल्म हासिल करने का एक निहायत उम्दा ज़रीया है। और इस के ज़रीये से शेक्सपियर के मुतालए और इस का लुत्फ़ उठाने में बहुत इमदाद मिलती है।

अब मज़्हबी दुनिया में इस आला तन्क़ीद ने बाइबल के साथ भी कुछ-कुछ ऐसा ही किया है। जो लोग इस फ़न तन्क़ीद (नुक्ता-चीनी) के माहिर और तालिबे इल्म हैं। अगर उनसे दर्याफ़्त (मालूम) किया जाये कि उनके इस काम का मक़्सद व मंशा (इरादा और मर्ज़ी) क्या है। तो वो यही कहेंगे कि बाइबल में कई एक सहीफ़े ऐसे हैं। जिनकी सूरत से हमें साफ़ ज़ाहिर है कि वो ज़याह क़दीमी मगर फ़िलहाल गुम-शुदा नुस्ख़ों और नविश्तों की बिना पर तालीफ़ (जमा करना) की गई हैं। बाअज़ ऐसे हैं जिनमें ज़ाहिरन कोई ऐसी बात नहीं मालूम होती। मगर तो भी उनकी राय में उनमें ऐसे निशानात पाए जाते हैं। जिनसे साबित होता है कि उन पर किसी मुरत्तिब या एडीटर (तर्तीब देने वाला) का क़लम चला है। जिसने उन्हें ख़ास ख़ास अजमूओं में तर्तीब दिया। या उनके ना-मुकम्मल बयानात की तक्मील (मुकम्मल करना) की। या किसी ना किसी तरह असली किताब में सेहत व तर्मीम (इस्लाह व दुरुस्ती) की।" वो ये भी कहते हैं कि अगर बाअज़ किताबों का तवज्जोह से मुतालआ किया जाये तो इस अम्र में शुब्हा करने के लिए

वजूहात मिलती हैं कि वो हक़ीक़त उस मुसन्निफ़ की जिसके नाम से मन्सूब (निस्बत) हैं लिखी हुई नहीं हैं।

वो तुम्हें बताएँगे कि उनकी ग़र्ज़ इस तौर से पाक नविश्तों का मुतालआ करने से ये है कि उनके दिल में किताब-उल्लाह की इज़्ज़त व तौक़ीर (पसंदीदा) है। और वो चाहते हैं कि जिस क़द्र रोशनी इस पर पढ़नी मुम्किन हो इस के मुतालए के लिए मुहय्या कर दें। उनका ये ख़याल है कि अगर इन किताबों को उनकी सही तारीख़ी मुस्नद (सबूत) पर रखा जाये और उनके ज़माने तहरीर और ग़र्ज़ तहरीर का बख़ूबी इल्म हासिल किया जाये। तो इस से इन किताबों के मुतालिब (मतलब की जमा) को समझते और इनकी क़द्र व क़ीमत में बहुत इज़ाफ़ा हो जाता है।

मगर शायद कोई शख़्स ये सवाल कर ले कि भला इन किताबों की निस्बत जिन्हें सदहा साल (सदीयां) गुज़र गए। ख़ास कर अहद-ए-अतीक़ (पुराना अहदनामा) के मुताल्लिक़ जिस पर ज़्यादातर इन उलमा की तवज्जोह लगी हुई है। इतनी सदीयों के बाद अहद (मुआहिदा) क्या मालूम कर सकते हैं। ख़ासकर इस सूरत में जब कि क़दीमी तवारीख़ की किताबें इस मज़्मून पर ख़ामोश नज़र आती हैं? मगर इस का वो ये जवाब देंगे कि हम इसी तरह इस की तहक़ीक़ात कर सकते हैं। जैसे लोग शेक्सपियर या दीगर क़दीमी किताबों की करते हैं। मुख़्तलिफ़ ज़मानों की ज़बान और इल्म-ए-अदब का बड़े ग़ौर व तवज्जोह से मुतालआ करने के बाद वो मुख़्तलिफ़ ज़मानों के मुसन्निफ़ों में इम्तियाज़ (फ़र्क़) कर सकते हैं। ठीक इसी तरह जैसे मुख़्तलिफ़ ज़मानों की उर्दू या अंग्रेज़ी तस्नीफ़ात (किताबों) को इम्तियाज़ करना मुम्किन है। इस के इलावा किसी मुसन्निफ़ की तर्ज़-ए-तहरीर (लिखने का अंदाज़) और ख़ास-ख़ास फ़िक़रात और अल्फ़ाज़ का जो इस से मख़्सूस हैं। बड़ी दुरुस्ती के साथ मुतालआ करने के बाद वो फ़ौरन इस अम्र (मुआमला) को पहचान लेते हैं कि कहाँ कहाँ किसी ग़ैर-शख़्स की तहरीर की मिलावट का निशान पाया जाता है। इस के इलावा वो किसी मुसन्निफ़ का कलाम में उस के मुक़ामी हालात का रंग देख लेते हैं। या ऐसी ऐसी अश्या या रसूम दस्तुरात (रस्म व रिवाज) का ज़िक्र पाते हैं जो किसी ख़ास ज़माने या मुल्क से मख़्सूस थे। या कहीं कहीं उस ज़माने की तारीख़ ही की तरफ़ कोई सर सुरेम (मामूली) इशारा मिल जाता है। इन सब बातों से मदद हासिल कर के वो बाइबल के ज़बूर या तारीख़ या दीगर उमूर के मुताल्लिक़ फ़ैसले क़ायम करते हैं।

2. तन्क़ीद आला की चंद मिसालें

शायद बेहतर होगा कि मैं चंद सादा नमूने पेश कर के इस अम्र की तौज़ीह (वज़ाहत) करूँ। शायद नाज़रीन ने इस तन्क़ीद (नुक्ता-चीनी) का ज़िक्र तौरात के मुताल्लिक़ सुना होगा कि आया वो हज़रत मूसा की तस्नीफ़ (तहरीर) है या नहीं। क्यों कि उमूमन ये मसअला बहुत मशहूर आम हो रहा है। इसलिए हम इसी को बतौर नमूना पेश करते हैं। मैं इस वक़्त किसी ख़ास पहलू को इख़्तियार नहीं करता। ना किसी ख़ास फ़रीक़ (मुद्दई) के साथ इत्तिफ़ाक़ राय ज़ाहिर करना चाहता हूँ। मैं इस मुक़द्दमा (दाअवा या मसुला) का सिर्फ इसलिए ज़िक्र करता हूँ कि आला तन्क़ीद की ग़र्ज़ व मक़्सद (मतलब व मक़्सद) अच्छी तरह से लोगों के ज़हन नशीन कर दूँ।

तौरात यानी मूसा की पाँच किताबों की निस्बत यहूदी हमेशा से ये एतिक़ाद (यक़ीन) रखते आए हैं कि वो अहद-ए-अतीक़ के दीगर जुम्ला सहीफ़ों से ज़्यादा मुक़द्दस और क़ाबिल ताज़ीम है। और वो कभी ये जुर्आत नहीं करते थे कि इस की निस्बत (मुताल्लिक़) किसी क़िस्म की नुक्ता-चीनी को दख़ल दें कभी किसी शख़्स के दिल में ये ख़याल भी ना आया होगा कि इनकी निस्बत इस क़िस्म के सवाल उठाए कि इस का मुसन्निफ़ कौन है। और वो कब और किस तौर से तालीफ़ व तस्नीफ़ (दुरुस्ती व इस्लाह) हुई। उमूमन ये एतिक़ाद (यक़ीन) था कि हज़रत मूसा ने इस को इस सूरत में जिसमें वो अब मौजूद है लिखा था। मगर तो भी बाअज़ अश्ख़ास को ये अजीब मालूम हुआ करता था कि इस किताब में मूसा की वफ़ात का हाल भी दर्ज है। और इस के हक़ में इस क़िस्म के कलिमात लिखे हैं कि वो यानी मूसा "सारे लोगों से जो रुएज़मीन- पर थे। ज़्यादा हलीम (नर्म मिज़ाज) था।" और "अब तक इस्राईल में मूसा की मानिंद कोई नबी नहीं उठा।" और "आज के दिन तक कोई उस की कब्र को नहीं जानता।" नीज़ ये कि असनाए तहरीर (लिखे जाने के दौरान) में लिखने वाला हमेशा इस गुज़श्ता ज़माने की तरफ़ इशारा करता रहता है। "जब कि बनी-इस्राईल ब्याबान में थे।" और "कनआनी मुल्क में थे।" और मशरिक़ी ममालिक का ज़िक्र करते हुए उन्हें हमेशा "यर्दन के इस पार" बताता है। जिससे ज़ाहिर है, कि मुसन्निफ़ फ़िलिस्तीन के मुल्क में यर्दन के मग़रिबी इलाक़े में रहता था। और जुग़राफ़िया के मुताल्लिक़ किस सवाल को हल करते हुए वो गोया बतौर सनद (सबूत) के एक क़दीमी किताब यानी "यहोवा के जंग नामा" से नक़्ल करता है। जो किसी तरह से मूसा के ज़माने से पहले की नहीं हो सकती। और

इसी क़िस्म की दूसरी मुश्किलात भी नज़र आती हैं। चुनान्चे तन्क़ीद के इब्तदाइ ज़माने में ये सवाल किया गया था, कि "इस एतिक़ाद (यक़ीन) के लिए क्या सनद (सबूत) है कि हज़रत मूसा किताबों की मौजूदा सूरत में इनका मुसन्निफ़ माना गया है?"

और ये मालूम हुआ कि इस के जवाब में सिवाए इस के और कुछ नहीं कहा जा सकता कि यहूदी कलीसिया हमेशा से ये मानती चली आई है। इस वजह से नुक्ता-चीनों ने अपने को मूसा की तौरात के मुसन्निफ़ होने पर एतराज़ करने के लिए आज़ाद समझा। या कम से कम ये माना कि मूसा की तहरीरें फ़क़त बतौर मसाले (नेकी की तरफ़ लाने वाला) के एक हिस्सा थीं। जिनकी मदद से उनके असली मुसन्निफ़ या एडीटर ने मौजूदा "पाँच सहीफ़े" जो हज़रत मूसा के नाम से मशहूर हैं तैयार कर लिए।

ये बात तो बिल्कुल साफ़ थी कि मूसा ने एक शरीअत की किताब लिखी थी। ख़्वाह वो छोटी हो या बड़ी।[21] और उसे हुक्म मिला था कि अमालिकीयों की लड़ाई का हाल "किताब में लिखे" और उसने बनी-इस्राईल के सिफ़रों का हाल तहरीर किया। और जब वो ये लिख चुका तो उसने उसे काहिनों के हवाले कर दिया। और उनको ये हिदायत की कि हर सातवें साल ख़ेमों के अहद के मौक़े पर उसे लोगों को पढ़ कर सुनाया करें। और वो ख़ेमे के संदूक़ में रखी जाये ताकि लोगों के सामने बतौर एक गवाह के रहे। मगर साफ़ ज़ाहिर है कि इस से ये नहीं साबित होता कि ये सारी की सारी पांचों किताबें जैसी कि वो इस वक़्त मौजूद हैं, हज़रत मूसा ने तहरीर की थीं।

अब इस तन्क़ीद आला के मसअलों में से जिस पर वो अपनी सारी ताक़त ख़र्च करती रही है। ये मसअला भी है। क्या मूसा सारी तौरात का पैदाइश से लेकर इस्तिस्ना की किताब तक उस की एक एक सतर का रखने वाला है? मगर एक और सवाल है, जिससे हम इस नए इल्म के तरीक़ अमल की निस्बत ज़्यादा वज़ाहत से सीख सकते हैं। ये सवाल मुसन्निफ़ की निस्बत (ताल्लुक़) नहीं बल्कि किताब की तालीफ़ व तर्तीब (दुरुस्ती व इस्लाह) के मुताल्लिक़ है। अगर फ़र्ज़ कर लिया जाये कि मूसा ही तौरात के सहीफ़ों का मुसन्निफ़ है। तो क्या उनमें से किसी या सब में ऐसे ऐसे मुसव्वदे (वो

---

21 देखो हज़रत यशूअ की किताब (8:32)

तहरीर जो सरसरी तौर पर लिखी जाय) भी शामिल किए गए हैं। जो मूसा के ज़माने से पहले के थे?

अठारहवीं सदी के वस्त (दर्मियान) में पहले-पहल इस मसअले पर बाक़ायदा तौर से ग़ौर व तवज्जोह शुरू हुई। एक फ़्रांसीसी तबीब असतर्क नामी ने इस की तरफ़ तवज्जोह दिलाई, कि पैदाइश 1 बाब 2:3 में पैदाइश ख़ल्क़त का एक मुसलसल बयान दर्ज है। मगर इस से अगली आयत में एक बिल्कुल दूसरा बयान शुरू होता है। जिससे ऐसा मालूम होता है। कि मोअल्लिफ़ (जमा करने वाले) ने अपनी तहरीर में दो मुख़्तलिफ़ रिवायतों को लेकर शामिल कर दिया है। ये दोनों कहानियां उस के नज़्दीक बलिहाज़ तर्ज़ इबारत और वाक़ियात की तर्तीब और ख़ासकर एक और अम्र के लिहाज़ से बाहम मुख़्तलिफ़ हैं। जिसकी वजह से पहले-पहल उस की तवज्जोह उधर मुनातिफ़ (मुतवज्जोह होने वाला) हुई थी। और वो ये है कि एक बयान में तो ख़ुदा के लिए लफ़्ज़ इलूहीम इस्तिमाल हुआ है। और दूसरे में यहोवा इलूहीम चुनान्चे उर्दू तर्जुमे में भी लफ़्ज़ ख़ुदा, और ख़ुदावंद ख़ुदा इस्तिमाल हुए हैं। जिससे ये फ़र्क़ नुमायां हो सकता है। जब और ज़्यादा तहक़ीक़ात की गई तो बहुत से लोगों के नज़्दीक इस अम्र की तस्दीक़ हो गई। और उन्होंने ये दर्याफ़्त किया कि सारी तौरात में यहोवा नाम वाले और इलूहीम नाम वाले नुस्ख़े ख़लत-मलत (गड-मड) हो रहे हैं। और इस के इलावा कई मुख़्तलिफ़ शिजरा नसब (नसब नामा) हैं। जो मुसन्निफ़ या मुरत्तिब (तर्तीब देने वाला) ने जूं के तूं उठा कर अपनी किताब में दर्ज कर लिए हैं। इस ख़याल को अगरचे बाअज़ जर्मनी के उलमा ने बढ़ाते बढ़ाते बे-हूदगी (ना शाइस्तगी) के दर्जे को पहुंचा दिया है। मगर इस को अब क़रीबन तमाम बाइबल के उलमा तस्लीम कर गए हैं। ख़ैर-ख़्वाह कुछ ही हो हमें इस जगह इस ख़याल की ख़ूबी या नुक़्स से कुछ बहस नहीं है। हम यहां सिर्फ इसे बतौर मिसाल पेश करते हैं। ताकि लोगों को इस "आला तन्क़ीद" (अज़ीम नुक्ता-चीनी) की हक़ीक़त मालूम हो जाये।

3. एक नामाक़ूल तशवीश

अगरचे हम इस तन्क़ीद के हामीयों (हिमायत करने वाले) के बाअज़ ख़यालात से कितने ही मुख़ालिफ़ क्यों ना हों। तो भी इस अम्र (फ़ेअल) को तस्लीम करना ज़रूरी समझते हैं कि इस "तन्क़ीद आला" के ख़िलाफ़ लोगों ने बहुत सी ग़लत और बेहूदा बातें

उड़ा रखी हैं। जो लोग ऐसा करते हैं, उनके ईमान की हालत बाइबल और ख़ुदा के मुताल्लिक़ कुछ बहुत क़ाबिल-ए-तारीफ़ नहीं मालूम होती। मगर ये बिल्कुल सही है कि जब मूसा के किताब-ए-पैदाइश के मुसन्निफ़ होने का सवाल उठाया गया। तो लोगों में इस क़द्र तशवीश (फिक्रो तरद्दुद) फैल गई थी। गोया कि इलाही बादशाहत की बुनियादें इसी पर मुन्हसिर (इन्हिसार करना) थीं। तन्क़ीद आला (अज़ीम नुक्ता-चीनी) का काम फ़क़त ये है कि बाइबल के सहीफ़ों के मुताल्लिक़ जो कुछ रास्त व सही हो उसे दर्याफ़्त कर लें। और लोगों से सिर्फ इस बात के मानने की उम्मीद की जाती है, जिसकी सेहत पाया सबूत (सच्चाई का सबूत) को पहुंच जाये। वो हरगिज़ इस अम्र (फ़ेअल) पर मज्बूर नहीं हैं कि जो बेहूदा बातें भी हामियाँ-ए-तन्क़ीद (तन्क़ीद की हिमायत करने वाले) उनके सामने पेश करें ख़्वाह-मख़्वाह उन पर यक़ीन करें। इन का काम फ़क़त ये है कि सारी बातों को आज़माऐं और जो सही और रास्त हो उसे क़ुबूल करें।

इसलिए इस तन्क़ीद के हक़ में ये कहना कि "वो बाइबल पर हमला करती है।" या "हमारे ईमान की दुश्मन है।" नामुनासिब और ख़िलाफ़ इन्सानियत है। अस्ल बात ये है कि इन अक़ाइद में जो आम तौर पर बाइबल की निस्बत मुरव्वज (राइज) हैं। बाअज़ बाअज़ मुश्किलात हैं। मसलन यही तौरात का मुआमला जिसका मैं ऊपर ज़िक्र कर चुका हूँ। जो शख़्स इन मुश्किलात के हल करने और उनकी तश्रीह व तौज़ीह (वज़ाहत) करने की कोशिश करे। उसे बाइबल पर हमला करने वाला समझना ज़रूर नहीं। और ना ये अम्र एक साहिबे अक़्ल व होश (अक़्लमंद) इन्सान के सज़ावार है कि इस क़िस्म के सवालों पर गौर व फ़िक्र करने से इन्कार करे।

क़दीमी मुसल्लिमा अक़ाइद के ज़ोर व ताक़त की ये एक निहायत अजीब मिसाल है कि इस मौक़े पर बाअज़ मुक़द्दस आदमी जो बलिहाज़ ज़हनी क़ाबिलियतों के आला इक़तिदार (बुलंद रुतबा) रखते थे। घबरा उठे। और उन्होंने इस नए इल्म को बुरे-बुरे नामों से ख़िताब करना शुरू किया कि वो "ख़ौफ़नाक" "नविश्तों को पामाल (रौंदना) करने वाला है।" इस में कुछ शक नहीं कि बाअज़ नुक्ता चीन अपनी मुबालग़ा आमेज़ राइयों (बढ़ा चढ़ा कर राय देना) के लिहाज़ से किसी क़द्र इस क़िस्म के खिताबों (ख़िताब की जमा) के मुस्तहिक़ ठहर सकते हैं। मगर ये एक बिल्कुल दूसरी बात है। हमें इस वक़्त बेहूदा या मुबालग़ा आमेज़ ख़यालों से बहस नहीं। बल्कि उन साबित शूदा और

क़रीने क़ियास (वो बात जिसे अक़्ल क़ुबूल करे) मुतालिब (मतलब की जमा) से जो इस क़िस्म की तहक़ीक़ात से मतंज (नतीजा निकलना) हो सकते हैं।

जब कभी किसी पुराने मुसल्लिमा एतिक़ाद (तस्लीम शुदा ईमान) पर हमला हुआ करता है। ख़्वाह उस की बुनियाद कैसी ही ज़ईफ़ (कमज़ोर) क्यों ना हो। तो अक्सर हलचल मच जाया करता है। हम पहले ही लफ़्ज़ी इल्हाम सहू व ख़ता (ग़लती व ख़ता) से बरीयत (आज़ाद) और तरक़्क़ी पज़ीर (तरक़्क़ी) क़ुबूल करने वाला इल्हाम के मसाइल पर बहस करते हुए इस अम्र (फ़ेअल) का ज़िक्र कर चुके हैं। इनकी निस्बत (मुताल्लिक़) भी लोग ये समझते थे। कि मर्दी अक़ाइद (इन्सानी अक़ाइद) का काटना ख़ुद इल्हाम की जड़ काटना है। रफ़्ता-रफ़्ता लोगों ने देख लिया कि ख़ुदा ने कहीं इस क़िस्म के मर्दी अक़ाइद (इन्सानी अक़ाइद) की तस्दीक़ नहीं की। और उनका नफ़्स इल्हाम (इल्हाम की रूह) पर कुछ असर नहीं पड़ता। मगर ऐसा मालूम होता है कि इस सबक़ की मकर रसा करर (बार-बार, कई मर्तबा) हर एक नए मौक़े पर अज सर-ए-नौ (नए सिरे से) सीखने की ज़रूरत पड़ती है। लोग उस वक़्त ये ख़याल करते हैं कि अहद-ए-अतीक़ के सहीफ़ों के मुसल्लिमा मुसन्निफों या तारीख़ तस्नीफ़ (लिखे जाने की तारीख़) के मुताल्लिक़ किसी क़िस्म के एतराज़ करना गोया एतिक़ाद की जड़ उखाड़ना है। ये तो सच्च है कि ये बातें एतिक़ाद (यक़ीन) की जड़ उखाड़ती हैं। मगर किस एतिक़ाद की? सिर्फ उसी मर्दीया अक़ीदा (इन्सानी अक़ीदे) की कि किताबों के नाम भी ख़ुदा के इल्हाम किए हुए हैं। और उन किताबों को बाअज़ मुसन्निफ़ों के नाम की सनद (सबूत) पर क़ुबूल करना चाहिए हमें किस शख़्स ने बताया है कि मूसा ने किताब पैदाइश की तहरीर की थी। या यशूअ और समुएल ने वो किताबें लिखी थीं। जो उनके नाम से मन्सूब (ताल्लुक़) होना हैं? क्या बाइबल ये कहती है कि ये किताबें दरहक़ीक़त इन्हीं अश्ख़ास ने लिखी हैं? क्या ये कोई बड़ी ज़रूरी बात है कि इनके लिखने वाला कौन है? इस अम्र से अलबत्ता इनकी तारीख़ तस्नीफ़ (लिखे जाने की तारीख़) के क़ायम करने में मदद मिले तो मिले।

अगर बिलफ़र्ज़ उन्होंने इन किताबों को लिखा भी। तो भी ये अम्र क़ाबिले लिहाज़ है कि उन्होंने इस अम्र (फ़ेअल) को अपने ही दिल में छुपाए रखा। क्यों कि उन्होंने हमें नहीं बताया। ना उन्होंने इस बिना पर हमको इन किताबों पर एतिक़ाद (यक़ीन) रखने की तर्ग़ीब (ख़्वाहिश) दी कि ये उनकी लिखी हुई हैं। हरगिज़ नहीं। अलबत्ता ये तो सच्च है कि इन मर्दी बयानात (इन्सानी बयानात) की ताईद (हिमायत) में अब भी बहुत कुछ

कहा जा सकता है। जो नुक्ता चीनियों के बहुत सी दलाईल की निस्बत जो इस के ख़िलाफ़ पेश की जाती हैं, में हरगिज़ नहीं कह सकते। मगर सवाल ज़ेरे बहस ये नहीं है कि इनमें से कौन रास्त (दुरुस्त) है। सवाल ये है कि □आया इस क़िस्म के अक़ाइद के मुतज़लज़ल (डगमगाना) होने की वजह से हमें एक तशवीश व परेशानी (फ़िक्रमंदी व परेशानी) की हालत में पड़ जाना मुनासिब है? क्या बाइबल के सहीफ़ों ख़ासकर अहद-ए-अतीक़ (पुराना अहदनामा) के सहीफ़ों के मुसन्निफ़ों के मुताल्लिक़ हमारे इल्म में किसी क़िस्म की तब्दीली वाक़ेअ होना कोई क़ाबिल-ए-अंदेशा बात (वो बात जिसमें किसी बात का डर हो) है? ये मुम्किन है कि जब इस शोर व शर (हंगामा व शरारत) की धूल (मिट्टी) बैठ जाये। तो आख़िरकार हमारे अक़ाइद जूं के तूं पाए जाएं। मगर हम क्यों ख़्वाह-मख़्वाह इन अक़ाइद को अज़मत (बड़ाई) दे रहे हैं। मसलन अम्बिया-ए-असग़र (छोटी किताबें लिखने वाले नबी) के सहीफ़ों पर नज़र करो। यहूदी नुस्खा-ए-बाइबल में ये सब सहीफ़े एक ही किताब में मुजतमा (इखट्टे) हैं। इन अश्ख़ास के हालात की कुछ ख़बर नहीं। वो मज्लिस (आदमीयों का गिरोह) या फ़क़ीह (शराअ का आलिम) जिन्हों ने उनको जमा किया। उनके अब्बा के नाम या उस अहद के इलावा जिसमें वो मबऊस (भेजे गए) हुए। उनकी निस्बत और कुछ नहीं जानते। यक़ीनन उनके नामों से उनकी तसानीफ़ को कोई सनद व इख़्तियार (सबूत व ताक़त) हासिल नहीं होता। फ़र्ज़ करो कि इस किताब के शुरू में फ़क़त (सिर्फ) ये अल्फ़ाज़ लिखे होते कि □मजमूआ सहफ़ अम्बिया□ (नबियों का कलाम) तो बताईए। हमारे लिए इस बात से क्या फ़र्क़ पैदा हो जाता? क्या उस वक़्त हमें ये कहा जाता कि इन अम्बिया के अस्मा (नामों) को ना जानना हमारे ईमान के लिए ख़तरनाक है?

हमें कहा जाता है कि अगर हम इस अम्र पर एतिक़ाद ना रखें कि सारी तौरात जैसे कि वो आजकल मौजूद है। लफ़्ज़ बलफ़्ज़ मूसा की लिखी हुई है। तो इस से हमारे ईमान को नुक़्सान पहुंचता है। हम नहीं समझते कि इस बात से इन्कार करने में क्या बुराई है। अगर हमारे पास इस क़िस्म के यक़ीन के लिए वजूहात हों कि जिस किसी ने इस को लिखा। उस के पास के लिखने के लिए ज़रूरी वसाइल मौजूद थे? क्या इस अम्र का यक़ीन करना ख़ौफ़नाक है। कि ज़बूर-ए-दाऊद में से बहुत से मज़ामीर (राग में गाई जाने दुआएं) हज़रत दाऊद के लिखे हुए नहीं हैं। और हम ये भी यक़ीनी तौर पर तौर नहीं कह सकते, कि कौन-कौन से ज़बूर उस के लिखे हुए हैं? क्या हमारे ईमान के लिए इस अम्र का जानना ख़ौफ़नाक है कि अम्साल सुलेमान में उज़ूर बिन याक़ा के अम्साल

और नीज़ वो अम्साल भी जो शाह लेमोएल की माँ ने उस को सिखाएँ शामिल हैं और हम नहीं जानते कि ये लोग कौन थे? हम क्यों इस सबक़ के सीखने से पहलू-तही (कतराना) करते हैं जिस पर बाइबल भी ज़ोर देती है कि किताबों की सनद व इख़्तियार इस अम्र पर मुन्हसिर नहीं है कि उनके लिखने वाले कौन-कौन थे। बल्कि इस अम्र पर कि वो ख़ुदा की तरफ़ से इल्हाम हुई हैं। और कलीसिया ने मशीयत एज़दी (ख़ुदा की मर्ज़ी) की हिदायत से इनमें से ऐसी ऐसी किताबों को महफ़ूज़ रखा। जो ताअलीम और तादीब (अदब सिखाना) और इस्लाह (दुरुस्ती) और रास्ती (सच्चाई) में तर्बीयत करने के लिए ज़रूरी थीं।

4. आला तन्क़ीद के ख़तरात

नाज़रीन के लिए "आला तन्क़ीद" की बे-एतबारी साबित करने के लिए फ़क़त उन तख़य्युलात (तसव्वुरात) का ज़िक्र कर देना काफ़ी है, जो इस के हद से बढ़े हुए शैदाइयों (आशिक़ों) ने गुज़श्ता चंद सालों में ज़ाहिर किए हैं। और मैंने भी इस अम्र में उन्हें क़ाबिले इल्ज़ाम नहीं ठहराया। एक शख़्स जले दिल से लिखता है, कि :-

> "इन नक़्क़ादों (परखने वाले) की तहरीरों से हम इस अम्र की आगाही (जानना) हासिल करते हैं कि बाइबल परस्ती मुम्किन है। मगर साथ ही ये भी मालूम करते हैं कि वो गोई (एक हल में जोते हुए दो बैल) और ज़ाज़ ख़ानी (बकवास) ऐसे ही मुम्किनात (वो बातें जो हो सकती हैं) में से है।"

और इस शख़्स का ये क़ौल बरमहल (मौज़ूं) भी है। जो लोग बाइबल के लफ़्ज़ी इल्हाम और सहू निस्यान (भूल चूक) से बरीयत (आज़ाद) के मानने वालों को बेवक़ूफ़ और अहमक़ समझते हैं। उनमें से बहुत ऐसे भी हैं, जो बाइबल के मुतालआ को अपने इसी क़िस्म के बे-बुनियाद मफ़रूज़ात (कमज़ोर फ़र्ज़ की हुई बातें) के साथ शुरू करते हैं। इनमें ऐसे लोग भी हैं। जो बाइबल का मुतालआ इस मसअले के साथ शुरू करते हैं कि चूँकि अक़्वाम की इब्तिदाई हालत में जब वो तर्बीयत व ताअलीम से बेबहरा (महरूम) होती हैं। आम कारोबार में बालाई क़ुद्रत वाक़ियात को दख़ल देना एक तबई अम्र (फ़ित्री अमल) है। इसलिए बाइबल की क़दीमी तवारीख़ों में जहान कहीं बाला क़ुद्रत बातों का

ज़िक्र है। उन्हें महज़ क़िस्सा कहानी और देवताओं की हिकायतें समझना चाहिए। और जहां तक मुम्किन हो। उनकी तश्रीह व तौज़ीह कर के उन्हें तबई वाक़ियात के सीगे (साँचे में ढली हुई चीज़ में दाख़िल कर देना चाहिए। इन लोगों के दर्मियान जल्दबाज़ और शोरा शर (हंगामा) लोग भी हैं जो ज़बरदस्ती की मन्तिक़ (दलील) के साथ बड़े-बड़े नताइज पर पहुंच जाते हैं और बजाए इस के कि वक़्त को इजाज़त दें कि वो इन दाअवों की सेहत को शक-ए-इम्तिहान पर कह कर इनकी सेहत व ग़लती को क़ायम करे। वो बड़े-बड़े दाएवे के साथ ख़म ठोंक (बे-बाक हो कर मुक़ाबला करना) कर कहने लगते हैं, कि "ये उमूर तन्क़ीद के ज़रीये से पाया सबूत को पहुंच चुके हैं।" इनमें ऐसे लोग भी हैं जिनको अपनी अक़्ल व तमीज़ पर इस क़द्र नाज़ (फ़ख़्र) है कि वो तारीख़ व तस्नीफ़ व तर्तीब व तर्कीब के बड़े-बड़े अहम उमूर पर महज़ अपने ज़हनी मफ़रूज़ात और मुसन्निफ़ की इबारत और ख़सलत (फ़ित्रत) और ख़यालात के बिना पर हुक्म लगाने बैठ जाते हैं। नक़्क़ाद (तन्क़ीद करने वाला) को ऐसा ख़याल गुज़रता है कि बाअज़ फ़िक़्रात किसी मुसन्निफ़ की तर्ज़ तहरीर या तर्ज़ ख़याल के साथ जोड़ नहीं खाते। और इस लिए दूसरे अश्ख़ास की राय का इंतिज़ार किए बग़ैर जो इस अम्र में ऐसी ही लियाक़त व क़ाबिलीयत रखते हैं। वो बड़े इत्मीनान से उनको ख़त दुहदानी में रखकर उन पर अल्फ़ाज़ "ग़ालिब है कि बाद में ईज़ाद (इज़ाफ़ा किया गया) किए गए।" किसी और शख़्स ने दाख़िल कर दिए।" लिख देता है।

इस क़िस्म की बातें हैं जिनसे "तन्क़ीद आला" का नाम बदनाम हो गया है। और लोगों को इस के सुनते ही चिड़ आती है। इन्हीं बातों से एसे बेसरोपा (बे-बुनियाद) मसाइल ईजाद हुए जो ना सिर्फ मसअला इल्हाम से ही लगाओ (ताल्लुक़) नहीं रखते। बल्कि अहद-ए-अतीक़ की मामूली सेहत व दुरुस्ती और क़ाबिले एतबार होने से भी। मगर इस की इल्मी लिहाज़ से बाक़ायदा तन्क़ीद नहीं कहना चाहिए। और ना हक़ीक़ी आलिमाना तन्क़ीद इस क़िस्म की बेऐतदालियों (नाइंसाफ़ीयों) के लिए जवाबदेह हो सकती है। शायद बाअज़ लोग उनके हौसले और जुर्आत के लिए उनके मद्दाह हों। मगर हौसला और जुरआत गो मुनासिब महल (मौक़ा) पर कितनी ही क़ाबिल-ए-तारीफ़ हो। तो भी ऐसे अहम मुआमलों में ख़ासकर बाइबल के मुताल्लिक़ा मुतालिब पर गौर व फ़िक्र करने में। अगर उस के साथ इख़्तियार और हया (लिहाज़) और कलाम-उल्लाह का अदब व इज़्ज़त भी शामिल ना हो। उसे ज़रूर ख़ौफ़नाक और बेमहल समझना पड़ेगा। कड़वे दानों के उखाड़ने में ख़ालिस गंदुम को भी उखाड़ देना आसान है और हर एक इन्सान को

चाहिए कि ऐसे अहम और नाज़ुक मुआमलों में जिनका ताल्लुक़ इस अदब व इज़्ज़त से हो। जो सदीयों से बाइबल के हक़ में लोगों के दिलों में जागज़ीन (पसंदीदा) है। मज़ीद एहतियात दूर अंदेशी (अक़्लमंदी) पर कारबंद (अमल में लाना) हो।

5. तन्क़ीद की मुनासिब हैसियत

मगर मुख़ालिफ़ों की इस दिलेरी और जुर्आत के मुक़ाबले में हम सज़ावार नहीं कि हम भी सिम्त मुक़ाबिल (मुक़ाबला की तरफ़) में हद से बाहर निकल जाएं। ये हरगिज़ मुनासिब नहीं कि इन ख़ौफ़नाक और बे-बुनियाद मसाइल की निस्बत अपनी नाराज़गी ज़ाहिर करते-करते इस हद को पहुंच जाएं, कि ख़ुद "आला तन्क़ीद" पर ही लानत भेजना शुरू करें। या जो लोग इस में मशग़ूल (मसरूफ़) हैं उन के हक़ में तरह-तरह की बद-गुमानियाँ (बुरे ख़यालात) करने लग जाएं। तेज़ी और जल्द-बाज़ी और ज़टल (बकवास) हर एक नूर-ए-ईजाद इल्म के इब्तिदाई ज़मानों में ख़ौफ़ व ज़रर (डर और नुक़्सान) का बाइस हैं। और जवानी के तमाम ऐबों (बुराईयां) की तरह जूँ-जूँ वो उम्र में तरक़्क़ी करता जाएगा, ये भी कम होते जाऐंगे। हमको याद रखना चाहिए कि "आला तन्क़ीद" के सब ही उलमा ऐसे ज़ूद मिज़ाज (तेज़ मिज़ाज) और जल्दबाज़ नहीं हैं। हमको ये बात भी नहीं भूलनी चाहिए, कि इस का असली मक़्सद ये है कि बाइबल के मुताल्लिक़ सच्चाई और महज़ सच्चाई को दर्याफ़्त (ढूंढना) करे यक़ीनन जिस क़द्र वो इस अम्र में कामयाबी हासिल करें। इसी क़द्र वो क़द्र-दानी के सज़ावार हैं। ख़्वाहाँ की तहक़ीक़ात से हमें अपने पहले दिल पसंद ख़यालात बदलने ही क्यों ना पढ़ें। सच्चाई हमेशा ऐसी ही चीज़ों को बर्बाद किया करती है, जो इसी लायक़ होती हैं। और ख़्वाह कुछ ही हो, ख़ुदा भी हमसे यही चाहता है कि हम सच्चाई की पैरवी (पीछे चलना) करें। ख़्वाह वो हमें कहीं क्यों ना ले जाये। या इस का कुछ ही नतीजा क्यों ना निकले।

मगर इस से हरगिज़ ये मुराद नहीं है कि हम इन बाइबल की नुक्ता चीनियों के तमाम फ़ैसलों को सिर्फ इस वजह से कि ये उनके फ़ैसला में सच्चा समझ कर मान लें। हमको उनके इल्म और लियाक़त (क़ाबिलीयत) के लिए उनकी इज़्ज़त करनी चाहिए। और उनकी साफ़ दिली और हक़ जोई के लिए उनको आफ़रीन कहना (दाद देना) चाहिए। मगर साथ ही ये भी याद रखना चाहिए कि ऐसे मुश्किल सवालात के हल करने के लिए इब्रानी इल्म व अदब और तारीख़ से भी कुछ बढ़कर जानने की ज़रूरत है। इस के लिए

हमें हर क़िस्म की दूसरी शहादत (गवाही) को भी ना सिर्फ इस ख़ास शहादत को जो "तन्क़ीद आला" के आलिमों से मिलती है परखना चाहिए। इस के लिए एक तुले (यकसाँ) हुए दिमाग़ और फ़राख़ दिल और इंसाफ़ पसंद रूह की ज़रूरत है। इस के इलावा एक बाअदब मज़्हबी मीलान (रुझान) जिससे हमारी मुराद ज़ूद एतिक़ादी (फ़ौरन यक़ीन कर लेना) नहीं है। और सहीफ़े के मक़्सद व नफ़्से मज़्मून (अस्ल मतलब) की तह तक पहुंच जाने की क़ाबिलीयत की भी हाजत (ज़रूरत) है। जिसके सिवा किसी किताब की सही तन्क़ीद व मुवाज़ना (नुक्ता-चीनी व मुक़ाबला) करना नामुम्किन है। इसलिए ये बिल्कुल मुम्किन है कि एक शख़्स इब्रानी और इल्म-उल-लिसान (ज़बान की तारीख़ का इल्म) और तारीख़ से कामिल वाफ़कियत रखता हो। और तन्क़ीद व मुवाज़ना में भी माहिर व तजुर्बेकार हो। मगर फिर भी अहद-ए-अतीक़ के सहीफ़ों की अस्ल व तर्कीब (हक़ीक़त व तदबीर) तारीखे तहरीर की निस्बत सही राय ना दे सके।

इसलिए अगरचे हमें माहिराने-इल्म तन्क़ीद की इल्मीयत और क़ाबिलीयत का एतिराफ़ (मानना) है तो भी हम उन्हें याद दिलाना चाहते हैं कि उनकी असली हैसियत एक गवाह की है ना कि जज की। हमारी क़ानूनी अदालतों में अक्सर इस अम्र की ज़रूरत पड़ती है कि हर दो फ़रीक़ की जानिब से ख़ास-ख़ास इल्म व फ़न के माहिरीन, ख़्वाह डाक्टर हों या इंजीनियर कोई और फ़न वाले तालिब किए जाते हैं। और हम ख़ूब जानते हैं कि उनकी शहादत (गवाही) बाहम कैसी मुख़्तलिफ़ व मुतज़ाद (उलट) होती है। लेकिन गो उनकी शहादत किसी अम्र (मुआमला) के तस्फ़ीया (फ़ैसला) के लिए निहायत ही ज़रूरी क्यों ना हो, तो भी मुक़द्दमे का फ़ैसला उनके सपुर्द नहीं किया जाता। और सब लोग इस अम्र को तस्लीम करते हैं कि अगरचे माहिरीन उलूम व फ़नून (हुनर व फ़न) किसी अम्र मुताल्लिक़ा में शहादत देने के लिए कैसे ही लायक़ व फ़ाइक़ (लियाक़त में फ़ौक़ियत रखने वाला) क्यों ना हो। तो भी उनका एक जज की कुर्सी पर बैठ कर किसी मुआमले के मुताल्लिक़ सही-सही फ़ैसला देना एक दूसरी बात है। जज या जूरी बनने के लिए इस के इलावा और बहुत सी क़ाबिलियतों की ज़रूरत होती है।

अब हमें चाहिए कि इस अम्र (मुआमला) को हमेशा मद्द-ए-नज़र रखें। और फिर जो कुछ यक़ीनी सच्चाई हमको इन उलमा (आलिमों की जमा) के ज़रीये से हासिल हो उसे हमेशा क़ुबूल करने को तैयार रहें। "जब तन्क़ीद अदब व इज़्ज़त से की जाये, जब वो सिरे से ये दाअवा ना कर बैठे कि कोई बालाई क़ुद्रत ज़हूर तारीख़ी लिहाज़ से सही

माने जाने के क़ाबिल नहीं। जब वो इस अम्र के इम्कान से मुन्किर (इन्कार करने वाला) ना हो कि ख़ुदा अपना मुकाशफ़ा इन्सान को देता है और जब वो तारीख़ी तहक़ीक़ात के सही उसूलों पर कारबन्द हो। तो कोई वजह नहीं कि मसीही लोग ख़्वाह-मख़्वाह उस की मुख़ालिफ़त करें।" जो लोग इस हालत में भी बाइबल की आला तन्क़ीद (अज़ीम नुक्ता-चीनी) का मुँह-बंद करने की कोशिश करें और ख़्वाह-मख़्वाह शोर व ग़ौग़ा (हंगामा) मचाएँ। उनकी हालत क़ाबिले रहम समझी जानी चाहिए। जहां कहीं गुज़श्ता ज़मानों में मसीहियों ने मज़्हब नाम से किसी नए इल्म व दर्याफ़्त की मुख़ालिफ़त की है। और फिर मुँह की खा कर हार मानने को मज्बूर हुए हैं। इस से सिवाए शर्म व अफ़्सोस के क्या हासिल हो सकता है। आजकल हमें इसी तजुर्बे को दोहराने की ज़रूरत नहीं। जिस शख़्स का ख़ुदा पर सच्चा ईमान व एतिमाद है। वो कभी सच्चाई से ख़ाइफ़ (ख़ौफ़ खाने वाला) नहीं होगा। ये याद रखो कि ख़ुदा अपनी सच्चाई की आप मुहाफ़िज़त (हिफ़ाज़त) कर सकता है। और हम में से कौन है जो दाअवे से कह सके कि ये तन्क़ीद (नुक्ता-चीनी) भी उस की सच्चाई को ज़ाहिर करने का एक ज़रीया नहीं है? क्यों कि ये काम अगर आदमीयों की तरफ़ से है तो (अपने) आप बर्बाद हो जाएगा। और अगर ख़ुदा की तरफ़ से है। तो तुम इन लोगों को मग़्लूब (ख़ूर्दा) ना कर सकोगे।

6. क्या इस के नताइज से डरना चाहिए?

बाअज़ आज़ाद ख़याल लोग अक्सर इस तौर पर गुफ़्तगु करते हुए मालूम होते हैं कि गोया उनके नज़्दीक बाइबल की निस्बत (ताल्लुक़) ख़्वाह कुछ ही तस्लीम क्यों ना कर लें। तो भी इस के एतबार व इल्हाम में फ़र्क़ नहीं आएगा। मगर ये ख़याल ठीक नहीं है। इस क़िस्म की मुक़र्ररा हदूद हैं। जिनसे बाहर हम नहीं जा सकते बाअज़ इस क़िस्म की बातें हैं जिनमें अगर शहादत (गवाही) की बिना पर हम मानने पर मज्बूर हो जाएं। तो इस से बाइबल का आम एतबार (यक़ीन) उठ जाएगा। और इस के साथ ही इस का इल्हामी होने का दाअवा भी बातिल (ग़लत) ठहरेगा। क्या हमें किसी इस क़िस्म के ख़तरे का अंदेशा (ख़ौफ़) करना चाहिए।

सबसे पहले इस अम्र (मुआमले) को याद रखना ज़रूरी है कि अग़्लब) मुम्किन (मालूम होता है कि अहद-ए-अतीक़ (पुराना अहदनामा) के मुताल्लिक़ जो तहक़ीक़ात व जुस्तजू (कोशिश) हो रही है। इस का आख़िरी नतीजा शायद ऐसा अहम नहीं होगा। जैसा

कि हम इस वक़्त उम्मीद करने पर माइल (मुतवज्जोह) हैं। हम अहद-ए-जदीद (नया अहद नामा) की किताबों की इसी क़िस्म की तहक़ीक़ात (जांच पड़ताल) पर पीछे नज़र दौड़ाते हैं। जिससे चंद साल हुए सख़्त बेचैनी फैल गई थी। इस वक़्त हमारे सामने बहुत सी किताबें लिखी हुई मौजूद हैं। जो हमें इस बेचैनी की अज़मत (शान व शौकत) को याद दिलाती रहती हैं। लेकिन अब जब कि इस क़िस्म के मुबाहिसा व मुजादिला (बहस व लड़ाई) का बाज़ार सर्द हो गया है।

हम ठंडे दिल से इस अम्र (फ़ेअल, मुआमला) काम को देख सकते हैं कि इन तमाम हमलों और हमलों के जवाबों में जो कुछ अब हमारे पास बाक़ी रह गया है। इस से सिर्फ चंद ही क़ाबिल-ए-तस्लीम बातें साबित हुई हैं। और इस से बहुत ही थोड़ी को क़ाबिल-ए-तारीफ़ तब्दीली, उन ख़यालात में हुई है, जो लोग ख़ुदा या बाइबल के हक़ में रखते थे। बिला-शुब्हा अहद-ए-अतीक़ के मुताल्लिक़ जो हाल में जुस्तजू (कोशिश) हो रही है। इस से इस की निस्बत (ताल्लुक़) बढ़कर अहम नताइज पैदा होंगे। मगर गुज़श्ता तजुर्बे की बिना पर हम ये उम्मीद कर सकते हैं कि बहुत से दाअवे जो बड़े वसूक़ (एतिमाद) के साथ आज पेश किए जाते हैं। शायद आइन्दा पुश्त (नस्ल) के वजूद में आने से पहले ही मतरूक व फ़रामोश (तर्क किया हुआ व भुला हुआ) हो जाऐंगे।

मगर शायद कोई कहे कि मैं इस बात को मान कर ये भी कहता हूँ कि क्या मुम्किन नहीं कि ये "बाक़ीमांदा क़ाबिल-ए-तस्लीम उमूर" जो आख़िरकार "तन्क़ीद आला" के ज़रीये से पाया सबूत को पहुंच जाएं। ऐसे हों कि बाइबल की निस्बत (ताल्लुक़) हमारे एतिक़ाद (यक़ीन) को बिल्कुल कमज़ोर कर दें?

मैं हरगिज़ ऐसा ख़याल नहीं करता। इस क़िस्म के ख़ौफ़ व अंदेशे की वजह ख़ासकर ये है कि आजकल लोग इन्ही उमूर (अम्र की जमा) पर ज़्यादा तर गुफ़्तगु करते रहते हैं जो ज़्यादा हैरत बख़्श होते हैं इस सबब से इन बातों को एक क़िस्म की हद से बढ़ी हुई हैसियत हासिल हो जाती है इस बात से इन्कार नहीं हो सकता कि बहुत से दाअवे जो बाअज़ नक़्क़ादों ने ख़ासकर अहले जर्मन ने बाइबल के हक़ में पेश किए हैं अगर वो साबित हो जाएं तो इस से सख़्त तशवीश पैदा होगी और वो किसी क़िस्म के अक़ीदा इल्हाम के साथ जोड़ नहीं खा सकते मगर इस से हमें बेचैन नहीं होना चाहिए क्योंकि बहस व मुबाहिसे की गर्म-बाज़ारी में लोग तरह-तरह के दाअवे कर बैठा करते हैं

और ज़ाहिरन दिल ख़ुशकुन दलाईल से उन की ताईद (हिमायत) भी कर दिया करते हैं। अगर हम गुज़श्ता मुबाहिसों और कुजा दिलों (टेढ़े दिल) की तारीख़ का मुतालआ करेंगे। तो हमें मालूम हो जायेगा कि ये कोई नई बात नहीं है जो इस वक़्त हो रही है। ऐसे ही हैरत-अंगेज़ दाअवे पहले भी पेश होते रहे हैं। बल्कि अभी चंद ही साल की तो बात है, जब कि अहद-ए-जदीद के मुताल्लिक़ मुबाहिसे का बाज़ार गर्म था। तो ऐसी ही बातें सुनने में आया करती थीं। अगर ऐसी ऐसी बातें देखकर हमारा सर फिर जाये। तो हमें इस क़िस्म की बेचैनी से कभी भी छुटकारा नसीब नहीं होगा। क्यों कि वो किसी ना किसी सूरत में हमेशा हमारे दामन (आँचल या पल्लू) से लगी रहेगी।

हमें ये बात याद रखनी चाहिए कि किताब-ए-मुक़द्दस ने अपनी ज़िंदगी का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसे ही ख़तरात के दर्मियान में काटा है। मगर फिर भी आज तक सही सलामत मौजूद है। क्यों कि जब तक बहुत से उलमा व फ़ुज़ला मुख़्तलिफ़ मसाइल की निस्बत (ताल्लुक़) इत्तिफ़ाक़-ए-राय ज़ाहिर ना करें। तब तक हम नहीं कह सकते कि कौन-कौन सी बातें क़रार (मुक़र्रर) पा गई हैं। मगर इस पर इत्तिफ़ाक़ राय का अभी तक हमें किसी मसअले की बाबत (सबब) कोई निशान भी नज़र नहीं आता। इस के इलावा हमें उन बहुत सी मज़्बूत दलाईल को भी नहीं भूलना चाहिए। जिनकी बिना पर हम बाइबल के इल्हामी होने के क़ाइल (तस्लीम करने वाला) हैं। और इसलिए उन दाअवों का जो इस के साथ जोड़ नहीं खाते सच्चा होना कैसा ग़ैर-अग़लब (गैर-यक़ीनी) है।

और ख़ासकर हमें बड़े इत्मीनान (तसल्ली) के साथ अपने दिल को इस के फ़ैसले पर लगाना चाहिए। जो हमारे ख़ुदावंद ने अहद-ए-अतीक़ (पुराना अहदनामा) के हक़ में दिया था। वो उन तमाम आम एतिक़ादों (अक़ीदों) को जो उस के ज़माने में लोगों के दिलों में बाइबल की निस्बत जागज़ीन (पसंद दीदा) थे। नहीं मानता था और ना वो उन रिवायतों का क़ाइल (तस्लीम करने वाला) था। जिन्हें तक़द्दुस के लिहाज़ से बाइबल के बराबर दिया जाता था। ना वो उन आम एतिक़ादों (अक़ीदों) को जो आजकल हमारे ज़माने में मुरव्वज (रिवाज दिया गया) हैं मानता था। मगर इन आलिम एतिक़ादों से क़त-ए-नज़र (इस के सिवा) कर के वो एक बात का ज़रूर क़ाइल (तस्लीम करने वाला) था। और इस का उस ने अपनी सनद व इख़्तियार (क़ाबू, क़ब्ज़ा) से ऐलान कर दिया। पहली सदी मसीही में मुश्किल से कोई यहूदी होगा। जो येसू नासरी से बढ़कर इस अम्र (फ़ेअल) का मुअतक़िद (एतिक़ाद रखने वाला) हो कि यहूदी कलीसिया के अहद-ए-अतीक़

की किताबों के मजमूए को ख़ुदा के इल्हाम की ताअलीम समझ कर क़ुबूल करना चाहिए। जब कभी अहद-ए-अतीक़ के एतबार व इख़्तियार पर हमला हुआ और शक व शुब्हा (गुमान, वहम) और बेचैनी का दौर-दौरा हो तो हमको अपने इत्मीनान-ए-क़ल्ब (दिल को तसल्ली देना) के लिए ये याद रखना चाहिए कि हमारे आका ने ख़ुदा की किताबें तस्लीम कर लिया है। और वो हमेशा उनसे सनद (सबूत) लिया करता था। "आस्मान व ज़मीन टल जाऐंगे। मगर उस की बातें हरगिज़ ना टलेंगी।"

लेकिन जहां हमें ये पूरा एतिमाद (यक़ीन) है कि ग़ालिबन कोई ऐसी बात जो दर-हक़ीक़त उनके इल्हाम के मुनाफ़ी) ख़िलाफ (है साबित ना होगी। तो भी हमें इस अम्र में (फ़ेअल) सख़्त एहतियात (हिफ़ाज़त) की ज़रूरत है कि किन-किन बातों को दर-हक़ीक़त मुनाफ़ी इल्हाम (इल्हाम के ख़िलाफ़) समझना चाहिए। बहुत कुछ बेचैनी जो इस वक़्त तन्क़ीद आला (अज़ीम नुक्ता-चीनी) के ख़िलाफ़ फैल रही है। इस की बुनियाद ज़्यादातर इस अम्र पर है कि बाअज़ नेक आदमीयों ने इस की मुख़ालिफ़त पर कमर बांध रखी है। जिनके नज़्दीक "क़दीम तरीक़ों" की पाबंदी ये मअनी रखती है कि क़दीम ग़लतीयों की भी पाबंदी की जाये। दिन-ब-दिन उलमा के इस अम्र पर इत्तिफ़ाक़ होने के आसार (अलामात) नज़र आते हैं कि बाअज़ बातें जिन्हें ये लोग बाइबल के हक़ में ख़ौफ़नाक समझे बैठे हैं। आख़िरकार साबित शूदा उमूर की फ़हरिस्त में शामिल हो जाऐंगे।

इन बातों का ज़िक्र करते हुए मैं ये ज़रूरी समझता हूँ कि अपने अस्ल मंशा (मर्ज़ी, मक़्सद) का भी इज़्हार कर दूं। मैं हरगिज़ ये नहीं चाहता कि हमको ये तमाम बातें मान लेनी चाहियें। ना ये कि इनमें से बहुत सी बातें पाया सबूत (साबित होना) को पहुंच चुकी हैं। जो कुछ मेरी ग़र्ज़ है, सो ये है कि नाज़रीन को चाहिए कि इन सवालात का बे-ख़ौफ़ व ख़तर (डर व ख़तरा) मुक़ाबला कर के बुलाद व रिआयत (क़स्बा या शहर की तरफ़-दारी करना) उनका अपने लिए फ़ैसला करें। फ़र्ज़ करो कि तन्क़ीद के ज़रीये से ये तमाम बातें पाया सबूत (साबित होना) को पहुंच जाएं। तो क्या हमें बाइबल की सनद व एतबार (यक़ीनी सबूत) के जाते रहने का ख़ौफ़ है।

फ़र्ज़ करो कि तन्क़ीद (नुक्ता-चीनी) इस अम्र (फ़ेअल) को साबित कर दे कि तौरात की पांचों किताबें महज़ क़दीम मूसवी तहरीरात की तर्तीब देने से बनी हैं। या वो एक मुसन्निफ़ की नहीं। बल्कि मुख़्तलिफ़ मुसन्निफ़ों की तसानीफ़ (तस्नीफ़ की जमा)

का मजमूआ हैं। या अगर ये दाअवा (मुतालिबा) पाया (रुत्बा) सबूत (शहादत) को पहुंच जाये कि यसअयाह की किताब के अबवाब (40 ता 66) किसी और "नामालूम बुज़ुर्ग" की तस्नीफ़ हैं। जो यसअयाह नबी की किताब के साथ शामिल कर दिए गए। जैसा कि हम देखते हैं कि सुलेमान की अम्साल की किताब के आख़िर में इगोर (अजवर) और लेमोएल (लमवाएल) की मिसालें भी शामिल की गई हैं। तो बताईए फिर क्या? भला इस से बाइबल की हक़ीक़ी क़द्रो-क़ीमत को क्या नुक़्सान पहुँचेगा?

नहीं बल्कि इस से भी बढ़कर मुज़्तरिब (बेक़रार) करने वाले दाअवा (मुतालिबा) को लो। फ़र्ज़ करो कि ये अम्र (फ़ेअल) क़ाबिल इत्मीनान तौर पर पाया सबूत को पहुंच जाये कि मूसा इस शरीअत का जो तौरात की पांचों किताबों में दर्ज है। फ़क़त एक जुज़ अपने पीछे छोड़ गया था। और बाद अज़ां दूसरे क़वानीन के मजमूओं की बाइख़्तियार आदमीयों के ज़रीये से इस में तौसीअ व ईज़ादी (वुसअत व ज़्यादती) होती रही। या कनआन में पहुंचने के बाद लोगों के मुख़्तलिफ़ हालात और ज़रुरियात की वजह से इनमें मुनासिब तर्मीम (दुरुस्ती) होती रही। बल्कि इस अम्र को भी फ़र्ज़ कर लो कि आख़िरी तसहीह व तर्मीम (सही व दुरुस्ती) जिलावतनी यानी क़ैद बाबुल के बाद वाक़ेअ हुई। याद रहे कि ऐसा कहने से मेरी हरगिज़ ये मुराद नहीं है कि मेरे नज़्दीक ये अम्र पाया सबूत को पहुंच सकता है। मगर फ़र्ज़ करो कि ये साबित हो भी जाये तो फिर क्या ये मुम्किन नहीं कि ख़ुदा किसी क़ौम को बतद्रीज (आहिस्ता-आहिस्ता) और बहुत से अश्ख़ास के ज़रीये से ताअलीम दे। और ये तौर व तरीक़ भी ऐसा ही मोअस्सर और कार-आमद हो। जैसा कि इस सूरत में होता कि वो सब कुछ एक ही दफ़ाअ और एक ही आदमी के ज़रीये से सिखा देता? और उसने हमें कहीं भी ये नहीं बताया कि उसने इन दोनों तरीक़ों में से खासतौर पर किसी एक को इख्तियार (मंज़ूर) किया है।

अगर तन्क़ीद के ज़रीये माक़ूल दलाईल (मुनासिब दलीलें) की बिना पर साबित हो जाये कि बाअज़ मर्दीया बयानात (इन्सानी बयानात) किताबों के मुसन्निफ़ों के मुताल्लिक़ सही नहीं हैं। बल्कि अगर हम इस अम्र में शुब्हा की हालत में छोड़ दिए जाएं कि इन किताबों के मुसन्निफ़ दर-हक़ीक़त कौन थे। तो क्या हमारे वास्ते इस बात को मालूम कर लेना फ़ायदे से ख़ाली होगा कि हमें कोई इख़्तियार नहीं कि हम ख़्वाह-मख़्वाह किताबों के सरनामों (लिखने वाले का पता और निशान) को भी इल्हामी समझ बैठें। जैसा कि हम उन तवारीख़ व सुनेन (तारीख़ और सन) को भी जो किसी किसी बाइबल के हाशिये पर

लिखे हुए पाए जाते हैं। इल्हामी नहीं समझते हैं? और इसी तरह उन सहीफ़ों के मुसन्निफ़ों का जानना भी बहुत सूरतों में ऐसा गिरां क़द्र (अहम, क़ीमती) मुआमला नहीं है।

या अगर हमें ये दिखाया जाये कि अहद-ए-अतीक़ का कोई सहीफ़ा उस ज़माने से जो हमने ठहराया हुआ है। कोई सौ दो सौ साल बाद का लिखा हुआ है। तो इस में हैरानी व घबराहट की कौनसी वजह है। बशर्ते के ये साबित हो जाए कि मुसन्निफ़ को ज़रूरी इत्तिला मिलने के वसाइल हासिल थे? अगर खुदा उन अल्फ़ाज़ के ज़रीये से जो उसने क़दीम ज़माने में इल्हाम किए हमारे दिलों में तासीर (असर) करता है। और हमारी ज़मीरों को उकसाता है तो इस में क्या मज़ाइक़ा (हर्ज) है कि वो एक दो सदी पहले लिखे गए थे। या पीछे?

अगर हमें ये दिखाया जाये कि क़दीमी इल्हामी मोअर्रिखों (तारीख़ लिखने वाले) ने बजाए इस के कि बनी-इस्राईल की तारीख़ को ग़ैर-मुतज़लज़ल (ना हिलने वाली) दुरुस्ती व सेहत के साथ लफ़्ज़ बलफ़्ज़ ख़ुदा की ज़बान से सुन कर तहरीर करें। ज़मान-ए-हाल के मोअर्रिखों की तरह बड़ी मेहनत के साथ पुरानी तारीख़ों रोज़ नामचों, दफ़्तरों और नसब नामों का मुतालआ और छानबीन (खोज) कर के लिखी है। जिसमें इस ख़तरे को गुंजाइश (जगह) थी कि इन नविश्तों की गलतीयां उनकी तहरीरात में भी दख़ल हो जाएं। अगर हमको ये बताया जाये कि इस क़िस्म की तहरीरात भी ऐसी ही इल्हामी हैं जैसे कि एक महुव मजज़ूब (ख़ुदा की मुहब्बत में मगन) नबी की रोया या वो ख़यालात जो उस की रूह में बिला-बास्ता ख़ुदा की तरफ़ से इलक़ा (ग़ैब से दिल में डालना) हुए। तो इस में कौन सी बात है। जिससे हमें मुज़्तरिब व परेशान (बेचैन व दुखी) ख़ातिर होना चाहिए? अगर हमें पहले ये इल्म ना था कि ये किताबें किस तरह तस्नीफ़ व तालीफ़ हुई तो क्या हमें इस शख़्स का शुक्रगुज़ार नहीं होना चाहिए। जो हमें इस बात को बता दे? अगर हमारे पहले तसव्वुरात इल्हाम की निस्बत ग़लत थे। तो क्या इनकी सेहत व दुरुस्ती के लिए हमें ख़ुश नहीं होना चाहिए?

या अगर हमको ये जताया जाये कि अय्यूब की किताब किस तरह एक ड्रामे के तौर पर है। और एक दही तस्वीर के तौर पर शैतान के ख़ुदा के बेटों की जमाअत के साथ आने और यहोवा के साथ गुफ़्तगु करने का ज़िक्र किया गया है। और कि वो एक

नज़्म है। जिसमें अय्यूब और उस के दोस्त ज़िंदगी के राज़ों पर बहस मुबाहिसा करते हुए दिखाए गए हैं। या अगर हमें ये कहा जाये कि मशरिक़ी ममालिक के शेअर व शआरी का मुतालआ करने के बाद हमें ख़्वाह-मख़्वाह ये यक़ीन करना पड़ता है कि इस सारे वाक़िया को लफ़्ज़ी तौर पर सही वाक़िया नहीं मानना चाहिए। बल्कि ये महज़ एक मंजूम नाटक (नज़्म किया गया ड्रामा) है। जिसमें क़दीम बुज़ुर्गों की ज़िंदगी और अत्वार की बिना पर "दुख के राज़" पर बहस की गई है। तो क्या इस से किताब में एक क़िस्म की ख़ूबसूरती और माक़ूलीयत नुमायां नहीं हो जाती? क्या रूह-उल-क़ुद्स लोगों को नज़्म या फ़साने और ड्रामें के ज़रीये ताअलीम नहीं दे सकता था। जैसे कि हमारे ख़ुदावंद ने बादअज़ां "मुसर्रिफ़ बेटे" की तम्सील और दौलतमंद और लाज़र की हिकायत के आला रुहानी सच्चाइयों की ताअलीम दी?

7. एक माक़ूल ज़हनी हालत

अब हमें तन्क़ीद आला पर इस पहलू से नज़र करनी चाहिए। हर एक बात जो वो माक़ूल तौर पर साबित कर सके। (ना वो जिसका वो फ़क़त दाअवा या इज़्हार करे) उसे फ़क़त सिदक़ दिल (सच्चे दिल) से ही नहीं, बल्कि शुक्रगुज़ारी के साथ क़ुबूल करना चाहिए क्यों कि तमाम सदाक़त व सच्चाई मिंजानिब-अल्लाह है। और इस से आख़िरकार सिवाए बेहतरी के और कोई नतीजा ना निकलेगा। हमें ख़्वाह-मख़्वाह "हतज धर्मी (ज़िद) से अहद-ए-अतीक़ के इल्हाम या इलाही सनद को किसी पहले ही से ठानी हुई बात पर बाज़ी के तौर पर लगा नहीं देना चाहिए कि हमारे नज़्दीक ये किताबें इस तौर से या इस सूरत में इल्हाम होनी चाहिए थीं।" हमें साफ़ दिल के साथ उस तमाम शहादत को सुनने और ग़ौर करने के लिए जो हमारे सामने पेश की जाये तैयार रहना चाहिए। लेकिन साथ ही हमें किसी अम्र की बाबत क़तई फ़ैसला (आख़िरी फ़ैसला) करने लिए जल्द-बाज़ी को भी काम में नहीं लाना चाहिए। हमें नए-नए दाअवों और बयानों को क़ुबूल करने के लिए बड़ी एहतियात बरतनी चाहिए। और जो कुछ क़दीमी ख़याल की ताईद (हिमायत) में कहा जा सकता है। पहले इस पर अच्छी तरह ग़ौर व फ़िक्र कर लेनी चाहिए। हमारी साफ़ दलील और दिलेरी में अदब व लिहाज़ को दख़ल होना चाहिए। और साथ ही बड़ी एहतियात और संजीदगी के साथ शहादत (गवाही) की जांच पड़ताल (तहक़ीक़) करनी चाहिए। और हमारी दिली-ख़्वाहिश ये होनी चाहिए कि हम बिला-वजह दूसरों के

मुसल्लिमा (तस्लीम शूदा) और मर्ग़ूब अक़ाइद (पसंदीदा ईमान) को हरगिज़ तह व बाला (ऊपर नीचे) नहीं करेंगे।

और हमको हमेशा इस अम्र के मानने के लिए रज़ामंद व तैयार रहना चाहिए कि और लोग भी दयानतदार और रास्ती पसंद हैं। और उनके दिल में भी ख़ुदा और बाइबल की निस्बत ऐसी ही इज़्ज़त व लिहाज़ जागज़न (पसंदीदा) है। हमें हरगिज़ लोगों की दीनदारी या दियानतदारी के मुताल्लिक़ बेजा शुब्हात (फ़ुज़ूल शक) को जगह नहीं देनी चाहिए। और ना इनकी निस्बत तरह-तरह की बद-ज़नीयाँ (बद-गुमानीयाँ) पैदा करनी चाहियें। सिर्फ इस वजह से कि वो इस क़िस्म के मसाइल की ताईद (हिमायत) करते हैं कि मूसा ने तौरात की पांचों किताबें तमाम व कमाल तस्नीफ़ (तहरीर) नहीं कीं। और कि पाक नविश्तों में हमारे ख़याल की निस्बत ज़्यादातर इन्सानी अंसर को दख़ल है।

और आख़िर में मैं ये कहना चाहता हूँ कि हमारे दिल में ख़ुदा और सच्चाई की निस्बत और नीज़ रूह-उल-क़ुद्स के आज़ादाना अमल व इख़्तयार की बाबत ज़्यादा ज़्यादा एतिक़ाद होना चाहिए। और हम को ज़्यादा ज़्यादा दुआ के साथ बाइबल का मुतालआ करना चाहिए। जिस क़द्र ज़्यादा हम बाइबल के "अंदरूनी राज़" से वाक़िफ़ होते जाऐंगे। उसी क़द्र हमको उस के इलाही नूर व क़ुद्रत का ज़्यादा ज़्यादा यक़ीन होता जाएगा। और हम इस बात के क़ाइल होते जाऐंगे कि जो मसअला इस के इल्हाम के एतिक़ाद के साथ मेल नहीं खाएगा, वो यक़ीनन ग़लत होगा। जब हम देखते हैं कि अच्छे भले आदमी की जब कभी कोई नई बात ऐसी ज़ाहिर होती है जो उनके मुसल्लिमा अक़ाइद को मुज़्तरिब (परेशान) करती हुई मालूम होती है। तो वो ख़्वाह-मख़्वाह की बादशाहत के लिए फ़िक्रमंद और हरासाँ (ख़ौफ़-ज़दा) होने लगते हैं। तो हमें उनकी इस हालत को देख कर तरस आता है। अगर बिलफ़र्ज़ हमारे ख़यालात में ख़ुदा के किसी फ़ेअल के तरीक़ अमल की निस्बत कुछ फ़र्क़ आ जाए। तो वो फ़ेअल ज़ाइल (ख़त्म) नहीं हो जाता। इसी तरह अगर इल्हाम की निस्बत हमारे अक़ाइद में कोई तब्दीली वाक़ेअ हो जाये। तो यक़ीनन इस से इल्हाम की हक़ीक़त ज़ाइल नहीं हो जाती जैसे कि इल्मे नबातात के सिलसिले की सेहत व दुरुस्ती करने से फूलों की ख़ुशबू में किसी क़िस्म का फ़र्क़ नहीं आ जाता।

इस तरह बड़े ठंडे दिल से और पूरे एतिमाद (यक़ीन) के साथ ना तो तेज़ी (गर्म-मिज़ाजी) को और ना तास्सुब (तरफ़-दारी, हिमायत) को दिल में जगह देकर हमें तन्क़ीद आला के इल्म को इस्तिमाल करना चाहिए। ये समझ कर कि ये भी ख़ुदा की अच्छी नेअमतों में से एक नेअमत है ताकि हम इस के ज़रीये से सच्चाई के मुताल्लिक़ ज़्यादा वसीअ ख़यालात रखना सीखें। और अगर हम इसे इस तरह इस्तिमाल करेंगे। तो हम देखेंगे कि इस के ज़रीये हमें बजाए अपने नुक़्सान पर हिरासाँ व ख़ौफ़-ज़दा (परेशान व डराना) होने के ज़्यादातर ख़ुश व ख़ुर्रम होना चाहिए।

किसी क़दीम मुल्क का एक क़िस्सा है कि एक दफ़ाअ आग ने पहाड़ीयों को ताख़त व ताराज (तबाही व बर्बादी) करते हुए तमाम फूलों और पत्तों को जला कर ख़ाक स्याह (राख) कर दिया। जिससे मुल्क की सूरत बिल्कुल बदल गई। लेकिन जब लोग अपने नुक़्सान के लिए अफ़्सोस कर रहे थे। तो दफअतन (फ़ौरन) उन्होंने दर्याफ़्त किया कि आग जिसने फूल पत्तों को तबाह कर दिया था। उस की गर्मी से बाअज़ चट्टानों की दराड़ें खुल गईं। और उनमें से चांदी की एक क़ीमती कान नज़र लगी।

"ये बातें बतौर तम्सील के हैं।" क्यों कि अगर इस तन्क़ीद और नुक्ता-चीनी की आगे से हमारे किसी दिल पसंद रिवायती अक़ीदे में फ़र्क़ आ भी जाये। तो हमें इस की जगह सच्चाई का ज़्यादा गहरा इल्म हासिल होगा। हम इस के ज़रीये से इल्हाम की हक़ीक़त और हदूद से वाक़िफ़ हो जाऐंगे। और ख़ुदा के उन तरीक़ों को जिनके मुताबिक़ वो इन्सान के साथ कलाम करता है। ज़्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे। हम इस के ज़रीये बहुत सी ग़लतीयों और ग़लत-फ़हमियों से ख़बरदार हो जाऐंगे। जो इस वक़्त बहुत से लोगों को बाइबल से दूर हटा रही हैं। हम उन हालात का ज़्यादा ज़्यादा इल्म हासिल करेंगे, जिन के दरम्यान बाइबल लिखी गई थी। और नीज़ उस के लिखने वालों की अख़्लाक़ी और ज़हनी हालत और ऐसे ख़ास-ख़ास हालात से भी वाक़िफ़ हो जाऐंगे। जिनके सबब उन्हें उनकी तस्नीफ़ व तालीफ़ (किताब लिखना व जमा करना) की तहरीक (हरकत, जुंबिश) हुई। हम उनके ख़यालात और तर्ज़ बयान से ज़्यादा आश्ना (वाक़िफ़) होंगे। और उनके ज़माने की अख़्लाक़ी और तमद्दुनी (तर्ज़-मुआशरती) हालत को भी बेहतर तौर से परख सकेंगे। हम अपने को उन क़दीमी मुसन्निफ़ों और उनके हम-अस्रों की जगह रखने या यूं कहो कि उनके पहलू से अशिया पर नज़र करने की क़ाबिलीयत हासिल करेंगे। और इन दोनों के ख़यालात व हसात की माहीयत (हक़ीक़त) को बख़ूबी

समझ सकेंगे। और इस तौर से उन ज़मानों की तस्वीर अपने सारे रंग व रोग़न के साथ हमारी आँखों के सामने चलती फिरती नज़र आएगी। तारीख़ तर व ताज़ा और वाक़ई और इन्सानी दिलचस्पी से मामूर (भरपूर) दिखाई देने लगेगी। और सच्चाईयां अब हमारे लिए ऐसे गहरे माअनों से भरी हुई दिखाई देंगी। जैसी पहले कभी ना हुई होंगी।

बाब हफ़्तुम

ख़ातिमा

(1)

और अब प्यारे पढ़ने वाले। मैं इस रिसाले को ख़त्म करता हूँ। मुझे हरगिज़ ये दाअवा (यक़ीन) नहीं है कि मेरे ख़यालात बड़े आली और कामिल (बड़े और मुकम्मल) हैं। और ना मैं जैसा कि चाहिए इस मज़्मून की एहमीय्यत के लिहाज़ से इस का हक़ अदा कर सका हूँ। लेकिन ख़ैर जो हुआ सो हुआ। आओ अब हम चंद लम्हों के लिए इन नताइज पर ग़ौर करें। जो इस किताब के मुतालए से हमने हासिल किए हैं।

हमने इस किताब में अपने मुज़्तरिब (बेक़रार) व परेशान ख़ातिर दोस्तों की बाअज़ मुश्किलात पर ग़ौर किया है। और मालूम किया है कि इनकी बिना ज़्यादातर तास्सुब (बेजा हिमायत) और ग़लतफ़हमी पर है। क्यों कि उन्होंने बिला तहक़ीक़ बाअज़ मशहूर अवाम मफ़रूज़ात (फ़र्ज़ की हुई बात) को क़ुबूल कर लिया था। हमने ये भी देखा है कि कलाम की सच्ची हद व तारीफ़ क़ायम करने का सही तरीक़ ये नहीं है कि हम पहले ही इस अम्र (फ़ेअल) का फ़ैसला कर लें कि ख़ुदा को क्या करना ज़रूर था। बल्कि ये कि बाइबल को मुतालआ कर के देखें कि उसने क्या कुछ किया है। इस तरीक़ तहक़ीक़ात पर अमल करने से हमें मजबूरन बाइबल के मुताल्लिक़ अपने बाअज़ मुसल्लिमा ख़यालात की तर्मीम (दुरुस्ती) करनी पड़ी है। मगर साथ ही मैंने ये जता देने

की भी कोशिश की है कि कोई नई बात नहीं। और इसलिए हमें इस से घबराना और बेचैन नहीं होना चाहिए। क्यों कि यही आम ख़याल जिन्हें हम भी क़ाबिल-ए-तस्लीम (मानने के क़ाबिल) नहीं पाते। इन्हें तमाम ताअलीम-याफ़्ता उलमा इल्म इलाही भी रद्द करते हैं। और उन के लिए ख़ुद बाइबल या कलीसिया की ताअलीम में भी कोई सनद (सबूत) नहीं पाई जाती।

मुझे यक़ीन है कि इस अम्र पर ज़ोर देने से ना सिर्फ परेशान ख़ातिर मसीही ही तसल्ली हासिल करेंगे। जिनके लिए मैंने ये रिसाला तालीफ़ (लिखा) किया है। बल्कि बाअज़ रास्ती पसंद मुन्करीन (इन्कार करने वाले) भी। जिनकी नज़र से ये किताब गुज़रे। और शायद वो ये भी मालूम कर लेंगे कि वो ग़लती से मुन्करीन के ज़ुमरे (हलक़ा) में दाख़िल हो गए हैं। और जिस बात की वो अब तक मुख़ालिफ़त व तर्दीद करते रहे हैं। वो बाइबल ना थी। बल्कि ढकोसले (बहाने) थे जो लोगों ने इस की निस्बत बना रखे थे।

(2)

मुम्किन है कि बाअज़ नाज़रीन इन ख़यालात के पढ़ने से जो इस किताब में पेश किए गए हैं। पहले-पहल कुछ परेशान ख़ातिर हो जाएं। ऐसे ज़रूरी और अहम मुआमलात के मुताल्लिक़ अपने एतिक़ादात को अज़ सर-ए-नौ (नए सिरे से) तर्तीब देने में हमेशा कुछ ना कुछ परेशानी होनी ही चाहिए। हम एक लम्हा भर में एक नए पहलू को इख़्तियार नहीं कर सकते। लेकिन अगर ज़रा ग़ौर व फ़िक्र करेंगे, तो मालूम हो जाएगा कि इस क़िस्म की बेचैनी की कुछ ज़रूरत नहीं। बाइबल की बुनियादें इस वक़्त पहले की निस्बत कुछ कम मज़्बूत नहीं हैं। नहीं बल्कि ये कहना चाहिए कि उस वक़्त की निस्बत ज़्यादा मज़्बूत हैं। जब कि आला तन्क़ीद (अज़ीम नुक्ता-चीनी) का हर एक नया ख़याल और हर एक नया वाक़िया जो बनी-इस्राईल की मह्ज़ मुबतदियाना (इब्तिदाई) इल्मी वाक़फ़ियत से इख़्तिलाफ़ात (दुश्मनी) करता हुआ दर्याफ़्त (मालूम) होता था। और जिससे लोगों के दिलों में इलाही सल्तनत की बुनियादों के उखड़ जाने की निस्बत तरह-तरह के वस्वसे (वहम) और ख़ौफ़ पैदा हो जाया करते थे। बाइबल की सनद (सबूत व इख़्तियार) में भी कुछ कमी वाक़ेअ नहीं हुई। और वो हमारे अदब व लिहाज़ के ऐसी ही शायां (लायक़ व सज़ादार) है जैसी कि पहले। और ना इस वक़्त हम इसे कुछ कम इलाही-उल-

अस्ल समझते हैं। हम फ़क़त इस की हक़ीक़त और इस पर इलाही अमल के तरीक़ (तरीक़ा) को ज़्यादा सफ़ाई से समझने के तलबगार हैं।

(3)

ये तो सच्च है कि जो राय यहां ज़ाहिर की गई है। उस पर अमल करने से बाइबल के मुतालए में ज़्यादा मेहनत और तवज्जोह की हाजत (ज़रूरत) पड़ेगी। हम अब हर एक आयत को इस तौर (पर) नहीं ले सकते कि गोया वो अपनी ज़ात में कामिल (मुकम्मल) है। और इस मसअले के लिए जिसका इस में बयान है। मुकम्मल सबूत के तौर है। हमें इस के साथ सियाक़ व सबाक़ (मज़्मून का तसलसुल) कलाम और नीज़ लिखने वाले की ज़बान और मकान और दीगर हालात पर भी लिहाज़ करने की ज़रूरत होगी। हमें नविश्तों के एक हिस्से का दूसरे हिस्से के साथ मुवाज़ना (बराबरी) करना होगा। हमें इस उसूल को मद्द-ए-नज़र रखना होगा कि अहद-ए-अतीक़ की ताअलीम बाअज़ हिस्सों में अहद-ए-जदीद की ताअलीम से अदना है। और हमें अपने अक़ीदे की बिना (पर) बाअज़ फ़िक़्रात या आयात पर नहीं रखनी होगी। बल्कि ज़्यादातर बाइबल की आम रूह व मिज़ाज पर। और इन सब बातों के लिए ज़्यादा गौर व फ़िक्र, ज़्यादा एहतियात और दूर अंदेशी (अक़्लमंदी) ज़्यादा अदब व लिहाज़। ज़्यादा दुआ और ज़्यादा मुतालआ की ज़रूरत होगी।

मगर जो कुछ मेहनत हम इस तौर से इस पर ख़र्च करेंगे। इस का सैंकड़ों गुना फल मिलेगा। बाइबल जब इन्सानी रिवायतों की मिलावट से पाक हो जाएगी। तो वो ज़्यादा हक़ीक़ी और तबई और इलाही मालूम होने लगेगी। तब हमारे अक़ीदे भी ज़्यादा मज़्बूत बुनियाद पर मबनी होंगे। अख़्लाक़ी और ज़हनी मुश्किलात का ख़ौफ़ व हिरास जाता रहेगा। और अगरचे इस में अब भी ऐसी बातें नज़र आयेंगी। जिनके हल करने में हैरानी और परेशानी दामन-गीर (रोकना) हो। ताहम हम ये सीख लेंगे कि हमारी मसीही ज़िंदगी का मदार (इन्हिसार) इस पर नहीं है कि हम सब राज़ों और सब इल्मों को मालूम कर लें। बल्कि इस पर कि हम फ़िरोतनी और फ़र्ज़ंदाना इताअत (बेटों जैसी फ़रमांबर्दारी) के साथ अपने को रज़ाइलाही-ए- (ख़ुदा की मर्ज़ी) के ताबे कर दें। जो हर तरह की अमली ज़रूरीयात के लिए इस में साफ़ तौर पर मुन्कशिफ़ व मुबर्हन (इन्किशाफ़ व दलील से साबित किया हुआ) है।

हमें चाहिए कि हमेशा सिदक़ दिल (सच्चे दिल) से मुफ़स्सला-ए-ज़ैल (नीचे दर्ज तफ़्सील) दुआ मांगा करें। और हमेशा ख़ुदा से हिदायत और रास्ती के तलबगार रहें।

ऐ मुबारक ख़ुदावन्द तू ने सब मुक़द्दस किताबें

हमारी ताअलीम के लिए लिखवाईं ये बख़्श कि हम उन्हें

इस तरह सुनें। पढ़ें, सोचें, सीखें, और दिल

में हज़म करें कि तेरे पाक कलाम से सब्र व तसल्ली हासिल

कर के हयात-ए-अबदी की इस मुबारक उम्मीद को इख़्तियार

करें। और हमेशा थामे रहें। जो तू ने हमारे

मुनज्जी येसू मसीह में हमें दी है।

(आमीन)